ISSN-0971-8397

योजना

अप्रैल 2014 | विकास को समर्पित मासिक | ₹ 20

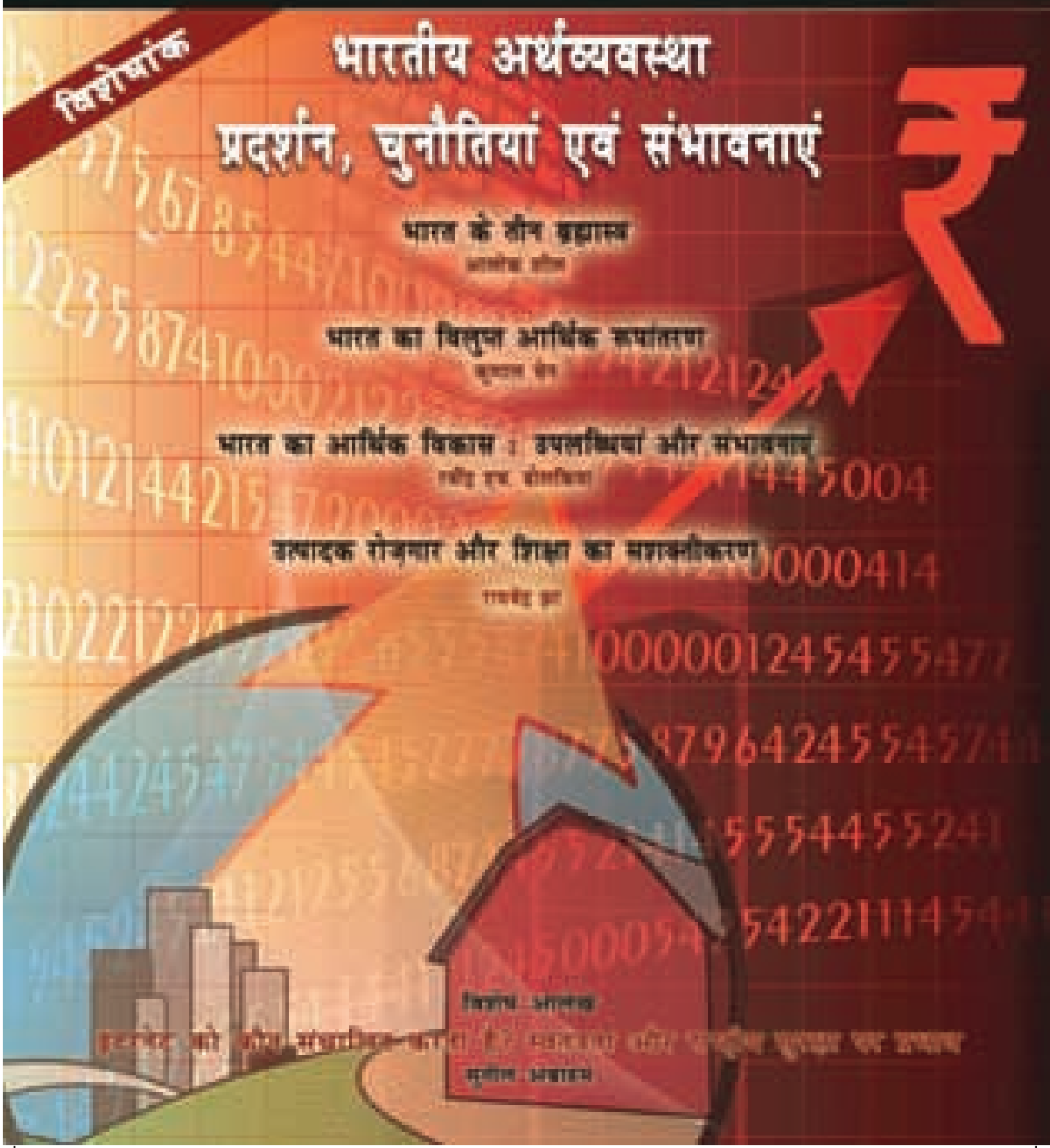

रुपया आता है

(बजट 2014-15)

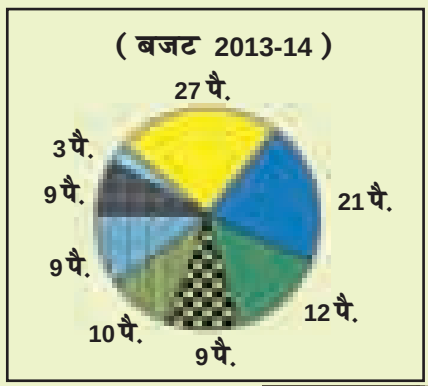

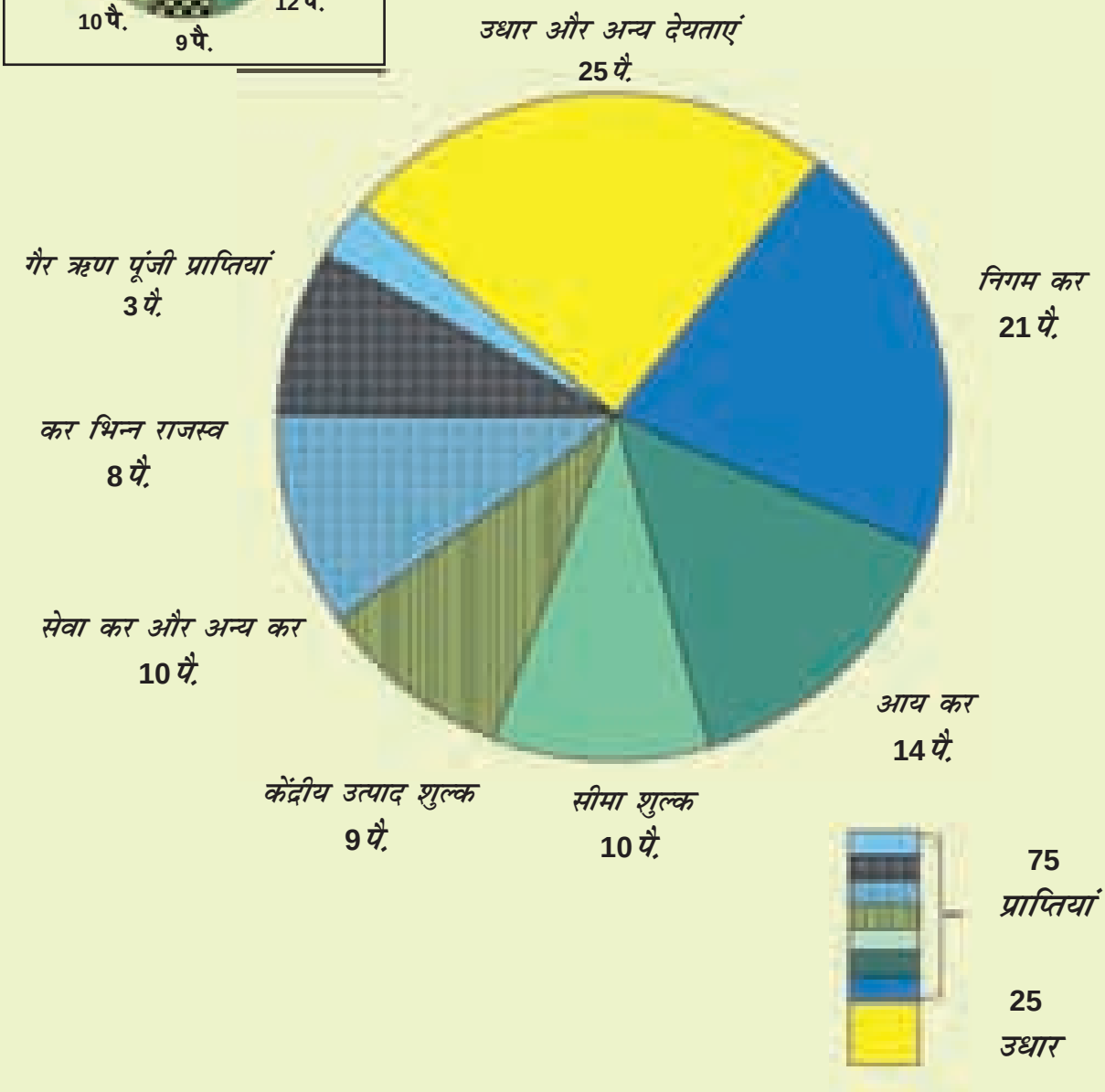

टिप्पणियां : 1. कुल प्राप्तियों में करों और शुल्कों में राज्यों का हिस्सा शामिल है

स्रोत : बजट एक नज़र में (2014–15)

योजना

वर्ष 58 ● अंक 4 ● अप्रैल 2014 ● चैत्र-बैशाख, शक संवत 1936 ● कुल पृष्ठ 76

प्रधान संपादक
राजेश कुमार झा

वरिष्ठ संपादक
रेमी कुमारी

संपादकीय कार्यालय
538, योजना भवन, संसद मार्ग,
नयी दिल्ली-110 001
दूरभाष : 23717910, 23096738
टेलीफैक्स : 23359578
ई-मेल : yojanahindi@gmail.com
वेबसाइट : www.yojana.gov.in
www.publicationsdivision.nic.in
http://www.facebook.com/yojanajournal

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
वी. के. मीणा

व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन)
सूर्यकांत शर्मा

दूरभाष : 26100207
फैक्स : 26175516
ई-मेल : pdjucir@gmail.com

आवरण : **जी. पी. धोपे**

इस अंक में

संपादकीय	–	5
भारत के तीन ब्रह्मास्त्र	आलोक शील	7
भारत का विलुप्त आर्थिक रूपांतरण	कुणाल सेन	11
समावेशी विकास : जरूरत ठोस पहल की	कमल नयन काबरा	15
उत्पादक रोज़गार और शिक्षा का सशक्तीकरण	राघबेन्द्र झा	19
ग़रीबी रेखा : प्राथमिकताओं के सवाल	अशोक कुमार पाण्डेय	25
अनुकरणीय पहल	–	30
कर सुधार और जीएसटी	महेश सी. पुरोहित	31
विशेष आलेख	सुनील अब्राहम	35
भारत में जल-प्रबंधन की सर्वांगीण विफलता अस्तित्व संबंधी चुनौतियां	जितेन्द्र कुमार पाण्डेय	41
भारत का आर्थिक विकास उपलब्धियां और संभावनाएं	रवींद्र एच. ढोलकिया	45
भारतीय अर्थव्यवस्था: मंदी के दौर में विकास की चुनौती	अरविंद कुमार सेन	49
चुनौतियों से निपट सकता है भारत	रहीस सिंह	54
अर्थव्यवस्था की समष्टिभावी आर्थिक चुनौतियां	स्वाती जैन	57
भारतीय अर्थव्यवस्था : चुनौतियां एवं संभावनाएं	भारत डोगरा	60
अर्थव्यवस्था बनाम काला धन	चंद्रकांत भूपाल पाटील	64
क्या आप जानते हैं?	–	66
भारतीय अर्थव्यवस्था में सहकारी क्षेत्र का योगदान	देवेन्द्र उपाध्याय	67
शोध यात्रा	--	71

योजना हिंदी के अतिरिक्त असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, तेलुगु तथा उर्दू भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती है। पत्रिका मंगवाने हेतु, नयी सदस्यता, नवीकरण, पुराने अंकों की प्राप्ति एवं एजेंसी आदि के लिए मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर 'अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवा कर निम्न पते पर भेजें। व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन), प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड IV, **तल** VII, **आर. के. पुरम, नयी दिल्ली-66 दूरभाष : 26100207, 26105590 तार : सूचनाप्रकाशन।**

सदस्य बनने अथवा पत्रिका मंगाने के लिए आप हमारे निम्नलिखित बिक्री केंद्रों पर भी संपर्क कर सकते हैं : सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003 (दूरभाष : 24367260, 5610), हाल सं, 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 (दूरभाष : 23890205)* 701, सी- विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर, नवी मुंबई-400614 (दूरभाष : 27570686) * 8, एसप्लानेड, ईस्ट, कोलकाता-700069 (दूरभाष : 22488030), * 'ए' विंग, राजाजी भवन, बंसल नगर, चेन्नई-600090 (दूरभाष : 24917673) * प्रेस रोड नयी गवर्नमेंट प्रेस के निकट, तिरुअनंतपुरम-695001 (दूरभाष : 2330650) * ब्लॉक सं-4, पहला तल, गृहकल्प, एमजी रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-500001 (दूरभाष : 24605383) * फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलुरु-560034 (दूरभाष : 25537244) ' बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अष्ठोक राजपथ, पटना-800004 (दूरभाष : 2683407) * हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, सेक्टर-एच, अलीगंज, लखनऊ-226024 (दूरभाष : 2225455) * अंबिका कॉम्प्लेक्स, फर्स्ट फ्लोर अहमदाबाद-380007 (दूरभाष : 26588669) के. के. बी. रोड, नयी कॉलोनी, कमान संख्या-7, चेनीकुटी, गुवाहाटी-781003 (दूरभाष : 2665090)

चंदे की दरें : वार्षिक: ₹ 100 द्विवार्षिक : ₹ 180, त्रैवार्षिक : ₹ 250, विदेशों में वार्षिक दरें : पड़ोसी देश : ₹ 530, यूरोपीय एवं अन्य देश: ₹ 730।

योजना में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने है। जरूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से संबद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिए योजना उत्तरदायी नहीं हैं।

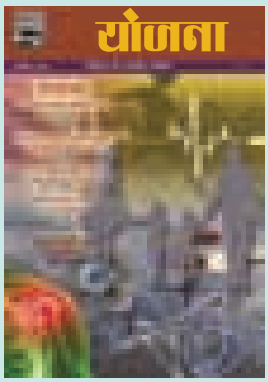

आपकी राय

विकास का वाहक : जनस्वास्थ

जनस्वास्थ्य पर केंद्रित फरवरी 2014 का अंक पढ़ा। अंक से भारत की स्वास्थ्य सेवा के संदर्भ में जानकारी मिली। स्वास्थ्य किसी भी राष्ट्र के विकास का वाहक माना जाता है। जब लोग स्वस्थ होंगे, तभी तो राष्ट्र विकास के पथ पर अग्रसर होगा। आज़ादी के बाद हिंदुस्तान आर्थिक तौर पर 'इंडिया' और 'भारत' दो नामों के बीच विभक्त हो गया है। इंडिया समृद्धि के लिए जाना जाने लगा है, तो भारत निर्धनता के लिए। इंडिया में बुनियादी सुविधाओं से लेकर उच्च स्तर की सुविधा उपलब्ध है जबकि भारत में बुनियादी सुविधाओं की कमी है। सरकार ने स्वास्थ्य सेवाओं को बेहतर बनाने और आर्थिक दृष्टि से बंटे भारत और इंडिया को एक करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की शुरुआत 12 अप्रैल, 2005 को किया, ताकि दूरदराज के ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले निर्धनतम परिवारों को सुलभ, वहनीय और उत्तरदायी गुणवत्तायुक्त स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध हो सके। गरीब गर्भवती महिलाओं के संस्थागत प्रसव को बढ़ावा देने के लिए एनआरएचएम के अंतर्गत सुरक्षा योजना की शुरुआत की गई है। यह योजना शत-प्रतिशत केंद्र प्रायोजित है।

1 जून, 2011 का जेएसएसके अर्थात जननी शिशु सुरक्षा योजना की शुरुआत की गई जिसके अंतर्गत सभी गर्भवती महिलाओं को सार्वजनिक स्वास्थ्य संस्थानों में पूर्णतः मुफ्त तथा ऑपरेशन के मामले में भी कोई ख़र्चीला प्रसव नहीं होने का अधिकार दिया गया। इस कार्यक्रम के तहत मुफ्त दवाइयों एवं उपभोज्य, सामान्य प्रसव होने पर 3 दिन तक मुफ्त भोजन तथा ऑपरेशन से प्रसव होने पर 7 दिन तक मुफ्त भोजन की व्यवस्था की गई है। ज़रूरत पड़ने पर रक्त की भी व्यवस्था की जाती है। सरकार द्वारा इन स्वास्थ्य कार्यक्रमों के अलावा अंधापन नियंत्रण के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम, 1976, राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम 1982, प्रधानमंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना, मार्च 2006 में शुरू किया गया है। सरकार विभिन्न स्वास्थ्य कार्यक्रमों के माध्यम से लोगों को स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराने का प्रयास कर रही है, मगर आमजन तक पूर्ण रूप से इन कार्यक्रमों का लाभ नहीं पहुंच पा रहा है। इसके कई कारण गिनाये जा सकते हैं। प्रथम दूरदराज के क्षेत्रों में सरकारी अस्पतालों की कमी है, दूसरा हैं उनमे बुनियादी सुविधाओं की कमी है, तीसरा चिकित्सक ग्रामीण क्षेत्रों में काम करना नहीं चाहते एवं चौथा स्वास्थ्य कार्यक्रम भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ जाते हैं। अगर हमें विकसित हिंदुस्तान बनाना है तो समावेशी स्वास्थ्य की अवधारणा पर बल देना होगा।

अमित कुमार गुप्ता
रामपुर नौसहन, वैशाली, बिहार

विलम्ब से मिलता है

योजना का मैं नियमित पाठक हूं यह पत्रिका देश के विकास में जिस प्रकार से महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है वह अत्यंत प्रशंसनीय है। *योजना* अब जबकि फेस बुक पर भी मौजूद हो चुका है, एक नये वर्ग के लोगों को जोड़ने में सफल हो सकेगा। बुक स्टॉल में *योजना* पत्रिका की अकसर कमी रहती है जबकि अंक पढ़ने का अवसर विलंब से मिल पाता है।

सुरेश दीवान
अकोली, रायपुर, छत्तीसगढ़

स्वास्थ्य ग़रीबों की पूंजी

भारतीय जनजीवन की एक अहम समस्या और खास विषय 'जनस्वास्थ्य' पर आपका विशेष आयोजन समसामयिक और विचारणीय है। भारत में गरीब तबके के लोगों को जनस्वास्थ्य के लिये सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं के बारे में पता नहीं होता। सरकार आज कई योजनाएं चला रही हैं लेकिन तमाम योजनाओं और सुविधाओं के बावजूद सच्चाई यह है कि आम आदमी स्वास्थ्य की समस्या से बेहद त्रस्त है।

संपादकीय का यह तथ्य भी गौर करने लायक है कि गरीबों के लिए स्वास्थ्य ही उनकी एकमात्र पूंजी है। बीमारी उन पर वाकई दोहरा बोझ डालती है, एक तरफ आय में कमी वहीं दूसरी बीमारी पर होने वाले ख़र्च उन पर दोहरी मार करती है।

छैलबिहारी शर्मा 'इन्द्र'
छाता, उ. प्र.

संग्रहनीय अंक

योजना फरवरी अंक का अवलोकन किया। अपने प्रत्येक अंकों की तरह इस अंक में भी

महत्वपूर्ण एवं तथ्यपरक जानकारियां मिली है।

जनस्वास्थ्य पर दिए गए समस्त आलेख श्रेष्ठ थे। लेखिका उमा गणेश का लेख 'डिजिटल प्रौद्योगिकी से ग्रामीण भारत का कायाकल्प' संग्रहनीय है।

विदित हो कि मैं *योजना* को वर्ष 2008 से लगातार पढ़ता आ रहा हूं, परंतु आज भी मुझमें इसे पढ़ने के लिए वही ललक है, जो आज से 6 वर्ष पूर्व थी।

नचिकेता वत्स
लारी, अरवल,बिहार

विश्वसनीय पत्रिका

विगत कुछ वर्षों से मैं *योजना* का नियमित व गंभीरतापूर्वक अध्ययन करता रहा हूं। इसका प्रत्येक अंक अपने आप में एक शोध है। इसकी अनुसंधनात्मक रचना शैली और इसके माध्यम से प्रकाशित किये जाने वाले विविध जनोपयोगी, लोकहितकारी व विकासपरक विषयक, विभिन्न मुद्दों पर परिचर्चायुक्त आलेख अत्यन्त ही ज्ञानवर्धक होते हैं। *योजना* अपनी उत्कृष्टता, विश्वसनीयता और प्रमाणिकता के चलते हम युवाओं के लिए सदैव स्मरणीय एवं संग्रहणीय है। यह विकासोन्मुखी प्रकृतिवाली एक ऐसी संपूर्ण मासिक पत्रिका है जिसमे संकलित विविध रुचिकर विषयों पर दी गयी विवरणात्मक, तर्कसंगततापूर्ण, प्रभावशाली और आंकड़ों, तथ्यों से भरपूर विशिष्ट प्रवाहमयी लेखन शैली युक्त रचनाओं के अध्ययन मात्र से हमारी जानकारी का दायरा निरंतर विस्तृत एवं व्यापक होता चला जाता है। इसके नियमित अध्ययन और गंभीरतापूर्वक पाठ से हमारे लिए सफलता के दरवाज़े स्वत: ही खुल जाते हैं।

राकेश रंजन
गौतम नगर, नई दिल्ली

विकासोन्मुखी जानकारियां

मैं कई वर्षों से *योजना* का नियमित पाठक हूं। पत्रिका के कारण मैं तिलकामांझी विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग से स्नातकोतर की परीक्षा पास किया हूं। साथ ही विश्वविद्यालयत स्तर की निबंध प्रतियोगिता एवं राष्ट्रीय स्तर का भारत स्काउट्स एंड गाइडस नई दिल्ली द्वारा आयोजित निबंध प्रतियोगिता 2003 में द्वितीय व 2005 में प्रथम स्थान प्राप्त किया। इसी के साथ कई राज्यस्तरीय एवं राष्ट्रीय स्तर के सेमीनार में आलेख भेजने में पत्रिका की अहम भूमिका रही है। इसके अध्ययन के कारण मेरी लेखन शक्ति बढ़ी है साथ ही किसी भी सेमिनार या वाद विवाद, या किसी भी संस्था द्वारा आयोजित कार्यशाला या संगोष्ठी में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने में या भाषण देने में दिक्कत नहीं होती। मैं विश्वास एवं आत्मविश्वास के साथ अपनी बातों को लोगों के समक्ष रख सकता हूं।

फरवरी का अंक जो जनस्वास्थ्य पर केंद्रित है काबिलेतारिफ है। सर्वप्रथम मैं संपादकीय के लिये धन्यवाद देना चाहूंगा कि उन्होंने पाठक गण के लिये समय-समय पर विशेष आलेख व संपादकीय के माध्यम से प्रेरित करते रहते हैं।

लेखक सौमिल नागपाल का लेख सभी लोगों को स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान करने के भारत के प्रयास, में जिस प्रकार से भारत में स्वास्थ्य क्षेत्र हेतु वित्त की व्यवस्था को चित्रों के माध्यम से एवं तालिकाओं के माध्यम से समझाया है। कानूनी प्रक्रिया में लेखक सुदीप चौधरी का लेख 'भारत में पेटेंट कराई गई दवाओं की ऊंची कीमतें क्या हम इस बारे में कुछ कर सकते हैं?' में 2013 में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के एकाधिकार वाली दवाओं की क़ीमतों को तालिका के माध्यम से समझाया गया है जो ज्ञानवर्धक है। लेखक अजय महल, उमा गणेश, नीलू अरुण, अरुण मायरा, ऋतु सारस्वत, रविशंकर, अभिनीत कुमार, कविता

(शेषांश पृष्ठ 10 पर)

श्रद्धांजलि

मशहूर लेखक और पत्रकार खुशवंत सिंह का गत दिनों 99 साल की उम्र में निधन हो गया। खुशवंत सिंह, *योजना* के संस्थापक संपादक थे। वे अंग्रेज़ी के बेहतरीन लेखकों में गिने गए। उन्हें दुनियाभर में शोहरत मिली। उन्होनें 100 से ज्यादा क़िताबें लिखीं और 60 साल तक पत्रकारिता से जुड़े रहे। कॉलम लिखने का उनका सिलसिला हाल तक जारी रहा।

खुशवंत सिंह का जन्म 2 फरवरी, 19915 को पाकिस्तान के पंजाब प्रांत के हदाली में हुआ था। वक़ालत की पढ़ाई पूरी कर लाहौर में काम शुरू भी किया परंतु थोड़े दिन बाद वक़ालत छोड़ लिखना शुरू कर दिया। उन्होंने कुछ समय के लिए विदेश सेवा में भी काम किया लेकिन जल्द ही उस काम को छोड़ दिया और पत्रकार बन गए।

खुशवंत सिंह *इलस्ट्रेटेड वीकली* के संपादक रहे। इसके बाद *नेशनल हेराल्ड* और *हिन्दुस्तान टाइम्स* के भी संपादक रहे। वे 1980 से 1986 तक राज्यसभा सदस्य भी रहें। उन्हें 1974 में पद्म भूषण से एवं 2007 में पद्म विभूषण से नवाज़ा गया। उनका साप्ताहिक स्तंभ 'विद मैलिस टुवर्ड्स वन एंड ऑल' हिंदी में 'बुरा मानो या भला' काफी लोकप्रिय हुआ। ❑

In Association with

ETEN IAS
Institute for Administrative Services

ALS IAS

India's largest IAS Coaching Network

UPSC CIVIL SERVICES EXAM 2014

PRELIMS 2014: GENERAL STUDIES & CSAT
MAINS, OPTIONAL (Geog, Pub Ad)
MOCK TEST SERIES & INTERVIEW

(English & हिन्दी माध्यम)

INDIA'S BEST IAS MENTORS

MR. JOJO MATHEWS

MR. MANISH GAUTAM

MR. SHASHANK ATOM

MR. MANOJ K. SINGH

1464 RANKS IN LAST 12 YEARS

161 successful candidates in 2013

ALOK RANJAN JHA

ALL INDIA RANK 1

2001 Exam

S. NAGARAJAN

ALL INDIA RANK 1

2004 Exam

RUKMANI RIAR

ALL INDIA RANK 2

2011 Exam

ANUPAMA T V

ALL INDIA RANK 4

2009 Exam

ADMISSION OPEN. LIMITED SEATS.

Call: 9654200517/23 | Toll free: 1800-1038-362 | Email: csp@etenias.com | Website: www.etenias.com

ETEN IAS CENTRES: Ahmedabad, Allahabad, Bangalore, Bhopal, Bhubaneshwar, Bilaspur, Chandigarh, Chennai, Cochin, Dimapur, Guwahati, Hyderabad, Imphal, Jaipur, Jammu, Jodhpur, Kanpur, Kohima, Kolkata, Lucknow, Nagpur, Patna, Pune, Raipur, Shillong, Srinagar, Vijaywada, Trivandrum

ALWAYS LEARNING

PEARSON

YH - 288/2013

संपादकीय

मुख्य संपादक की कलम से

स्वप्नलोक की विसंगतियां

औपनिवेशिक से लेकर आधुनिक काल तक भारत के आर्थिक इतिहास में विभिन्न चरण सुस्पष्ट दिखाई देते हैं। 1757 की प्लासी की लड़ाई के बाद भारत में अंग्रेज़ी शासन की औपचारिक शुरुआत के पूर्व भारत विश्व के सबसे समृद्ध देशों में से एक था। विद्वानों के अनुमानों के अनुसार मुगलकाल में तो विश्व अर्थव्यवस्था की एक चौथाई हिस्सेदारी के साथ भारत विश्व की दूसरी सबसे बड़ी आर्थिक शक्ति थी। शोषणकारी अंग्रेज़ी शासन की दो सदियों में भारत की संपदा लूटकर अन्यत्र ले जायी गयी और फिर जो उद्योगों को नष्ट करने का क्रम चला वह भारत के लोगों को बहुत भारी पड़ा। महान राष्ट्रवादी नेता दादाभाई नौरोजी, पहले व्यक्ति थे जिन्होंने बड़े सधे हुए तरीके से औपनिवेशिक शोषण के इस पहलू को उजागर किया। उनके विश्लेषण से ही स्वतंत्रता संग्राम की सैद्धांतिक नींव पड़ी, जो 1947 में भारत की स्वतंत्रता के रूप में फलीभूत हुई।

स्वतंत्रता के समय भारत को विरासत में एक ठहरी हुई अर्थव्यवस्था मिली। 1900 से 1950 तक भारत की विकास दर शून्य के बराबर थी। स्वतंत्र भारत ने नियोजन का तरीक़ा अपना कर आर्थिक पुनर्निमाण की प्रक्रिया की शुरुआत की। शुभारंभ महालनबीस-फेल्डमैन मॉडल से हुआ, जिसका लक्ष्य था भारत को आत्मनिर्भर बनाने के लिये आवश्यक पूंजीगत वस्तुओं के उद्योगों का निर्माण करना। परंतु, 1980 के दशक के प्रारंभ से ही दुनिया भर में वैश्वीकरण की प्रक्रिया के साथ अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक एकीकरण की बयार बहनी शुरू हो चुकी थी। तब भारत को लगा कि उसकी विकास दर, जिसे व्यंग्य से 'हिंदू विकास दर' कहा जाता था, मुश्किल से 3 प्रतिशत थी, देशवासियों की बढ़ती आकांक्षाओं और अपेक्षाओं को पूरा करने के लिये बहुत ही कम थी। नियोजित आर्थिक विकास प्रक्रिया की विसंगतियां तब के लाइसेंस-परमिट राज में स्पष्ट दिखाई देती थी, जिसने नौकरशाह-ठेकेदार-नेता के किराया वसूल वर्ग को सशक्त बनाया। यह वर्ग व्यवस्था से प्राप्त लाभ को हथियाने के लिये जाना जाता था। यही वह समय था, जब आर्थिक सुधारों की शुरुआत हुई। इसके पीछे विश्व अर्थव्यवस्था के अंदर वित्तीय पूंजी के बढ़ते दायरे की भूमिका कम महत्वपूर्ण नहीं थी।

1990 के दशक के प्रारंभ में विदेशी ऋणों के भुगतान में देरी से बचने के लिये भारत को संरचनात्मक समायोजन का रास्ता अपनाना पड़ा और इसी के साथ आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया ने गति पकड़ ली। इन सुधारों के कारण अर्थव्यवस्था में खुलापन आया, नियत्रंण का युग समाप्त हुआ और वित्तीय एवं बैंकिंग क्षेत्रों में उल्लेखनीय परिवर्तन आए। अर्थव्यवस्था के शिखर पर हावी सार्वजनिक क्षेत्र से बाज़ार आधारित खुली अर्थव्यवस्था की ओर संक्रमण एक जटिल और बहुस्तरीय प्रक्रिया रही है। इस संक्रांति से निश्चय ही सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में तेजी से वृद्धि होने लगी जो 1991-92 से 2003-04 के बीच 5 प्रतिशत से अधिक रही और 2003-04 से 2011-12 के बीच 6 प्रतिशत से ऊपर रही। गरीबी के अनुपात में गिरावट, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) में सुधार और विदेशी मुद्रा का बढ़ता कोष, इस अवधि की प्रमुख उपलब्धियां रहीं।

परंतु, इसी अवधि में देश में असमानता के स्तर में भी भारी वृद्धि देखी गई। एक अध्ययन के अनुसार 1990 के दशक के प्रारंभ और 2100 के दशक के प्रारंभ दोनों में कुल परिसंपत्तियों का कम से कम 50 प्रतिशत, धनियों में भी धनी 10 प्रतिशत लोगों के पास केंद्रित था, जबकि निर्धनतम 10 प्रतिशत लोगों के हाथ कुल परिसंपत्तियों का मुश्किल से 0.4 प्रतिशत था। जहां तक भूमि का संबंध है, धन-संपदा से कहीं अधिक असमान वितरण, इस क्षेत्र में हैं। वित्तीय परिसंपत्तियों का स्वामित्व तो और भी सीमित हाथों में केन्द्रित है। प्रायः समस्त वित्तीय संपदा जनसंख्या के 1 प्रतिशत से भी कम लोगों के पास निहित है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि संसाधन के वितरण में असमानता, अवसरों की असमानता में बदल जाती है, जो भारत की आर्थिक नीति के घोषित लक्ष्य-समावेशी विकास को ही नकार देती है। आर्थिक सुधारों के युग में रोज़गार सृजन के अवसरों के बारे में भी गंभीर चिंता जताई जाती रही है। विकास दर में वृद्धि से रोज़गार के अवसरों में अपेक्षित सुधार नहीं हुआ है। इसी प्रकार विनिर्माण अर्थात औद्योगिक क्षेत्र का जीडीपी में योगदान कुल 16 प्रतिशत ही रहा है, जो काफी कम है। इससे आर्थिक विकास और रोज़गार की भावी संभावनाओं पर संरचनात्मक दबाव बढ़ा है।

निश्चय ही, समावेशी विकास का अधिकार आधारित मॉडल तभी सफल हो सकता है, जब हम अधिक से अधिक लोगों को राष्ट्रीय संपदा के सृजन की प्रक्रिया से उत्पादक रूप से जोड़ सकेंगे। आखिरकार, प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जॉन रॉबिन्सन ने सही ही कहा है कि ''शोषित होने से कहीं बदतर है शोषित होने का भी अवसर नहीं प्राप्त हो पाना।'' ❑

YH - 291/2013

भारत के तीन ब्रह्मास्त्र

आलोक शील

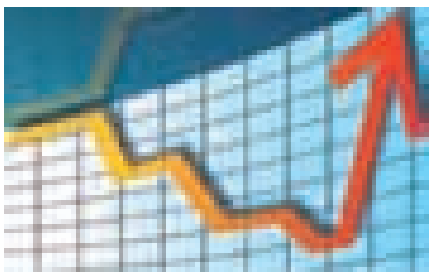

भारतीय अर्थव्यवस्था भी कठिनाइयों में घिरी है, इसकी चुनौतियां जरा अलग-सी हैं। जिन कटौतियों को वापस लिया जाना है, वे ज्यादातर घरेलू हैं और मांग से ज्यादा आपूर्ति से जुड़ी हैं। तीन बड़े तीर (ब्रह्मास्त्र), कृषि, श्रमवर्धित निर्माण और वित्त का संधान किया जाना जरूरी है, ताकि अच्छे शासन का वातावरण तैयार हो सके। इससे घरेलू और बाहरी वृहत आर्थिक संतुलन कायम हो सकेगा और स्थायी रूप से उच्च वृद्धि का लक्ष्य हासिल किया जा सकेगा

अमरीका, ब्रिटेन और जापान की बात छोड़ दें, तो पिछली तिमाही के आंकड़े यह साफ करते हैं कि विश्व अर्थव्यवस्था अभी भी कठिनाइयों के दौर से बाहर नहीं आ पायी है। वैश्विक अर्थव्यवस्था अभी भी जीवनरक्षक आधार की मोहताज है। दो प्रमुख मांग-पुनर्संतुलन, उच्च स्तर से उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्था और सार्वजनिक से निजी अर्थव्यवस्था का भविष्य अभी भी अधर में है। सन् 2010 और 2011 की भ्रामक उदीयमान अवस्था ने निर्णायकों को अपना फ़ैसला लंबित रखने को तब तक मज़बूर कर रखा है, जब तक कि जीवनरक्षक आधार वापस लेने के बाद आगे की कई तिमाहियों तक वापसी का क्रम बरकरार न रहे। यहां अमरीका और जर्मनी को अपवाद रखते हुए यह विचार करना जरूरी है कि बड़ी उच्च स्तरीय अर्थव्यवस्थाओं को अभी भी व्यापक मंदी के घाटे से उबरना बाकी है। जहां तक उच्चस्तरीय अर्थव्यवस्थाओं में से अमरीका का मसला है, यह सन् 2003-2007 पर आधारित राष्ट्रीय सकल घाटे से अब तक नहीं उबर पाया है। यह असामान्य स्थिति है। मिलों के चलने से जुड़ी मंदी उपरोक्त विकास ट्रेंड के सापेक्ष होती हैं, जिससे सकल घाटे का पूरा होना माना जाता है।

वैश्विक रिकवरी पर नज़र डालने के दो तरीके समीचीन हैं। एक तरफ केनेथ रोगोफ और कारमेन रेनहर्ट के शोध इंगित करते हैं कि घाटे से उबरना एक समयातीत अनुभव है और यह वित्तीय संकट के दौर में धीमा और पीड़ित करने वाला रहा है। दूसरा तरीका यह है कि हम निम्न स्तर पर वृद्धि के पैमाने को देखें। यह अभी बना रहने वाला है, क्योंकि पुराना विकास मॉडल बिखर चुका है, सन् 2003-2007 का ट्रेंड एक अस्थायी उभार की तरह था जो उच्च स्तर के दंड और असंतुलन पर आधारित था, खासकर अमरीका, जर्मनी और यूरोपीय संघ के अंदर। ये असंतुलन अब धीरे-धीरे खुल रहे हैं और विकास के ट्रेंड को नीचे ला रहे हैं। हार्वर्ड विश्वविद्यालय के लॉरेंस समर्स की सोच है कि अमरीकी अर्थव्यवस्था एक किस्म की धर्मनिरपेक्ष परिपूर्णता के दौर में है। पिछले विकास ट्रेंड की तरफ लौटना अब सुदूर तक पहुंच के अभाव और राजनीतिक रूप से भिन्न सांगठनिक सुधारों के बिना मुश्किल है। अलग तरह से देखा जाए तो इससे उबरने की प्रक्रिया वैश्वीकरण की चपेट में, अधिकतम वित्तीयकरण और पुरानी होती प्रणाली में पहुंच चुकी है, जहां पहले से ही संकट मौजूद थे। लेकिन इस संकट को कुछ हद तक बड़े नियमनों की वजह से टाला जा सकता था। जापान इस संकट में फंसने वाला सबसे अगले क्रम का देश था, लेकिन उच्चतम अर्थव्यवस्थाओं वाले अन्य देश भी पीछे नहीं हैं।

नीति नियंताओं के लिए वर्तमान वैश्विक विकास दर 3-3.5 प्रतिशत राजनीतिक रूप से स्वीकार्य नहीं हो सकता, क्योंकि सन् 2003-2007 का औसत 5 प्रतिशत रहा था। लेकिन अगर नया सामान्य क्रम बरकरार रहता है तो अन्य उत्प्रेरक विकास की बजाय संकट ही पैदा करेंगे।

वास्तव में ऐसे काफी संकेत हैं, जो बता रहे हैं कि ऐसा हो रहा है। सन् 2003-2007 की तुलना में उच्चस्तरीय अर्थव्यवस्था और उभरते बाज़ार दोनों के ही वृद्धि में तेज़ी से गिरावट हुई है। लेकिन इस उभार के पूर्व वैश्विक वृद्धि पिछले दस साल के औसत से कम नहीं रही है। सबसे बड़ा अंतर यह है कि उभरते

हुए बाज़ार अभी भी विकसित हो रहे हैं और ये सन् 1994-2003 के औसत से तेज़ दर से बढ़ रहे हैं, जबकि उच्चस्तरीय अर्थव्यवस्था में ऐसा नहीं हो रहा है। इस प्रकार धर्मनिरपेक्ष परिपूर्णता उच्चस्तरीय आर्थिक समस्या के रूप में उभर कर सामने आयेगी। खासकर सन् 2003-2007 का उभार एक तरह से उभरते बाज़ार की घटना थी। फिर भी आगे यह नज़र आता है कि जब से वैश्विक वित्तीय संकट सामने आया है बाज़ार के उभरने की घटना अब कम हो रही है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के हालिया विश्व अर्थव्यवस्था पर्यवेक्षण से यह बात सामने आयी है कि उच्चस्तरीय अर्थव्यवस्थाओं के लिए विकास दर की संभावना ज्यादा है, बजाय उभरते बाज़ार के। अगर प्रतिव्यक्ति आय के मुताबिक देखें तो विकास दर दोनों किस्म की अर्थव्यवस्थाओं में और भी कम दिखता है।

वास्तविक मसला यह है कि उभरते हुए बाज़ार अभी भी उच्चस्तरीय अर्थव्यवस्थाओं पर तेज़ विकास के लिए निर्भर हैं। अगर उच्चस्तरीय अर्थव्यवस्था के अंदर मौजूद वृद्धि दर की बात की जाए तो उभरते हुए बाज़ारों को अपना वजूद कायम रखने के लिए उच्चस्तरीय विकास दर बरकरार रखनी होगी और वृद्धि का पैमाना ऊंचा रखना होगा। जैसा कि उच्चस्तरीय अर्थव्यवस्था में देखा जाता है कि उन्हें भी राजनीतिक रूप से भिन्न सांगठनिक सुधारों का अनुपालन करना होता है।

वास्तविक मसला यह है कि उभरते हुए बाज़ार अभी भी उच्चस्तरीय अर्थव्यवस्थाओं पर तेज़ विकास के लिए निर्भर हैं। अगर उच्चस्तरीय अर्थव्यवस्था के अंदर मौजूद वृद्धि दर की बात की जाए तो उभरते हुए बाज़ारों को अपना वजूद कायम रखने के लिए उच्चस्तरीय विकास दर बरकरार रखनी होगी और वृद्धि का पैमाना ऊंचा रखना होगा। जैसा कि उच्चस्तरीय अर्थव्यवस्था में देखा जाता है कि उन्हें भी राजनीतिक रूप से भिन्न सांगठनिक सुधारों का अनुपालन करना होता है।

स्पष्ट रूप से भारतीय अर्थव्यवस्था भी संकट में है, हालांकि इसकी चुनौतियां भिन्न प्रकार की हैं, लेकिन अन्य उभरते बाज़ारों की तरह इसके सामने भी संकट बरकरार है। वृद्धि में गिरावट, आंतरिक, बाह्य और ढांचागत असंतुलन की तुलना दूसरे उभरते बाज़ारों से करें तो यह भारतीय अर्थव्यवस्था के ख़िलाफ़ ही हैं। भारत ने हाल ही में इंडोनेशिया से दूसरी सबसे तेज जी-20 अर्थव्यवस्था वाले देश की रैंक गंवायी है। इन्हीं कारणों से सन् 1997 और 2008 से बिल्कुल अलग मुद्रा संकट के शिखर पर खड़ा पा रहा है और यह हालत मुद्रा संकट के साथ उभरते बाज़ारों की वजह से ज्यादा देखा जा रहा है।

आखिरकार मध्यवर्ती काल में उच्च वृद्धि के बरअक्स सुधारों को बनाये रखने की कितनी अपेक्षा है और यह किन कारकों पर निर्भर करेगा? हालांकि मध्यवर्ती काल में वैश्विक उभार की संभावनाएं काफी कम हैं, लेकिन भारत के संदर्भ में संतुलन बनाये रखने की वजहों के पीछे दो तरीके के आशावाद मौजूद हैं। पहला, दो प्रमुख संचालक जिन्होंने हाल ही में भारतीय वृद्धि दर को 5.5-6.6 प्रतिशत से 8-9 प्रतिशत तक पहुंचाया है, वे बरकरार हैं। निर्भरता के कारक लगातार कम हो रहे हैं, जबकि कुछ हद तक सकल घरेलू उत्पाद के अंतर्गत घरेलू बचत में 10 प्रतिशत की वृद्धि बरकरार है, हालांकि वित्तीय बचत में थोड़ी गिरावट देखी जा रही है। दूसरा, घटती मांग के वैश्विक दौर में भारत के अंदर आपूर्ति संबंधी समस्याओं की वजह से घरेलू मांग संकट भी मौजूद है। दूसरे, उभरते बाज़ारों की तरह उच्च वृद्धि के लिए बाहरी निर्भरता की बजाय भारत में यह आंकड़ा वस्तुतः ज्यादातर घरेलू मांग पर टिका है।

बाज़ार का उभार ही वह सर्वश्रेष्ठ समय था, जब दंड और कटौतियों से इसे वापस स्थापित किया जा सकता था। इससे अच्छा समय नहीं था, जब उच्च वृद्धि की बजाय कठिनाइयां सह ली जाती। लेकिन वास्तविकता यह है कि उभार के दौर में ही कठिन सुधारों को पर्दे के पीछे से लागू किया गया और हम इस भ्रम में रहे कि इसके बगैर भी हमारा काम चल सकता है। जैसा भी हो, चूंकि आपूर्ति का संकट हमारा अपना गढ़ा हुआ था और यह किसी बाहरी कारक के दबाव में नहीं था, इसका समाधान भी हमारे अपने नियंत्रण में ही था, यह आसान नहीं होगा। अंग्रेज़ी कवि थॉमस इलियट के शब्दों में कहें, तो ''विचारों और वास्तविकता के बीच में एक छाया होती है। इन घरेलू दंडों-कटौतियों को वापस लेना एक बड़ी राजनीतिक चुनौती से कम नहीं है।''

यह वास्तविक जगह नहीं है, जहां इन दंडों-कटौतियों की एक लिस्ट बनायी जा सकती है। इन तीन कटौतियों को काबू करने के लिए तीन ब्रह्मास्त्रों को चलाने की ज़रूरत आज आन पड़ी है। ये हैं, कृषि जो मुद्रास्फीति की समस्या का समाधान कर सकता है। श्रमजनित निर्माण जो चालू खाता संकट को टाल सकता है और तीसरा, वित्तीय पुनर्गठन जो आधारभूत घाटे को खत्म कर सकता है।

वृहत अर्थशास्त्री को एक सामान्य फिजिशियन की तरह जाना जा सकता है, जो सामान्य बीमारियों के लिए पर्ची पर दवाएं लिखता है। वह किसी खास रोग की सटीक दवा नहीं लिखता, क्योंकि उसका इलाज एक विशेषज्ञ की टीम द्वारा सकल जांच के बाद

ऐसे समय में जब मुद्रास्फीति के ट्रेंड विश्व में अपना प्रभाव दिखा रहे हैं, भारत में उभरते बाज़ार स्थापनाओं के बावजूद मौजूदा उच्च मुद्रास्फीति भ्रमित करने वाली है। वर्तमान में वैश्विक रुझान विविधताओं से भरा है। भारतीय मुद्रास्फीति की जड़ें वृहत आर्थिक असंतुलन में विद्यमान नहीं है। लेकिन अगर भोजन की मुद्रास्फीति खलनायक की भूमिका में है, तो यह चिंता करने वाली बात है कि वैश्विक खाद्य की कीमतें नीचे आयी हैं। और यही यह सवाल उठता है कि क्यों भारत इस संदर्भ से बाहर है?

ही किया जा सकता है। लेखक न ही विषय के विशेषज्ञ हैं न ही उन्हें इन ब्रह्मास्त्रों को डिजाइन, निर्माण और सटीक लक्ष्य पर फायर करने की विशेषज्ञता है। फिर भी उन्हें इस बात का विश्वास है कि इन तीन ब्रह्मास्त्रों को अगर सटीक तरीके से निशाना लगाया जाए तो अच्छे शासन से चलाये गए तीर से वर्तमान वृहत

आर्थिक असंतुलन को ठीक किया जा सकता है और ये स्थायी उच्च विकास लक्ष्य को प्राप्त करने में अपनी भूमिका निभा सकते हैं।

ऐसे समय में जब मुद्रास्फीति के ट्रेंड विश्व में अपना प्रभाव दिखा रहे हैं, भारत में उभरते बाज़ार स्थापनाओं के बावजूद मौजूदा उच्च मुद्रास्फीति भ्रमित करने वाली है। वर्तमान में वैश्विक रुझान विविधताओं से भरा है। भारतीय मुद्रास्फीति की जड़ें वृहत आर्थिक असंतुलन में विद्यमान नहीं है। लेकिन अगर भोजन की मुद्रास्फीति खलनायक की भूमिका में है, तो यह चिंता करने वाली बात है कि वैश्विक खाद्य की कीमतें नीचे आयी हैं। और यही यह सवाल उठता है कि क्यों भारत इस संदर्भ से बाहर है?

भारत में खाद्य की क़ीमतें पारंपरिक रूप से वैश्विक क़ीमतों से नीचे रहीं हैं। उच्च खाद्य मुद्रास्फीति के बावजूद खाद्य कीमतें यहां कम रहीं हैं और सब्जियों और अनाज की क़ीमतें भी संपूरक ही रही हैं। इस तरह अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को घरेलू खाद्य मुद्रास्फीति के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। भारतीय खाद्य मुद्रास्फीति की जड़ें घरेलू कारणों में है और यह बाज़ार की विफलता में छिपी हैं। इस बात में जरा भी आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि कृषि एक क्षेत्र है, जहां सन 1990 के खुलेपन और आर्थिक उदारवाद के दौर में भी प्रभावी परिणाम हासिल नहीं किया जा सका है।

दालों की मुद्रास्फीति इस कारण बढ़ी क्योंकि प्रशासनिक रूप से समर्थन मूल्य में बार-बार बढ़ोतरी की गयी, सार्वजनिक भंडारण बढ़ा और बड़े पैमाने पर सर्मथन कार्यक्रम चलाये गए। इससे दलहन की तरफ से गैर दलहनी अनाजों की तरफ मांग का प्रवाह बढ़ाया नहीं जा सका, क्योंकि इसमें आय ज्यादा हो रही थी। गैर-दलहनी अनाजों में मुद्रास्फीति इसलिए बढ़ी क्योंकि बाज़ार प्रणाली और आधारभूत संरचनाओं के प्रणालीगत विकास के अभाव में उत्पादकता पर प्रतिकूल असर पड़ा, बड़े पैमाने पर पैदावार जाया हुआ और खेती और उपभोक्ता के बीच मूल्यों में सही संतुलन नहीं बनाया गया। क़ीमतों के निर्धारण की प्रक्रिया जो प्रभावी बाज़ार के अंतर्गत आपूर्ती और मांग के बीच में संतुलन बनाती है, वह अपेक्षाकृत कमज़ोर है। कृषि का तीर कृषि क्षेत्र में मौजूद इन खामियों को ठीक करने के लिए और कृषि बाज़ार की कार्यप्रणाली को सुचारू करने के लिए चलाया जाना जरूरी है। तकनीक का नियंत्रण भारतीय कृषि में एक वैश्विक प्रतिस्पर्द्धी लाभकारी प्रयोजन है, जिसे अमल में लाने का ही इंतजार हो रहा है।

दूसरा ब्रह्मास्त्र चलाए जाने की जरूरत है जो भारत के श्रम आधारित निर्माण के तुलनात्मक लाभ को घाटे से बचा सकता है। इससे बड़ी संख्या में ऐसे श्रमिक जो निम्न उत्पादकता के कृषि क्षेत्र में लगे हैं, उन्हें उच्च उत्पादकता के निर्माण क्षेत्र में लगाया जा सकता है। इससे आय भी बढ़ेगी और बड़ी संख्या में बेरोज़गार मजदूरों को काम भी मिल सकेगा। भारत भी चीन की तरह लाभ की स्थिति में है। चीन में भी मज़बूत निजी रोज़गार क्षेत्र और विकसित पूंजी बाज़ार है। भूमि, श्रम, टैक्स, दक्षता विकास, शिक्षा और प्रशासन की क्षमताओ के साथ ऐसा कोई कारण नहीं है कि भारतीय निर्माण उद्योग चीन की तरह वैश्विक प्रतिस्पर्धा में अपनी मौजूदगी दर्ज न करा सके। अगर ऐसा होता है तो इससे भारत का वर्तमान खाता असंतुलन पाटने में मदद मिलेगी।

तीसरा ब्रह्मास्त्र वित्तीय है। भारत में वित्तीय सुधारों में फैला भ्रम दूर करने के पर्याप्त कारण हैं कि हम एक चक्रीय और ढांचागत बजट घाटे के बीच का अंतर नहीं पहचानते। गिरती वृद्धि नकारात्मक राजस्व आघात और ऐसे ही अन्य कारणों से बजट घाटा बढ़ाती है। किसी भी स्थिति में ढांचागत संतुलन नहीं बदलता। अंतिम चीज जो नीति नियंताओं को करनी चाहिए वह यह है कि ऐसा आर्थिक ढांचा विकसित करें, जिससे सरकारी मांग कम हो सके और निजी मांग ऐसे स्तर पर हो कि राष्ट्रीय वित्तीय घाटा बदलाव के स्तर पर न आ जाए।

उच्च स्तरीय स्थिति यह है कि भारत का ढांचागत वित्तीय घाटा सार्वजनिक ऋण के मुताबिक सकल घरेलू उत्पाद में गिरावट के उस स्तर पर नहीं पंहुचा है। यह वास्तव में लागातार गिर रहा है। वित्तीय ब्रह्मास्त्र भारत के ढांचागत बजट घाटे के स्तर पर नहीं है, जैसा कि समन्वित तौर पर महसूस किया जाता है। विकास के शुरुआती स्तर पर उच्च वृद्धि अपना ही एक वित्तीय स्थान सृजित करती है, जो बड़े पैमाने पर भौतिक और सामाजिक ढांचागत क्षेत्र में उच्च विकास दर प्राप्त करने और लोगों की बेहतरी के लिए होता है। ऐतिहासिक अनुभवों से इंगित होता है कि निजी निवेश बेहतर संपूरक होते हैं और सहज नीतियों के परिवेश में ज्यादा प्रभावी भी होते हैं। अगर नीतियों को निम्न स्तरीय लोक लाभ और अनुदानित सेवाओं में लगा दिया जाए तो उत्पादकता और विकास दोनों पर ही प्रतिकूल असर पड़ता है और इससे अंततः उपभोक्ताओं का कल्याण प्रभावित होता है। वित्तीय पुनर्गठन में कर सुधार जैसे सामान और सेवा कर, प्रत्यक्ष कर कोड और बेहतर कर प्रशासन, बेहतर राजस्व प्राप्ति जो जीडीपी के अनुपात में हो, आदि आते है। व्यय के अंतर्गत गैर-लक्षित अनुदान से भौतिक और सामाजिक क्षेत्र में ढांचागत निवेश की ओर विचलन समाहित होते है। राजनीतिक कार्यकारियों द्वारा वृहत सामाजिक प्रभावों पर ध्यान देना जरूरी है क्योंकि कम समय के लिए सुधार पीड़ादायक होते है। जैसा कि जर्मनी में कुछ समय पहले चांसलर गेरहार्ड श्रोएडर ने दिखाया कि कैसे बड़े से लघु की ओर ध्यान देकर वित्तीय समर्थन से कठिन समय से उबर कर एक प्रभावशाली और लक्षित सामाजिक सुरक्षा संजाल तैयार किया जा सकता है।

अंततः मैं अपने केंद्रीय तर्कों की बात करूंगा। वैश्विक अर्थव्यस्वथा अभी कठिनाइयों के दौर से बाहर नहीं निकली है। पटरी पर लौटने की रफ्तार अभी काफी धीमी है। दो बड़े संतुलन कारकों का भविष्य अभी अनिश्चित है और असाधारण जीवन रक्षण प्रणाली अभी भी उपयोग में लायी जा रही है। लंबे समय तक वृहत आर्थिक नीतियों पर ज्यादा निर्भरता अपनी विरूपताएं ही पैदा करेंगी, यह साबित हो चुका है। नीति नियंताओं को सुदूरवर्ती और राजनीतिक रूप से कठिन आधारभूत सुधारों को उच्चस्तरीय अर्थव्यवस्था और उभरते बाज़ार दोनों में ही लागू करने होगे, ताकि वे अपनी अर्थव्यवस्था में संतुलन पैदा कर सकें और विकास के नये इंजन विकसित कर सकें। जहां तक भारतीय अर्थव्यवस्था भी कठिनाइयों में घिरी है, इसकी चुनौतियां जरा अलग-सी हैं। जिन दंडों को वापस लिया जाना है, वे ज्यादातर घरेलू हैं और मांग से ज्यादा आपूर्ति से जुड़ी हैं। तीन बड़े तीर (ब्रह्मास्त्र), कृषि, श्रमवर्धित निर्माण और वित्त का संधान किया जाना जरूरी है, ताकि अच्छे शासन का वातावरण तैयार हो सके। इससे

घरेलू और बाहरी वृहत आर्थिक संतुलन कायम हो सकेगा और स्थायी रूप से उच्च वृद्धि का लक्ष्य हासिल किया जा सकेगा। ❑

(लेखक सन् 1982 से भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्य हैं। वे वर्तमान में प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद के सचिव हैं। परिषद भारतीय प्रधानमंत्री को विभिन्न आर्थिक मामलों में सलाह देने के अलावा भारतीय अर्थव्यवस्था से जुड़े पुर्वानुमानों से नियमित तौर पर अवगत कराती रहती है।

लेखक को विकास और वृहत आर्थिक नीतियों से जुड़े प्रशासन के साथ-साथ भारत की ओर से जी 20 देशों के बीच बहुपक्षीय आर्थिक नीतियों के निर्माण का तीन दशक का अनुभव है। लेखक को भारत सरकार और केरल सरकार के वित्त विभाग/मंत्रालय में विविध महत्वपूर्ण कार्यों का सफल अनुभव रहा है। उन्हें वाशिंगटन स्थित भारतीय दूतावास में कूटनीतिक अनुभव भी प्राप्त है। लेखक ने विशिष्टता के साथ लंदन के ब्रेडफोर्ड विश्वविद्यालय और जेएनयू, नयी दिल्ली से पीएचडी की उपाधि प्राप्त की है। वे प्रमुख वित्तीय दैनिक समाचारपत्रों में आर्थिक और सामाजिक मामलों के नियमित टिप्पणीकार रहे हैं और द इकोनोमिक टाइम्स, इंडियन एक्सप्रेस, फाइनेंशियल एक्सप्रेस, बिजनेस स्टैंडर्ड और फाइनेंशियल टाइम्स में 150 से ज्यादा आलेख लिख चुके हैं। लेखक भारत और भारत के बाहर आयोजित होने वाले विभिन्न शैक्षिक सम्मेलनों, वर्कशॉप आदि के नियमित वक्ता और भागीदार रहे हैं। उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर काफी यात्राएं की हैं। भारतीय इतिहास, अंतर्राष्ट्रीय आर्थिकी और वित्त पर उनके कई प्रामाणिक शोध प्रबंध कई अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक शोध प्रबंध कई अंतराष्ट्रीय शैक्षिक शोध-पत्रों और पुस्तकों में प्रकाशित हो चुके हैं। पूरी सूची और प्रकाशन www.aloksheel.com **पर उपलब्ध है।**

यह लेख 1-18 फरवरी, 2014 को भारतीय प्रबंधन संस्थान, बंगलुरू द्वारा मैक्रो पॉलिसी एनवायर्नमेंट, आपीआर और कंपीटिशन पॉलिसी विषय पर आयोजित राष्ट्रीय कार्यशाला के उद्घाटन भाषण के संपादित अंश। ई-मेलः aloksheel@aloksheel.com **)**

(पृष्ठ 3 का शेषांश)

पंत तथा सुनील वात्स्यायन और शैलेंद्र सिन्हा के लेख भी काबिलेतारिफ हैं। मेरी ओर से सभी लेखकों का साधुवाद।

सुजीत कुमार
भागलपुर, बिहार

भारत के लिए स्वास्थ्य चुनौती

मैं *योजना* का फरवरी अंक पढ़ा। जनस्वास्थ्य पर केंद्रित बहुत अच्छा लगा क्योंकि अंक में स्वास्थ्य पर भरपूर जानकारियां दी गई हैं।

भारत के लिए ही नहीं विश्व के लिए भी स्वास्थ्य एक गंभीर चुनौती है।

हाल के वर्षों में, विश्व के अनेक देशों ने अपने लोगों को सभी स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया कराने के लक्ष्य को लेकर गतिविधियां तेज़ कर दी हैं। भारत ने भी स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया कराने में काफी तेज़ी लाई है लेकिन इसका असर अभी काफी कम दिखाई पड़ता है।

आय के समान स्तर वाले देशों में जीडीपी के अंश के तौर पर स्वास्थ्य के ऊपर सार्वजनिक व्यय के लिहाज से भारत विश्व के समकक्ष देशों की तुलना में काफी निचले स्थान पर है। विश्व बैंक के अनुसार आय के वर्तमान स्तर पर अधिकतर देशों में जीडीपी के अंश के हिसाब से स्वास्थ्य पर होने वाले सार्वजनिक व्यय काफी अधिक हैं।

वर्ष 2005 में शुरू हुआ एनआरएचएम भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय का अग्रणी कार्यक्रम है, जिसका उद्देश्य देश में स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार करना है। संविधान के अनुसार स्वास्थ्य राज्यों का विषय है। परंतु केंद्र सरकार एनआरएचएम के जरिये राज्य सरकारों को स्वास्थ्य सेवाओं को सुदृढ़ बनाने में मदद करती है। एनआरएचएम के अंतर्गत राज्यों को अतिरिक्त संसाधन उपलब्ध कराये जाते हैं। यह कार्यक्रम मुख्यत: ग्रामीण क्षेत्रों, प्राथमिक देखभाल और लोक स्वास्थ्य कार्यक्रमों पर विशेष बल देता है।

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा संचालित राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएम) और श्रम तथा रोज़गार मंत्रालय द्वारा संचालित राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन का नाम बदलकर अब राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (एनएचएम) हो गया है और अब शहरी क्षेत्रों में भी इसका विस्तार किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त अनेक राज्यों में भी जन हितकारी स्वास्थ्य योजनाएं शुरू की गई हैं। देश में चिकित्सकों की कमी और संतुलित पोषक आहार भी एक गंभीर चुनौती है। इसके लिए केंद्र और राज्य सरकारें प्रयासरत हैं।

शशि शेख श्रीवास्तव
डेवढ़ी, सारण, बिहार

योजना
आगामी अंक
मई 2014
ऊर्जा सुरक्षा
जून 2014
भारतीय कृषि

भारत का विलुप्त आर्थिक रूपांतरण

कुणाल सेन

भारत के आर्थिक विकास के पैटर्न की एक विशिष्टता यह रही है कि कृषि से श्रमिकों का विनिर्माण और सेवा क्षेत्रों में आगमन धीमी गति से हुआ है। देशों के विकास के साथ-साथ कृषि से इतर क्षेत्रों में विविधता आती है, और कम उत्पादक कृषि क्षेत्र से श्रमिक अपेक्षाकृत अधिक उत्पादकता वाले विनिर्माण और सेवा क्षेत्रों में प्रवेश करते हैं। इस प्रक्रिया में श्रमिक कृषि से जितना तीव्र गति से अन्य क्षेत्रों में जाते हैं, उतनी ही तीव्र दर से आर्थिक विकास में बढ़ोतरी होती है। चीन की तुलना में भारत में कृषि से विनिर्माण क्षेत्र में श्रमिकों के पुनः आवंटन की गति धीमी रही है

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के 6 दशकों में भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण ढांचागत बदलाव हुआ है। 1955 में देश के उत्पादन में 57 प्रतिशत भागीदारी कृषि क्षेत्र की थी। 2008 में उत्पादन में यह भागीदारी मात्र 19.8 प्रतिशत रह गई। उत्पादन में विनिर्माण क्षेत्र की भागीदारी 1955 में 9.9 प्रतिशत थी। 2008 में यह बढ़ कर 15.6 प्रतिशत पर पहुंच गई। इसका मुख्य श्रेय संगठित या औपचारिक विनिर्माण क्षेत्र के उत्पादन में वृद्धि को दिया जा सकता है, जो 1955 में मात्र 4.9 प्रतिशत से बढ़ कर 2008 में 10.6 प्रतिशत हो गया। संभवतः भारतीय अर्थव्यवस्था में ढांचागत बदलाव की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता यह रही है कि सेवा क्षेत्र की सकल घरेलू उत्पाद में भागीदारी, जो 1955 में 19 प्रतिशत थी, 2008 में बढ़ कर 40.7 प्रतिशत हो गई। यह सर्वविदित है कि भारत के आर्थिक विकास की पद्धति अपने में विशिष्ट रही है, जहां आर्थिक क्रियाकलाप में सेवा क्षेत्र की भागीदारी, भारत की प्रति व्यक्ति आय के स्तर को देखते हुए जितनी होनी चाहिए थी, उससे कहीं अधिक दर्ज हुई है। 1993-2004 की अवधि में सर्वाधिक तेजी से बढ़ने वाले दो सेवा क्षेत्रों में व्यापार सेवा (24.3 प्रतिशत) और संचार सेवा (20.3 प्रतिशत) शामिल है। इसका सर्वाधिक श्रेय सेलुलर टेक्नोलॉजी के आविष्कार को दिया जा सकता है, क्योंकि सरकार ने संचार सेवाओं के प्रावधान से अपना एकाधिकारपूर्ण नियंत्रण त्यागते हुए दूरसंचार क्षेत्र को निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया। (कोतवाल आदि, 2010)। आर्थिक सुधारों ने सेवा क्षेत्र में विदेशी कंपनियों के प्रवेश की छूट दी और साथ ही स्वयं भी सेवा क्षेत्र के विकास में सीधे योगदान किया क्योंकि प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में सेवाओं की भागीदारी 1990 के दशक के उत्तरार्ध में बढ़ कर करीब 30 प्रतिशत हो गई जो दशक के शुरू में 10.5 प्रतिशत थी। 1992 से सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में बहिर्मुखी प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के प्रवेश के परिणाम स्वरूप, सॉफ्टवेयर के निर्यात में महत्वपूर्ण बढ़ोतरी हुई, जो विश्व निर्यात सेवाओं से करीब 6 गुणा अधिक थी।

जहां तक विनिर्माण क्षेत्र का प्रश्न है, इस क्षेत्र की एक विशिष्टता इसका दोहरापन है, अर्थात् इस क्षेत्र में एक तरफ अपेक्षाकृत लघु औपचारिक कंपनियां हैं, जिनमें व्यापक संरक्षित कार्मिक हैं और दूसरी तरफ अनौपचारिक क्षेत्र में असंख्य कंपनियां हैं, जिनमें सामाजिक सुरक्षा, रोज़गार संरक्षण और अन्य फायदों तक कार्मिकों की पहुंच न के बराबर है (मजूमदार और सरकार 2008)। औपचारिक क्षेत्र की कंपनियां श्रम उत्पादकता और कर्मचारियों को दी जाने वाली मजदूरी, दोनों ही दृष्टियों से अलग तरह की हैं। 2005-2006 में औपचारिक क्षेत्र की कंपनियों में श्रमिक उत्पादकता अनौपचारिक क्षेत्र की कंपनियों की तुलना में 28 गुना अधिक थी जबकि उनमें वेतन 5 गुणा अधिक था। अधिक दिलचस्प बात यह है कि समय के साथ-साथ उत्पादकता में यह अंतर बढ़ता गया है। 1984-85 में औपचारिक क्षेत्र की श्रम उत्पादकता अनौपचारिक क्षेत्र की तुलना में केवल 5 गुणा अधिक थी। सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में, विशेष कर 1980 से संगठित विनिर्माण क्षेत्र की भागीदारी बढ़ी है, जबकि जीडीपी में असंगठित विनिर्माण क्षेत्र की भागीदारी उल्लेखनीय रूप में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के 60 वर्षों में निरंतर 5 प्रतिशत के आस-पास बनी हुई है। इसके विपरीत

कुल विनिर्माण क्षेत्र उत्पादन में अनौपचारिक क्षेत्र का महत्व भले ही कम होता रहा हो, लेकिन रोज़गार प्रदान करने में इस क्षेत्र का योगदान इस अवधि के दौरान स्थिर रहा है। कुल विनिर्माण क्षेत्र में 1984-95 की अवधि में श्रमिकों की भागीदारी 83 प्रतिशत थी, जो 2005-06 में मामूली कमी के साथ 80 प्रतिशत रही। भारतीय विनिर्माण क्षेत्र में व्याप्त दोहरापन और महत्वपूर्ण एवं तीव्र आर्थिक परिवर्तन के दौर में अनौपचारिक क्षेत्र की कम उत्पादकता (और कम दिहाड़ी) नीतिगत दृष्टि से चिंता का विषय रही है और संभवत: भारत में गरीबी दूर करने में आर्थिक बढ़ोतरी के प्रभाव को अपेक्षाकृत कम करने में उसकी भूमिका रही है।

भारत के आर्थिक विकास के पैटर्न की एक विशिष्टता यह रही है कि कृषि से श्रमिकों का विनिर्माण और सेवा क्षेत्रों में आगमन धीमी गति से हुआ है। देशों के विकास के साथ-साथ कृषि से इतर क्षेत्रों में विविधता आती है, और कम उत्पादक कृषि क्षेत्र से श्रमिक अपेक्षाकृत अधिक उत्पादकता वाले विनिर्माण और सेवा क्षेत्रों में प्रवेश करते हैं। इस प्रक्रिया में श्रमिक कृषि से जितना तीव्र गति से अन्य क्षेत्रों में जाते हैं, उतनी ही तीव्र दर से आर्थिक विकास में बढ़ोतरी होती है। चीन की तुलना में भारत में कृषि से विनिर्माण क्षेत्र में श्रमिकों के पुन: आवंटन की गति धीमी रही है। 1980 में चीन में रोज़गार में कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी 68.7 प्रतिशत थी, जो लगभग भारत के समान थी, जहां रोज़गार में कृषि क्षेत्र का योगदान 68.1 प्रतिशत था। किंतु, 2000 में चीन में रोज़गार में खेती का योगदान घट कर 50 प्रतिशत रह गया जबकि भारत में यह 59.3 प्रतिशत के उच्च स्तर पर कायम रहा (कोछड़ और अन्य 2006)। कृषि से रोज़गार में स्थानांतरण ज्यादातर सेवा क्षेत्र में हुआ है, जिसकी कुल रोज़गार में हिस्सेदारी बढ़ कर 2004 में 29 प्रतिशत हो गई, जो 1983 में 20 प्रतिशत थी। इसके विपरीत विनिर्माण क्षेत्र की कुल रोज़गार में हिस्सेदारी में बदलाव न के बराबर हुआ है, जो 1983 10.6 प्रतिशत था और 2004 में 11.7 प्रतिशत दर्ज हुआ। उच्च वृद्धि वाले विनिर्माण और सेवा क्षेत्रों में श्रमिकों के आमेलन की दर कम होने का प्रभाव आर्थिक विकास की रोज़गार पैदा करने की क्षमता पर पड़ा है।

इसलिए भारत की उच्च आर्थिक विकास दर रोज़गार के अवसर पैदा करने वाली नहीं रही है। उत्पादन की रोज़गार सक्षमता-सकल घरेलू उत्पाद में 1 प्रतिशत के लिए रोज़गार में प्रतिशत वृद्धि - 1983-1993 की अवधि में 0.40 थी जो 1993-2004 की अवधि में घट कर 0.29 रह गई। इसी प्रकार 90 के दशक में उच्च आर्थिक वृद्धि दर के बावजूद 1993-2004 की अवधि में रोज़गार बढ़ोतरी की दर 1.79 प्रतिशत वार्षिक दर्ज हुई जबकि 1980 के दशक में यह 1.99 प्रतिशत थी। किंतु, 1990 के दशक और 21वीं सदी के पहले दशक में रोज़गार के अवसर पैदा करने की समग्र निम्न दर कौशल श्रेणियों के भीतर रोज़गार के अवसर पैदा करने की पद्धतियों में परिवर्तन दर्शाती है। गरीबी उन्मूलन के परिप्रेक्ष्य में रोज़गार सृजन का सर्वाधिक प्रासंगिक संकेतक संभवत: अकुशल श्रमिकों के लिए रोज़गार वृद्धि की दर हो सकता है। कोतवाल और अन्य (2010) ने यह पाया है कि 1980 के दशक में सर्वाधिक तेज़ी से विकसित हो रहे क्षेत्रों में अकुशल श्रमिकों के लिए रोज़गार के अवसर पैदा नहीं हुए।[1] वास्तव में तेज़ी से बढ़ रहे अनेक क्षेत्रों में अकुशल श्रमिकों को बाहर रखा गया। इस स्थिति में 1990 के दशक में बदलाव आया, जब तेजी से विकसित हो रहे अनेक क्षेत्रों में अकुशल श्रमिकों का प्रचुर इस्तेमाल किया गया। अकुशल श्रमिकों को रोज़गार प्रदान करने की दृष्टि से तेज़ी से बढ़ने वाले क्षेत्रों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यापार और विनिर्माण क्षेत्र रहे, जिनकी सकल घरेलू उत्पाद में हिस्सेदारी 1990 के दशक के प्रारंभ से तेजी से बढ़ी। 1990 के दशक में श्रमिकों को निकालने के साक्ष्य भी कम रहे हैं। 1993-2004 की अवधि में गैर-कृषि रोज़गार में जबर्दस्त इजाफा हुआ, जिसमें 6.02 करोड़ श्रमिक कार्यरत थे जबकि 1983-1993 के दौरान उनकी संख्या 3.59 करोड़ थी।

भारतीय अर्थव्यवस्था के उच्च वृद्धि वाले क्षेत्र में रोज़गार सृजन की दर कम रहने से यह प्रश्न अभी तक अनुत्तरित है कि यह स्थिति क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए इस तथ्य को समझना महत्वपूर्ण है कि भारत में वृद्धि दर का पैटर्न असामान्य रहा है और उसमें ऐसे मानक मार्ग का अनुसरण नहीं किया गया, जो हमने अन्य अर्थव्यवस्थाओं में देखा है, जिसे विशेषकर सर्वाधिक अकुशल श्रमिकों की विस्तृत आपूर्ति में अमल में लाया गया।

रूपांतरण जो कभी नहीं हुआ

भारतीय अर्थव्यवस्था के उच्च वृद्धि वाले क्षेत्र में रोज़गार सृजन की दर कम रहने से यह प्रश्न अभी तक अनुत्तरित है कि यह स्थिति क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए, इस तथ्य को समझना महत्वपूर्ण है कि भारत में वृद्धि दर का पैटर्न असामान्य रहा है और उसमें ऐसे मानक मार्ग का अनुसरण नहीं किया गया, जो हमने अन्य अर्थव्यवस्थाओं में देखा है, जिसे विशेषकर सर्वाधिक अकुशल श्रमिकों की विस्तृत आपूर्ति में अमल में लाया गया। जापान से शुरू करते हुए कोरिया, सिंगापुर, और ताईवान तक सभी प्रमुख एशियाई देशों की अर्थव्यवस्थाओं, और सर्वाधिक अद्यतन चीन और वियतनाम में आर्थिक विकास के आयात प्रतिस्थापन चरणों से प्रारंभिक वर्षों में निर्यातोन्मुखी विकास कार्यनीति अपनाई गई जिसकी परिणति विनिर्माण क्षेत्र में श्रमबहुल खंड में जबर्दस्त वृद्धि के रूप में हुई। इन सभी देशों में जैसे-जैसे उनकी अर्थव्यवस्थाएं विश्व बाज़ारों के साथ अधिक घनिष्ठ एकीकृत हुईं, तो उसके साथ-साथ कृषि आधारित अर्थव्यवस्था से विनिर्माण आधारित अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास और ढांचागत रूपांतरण की प्रवृत्ति देखने को मिली जिसमें दोनों एक-दूसरे के प्रेरक दिखाई दिए। कभी कभी बड़ी संख्या में अधिशेष श्रमिकों का रूपांतरण कम उत्पादक कृषि क्षेत्र से अधिक उत्पादक विनिर्माण क्षेत्र, जो अधिकतर निर्यात बाज़ारों के लिए उत्पादन करने वाला था, (क्रूएगर 1997) में दिखाई दिया और श्रम बहुल विनिर्माण क्षेत्र के तीव्र विस्तार द्वारा

1. वे अकुशल श्रमिक को इस रूप में परिभाषित करते हैं जिन्होंने न्यूनतम मिडिल स्कूल शिक्षा प्राप्त न की हो।

प्रारंभिक चरणों में आर्थिक विकास संचालित किया गया। भारत में ऐसा नहीं हुआ, यहां श्रम बहुल विनिर्माण क्षेत्र विकास का इंजन नहीं बन पाया। वास्तव में, भारत में ज्ञान बहुल सेवा क्षेत्र कुछ पूंजी बहुल विनिर्माण अनुभागों के साथ विकास का इंजन बना। किंतु, ये क्षेत्र अपने स्वरूप के कारण रोज़गार की गहनता वाले क्षेत्र नहीं थे। कृषि से बाहर जो भी रोज़गार के अवसर पैदा हुए वे कम उत्पादकता, कम मजदूरी वाले अनौपचारिक सेवा क्षेत्र (जिनमें मुख्य रूप से व्यापार, होटल और रेस्तरां शामिल हैं) में पैदा हुए। लेकिन, यह अनौपचारिक सेवा क्षेत्र इस तथ्य को देखते हुए कि इस क्षेत्र का विकास अन्य क्षेत्रों के विकास पर निर्भर करता है, विकास का प्रमुख क्षेत्र नहीं हो सकता और इसीलिए उसमें खेती में लगे वर्तमान श्रमिकों को अधिक आमेलित करने की क्षमता नहीं है।

समय के साथ-साथ विनिर्माण उत्पादन और रोज़गार में ठहराव आया है और कुल उत्पादन में सेवा क्षेत्र के औपचारिक और अनौपचारिक दोनों खंडों में वृद्धि हुई है। इसमें कुल रोज़गार में अनौपचारिक सेवा क्षेत्र में वृद्धि दर्ज हुई है। विनिर्माण क्षेत्र में न केवल कुल उत्पादन और कुल रोज़गार की दृष्टि से ठहराव आया है, बल्कि औपचारिक विनिर्माण क्षेत्र का श्रम बहुल खंड समय के साथ सिकुड़ता गया है।

ऐसा क्यों हुआ? इसके कई कारण हैं। पहला, यह कि भारत में व्यापार व्यवस्था सुधारों के बावजूद अभी भी पूंजी-बहुल विनिर्माण की तरफ झुकी हुई है, जिससे पूंजीगत सामान और मध्यवर्ती वस्तु क्षेत्र के संरक्षण की दिशा में कमी आई है। क्षेत्रीय औसत की तुलना में भारत में टैरिफ (शुल्क) अभी भी बहुत ऊंचे हैं (अथुकोराला 2009)। इसके अतिरिक्त 1996-2000 की अवधि में मध्यवर्ती निवेश और उपभोक्ता वस्तुओं की हिस्सेदारी गैर-शुल्क अवरोधों के अधीन बहुत ऊंची रही है, जो क्रमशः 28 और 33 प्रतिशत (दास 2003) थी। दूसरे, कड़े संरक्षण कानून-विश्व में औपचारिक श्रमिकों के सर्वाधिक संरक्षकों के बीच- ने स्थाई अनुबंधों के आधार पर श्रमिकों को रोज़गार देने के कंपनियों के प्रोत्साहन, विशेषकर रोजगार संरक्षण कानूनों के संदर्भ में, को कम किया है और उन्हें पूंजी की तुलना में श्रम की मौजूदा लागत के कारण उत्पादन के अधिक पूंजी गहन स्वरूप की ओर धकेल दिया है। डफेर्टी (2008) ने यह निष्कर्ष निकाला था कि बड़ी कंपनियों (यानी 100 या उससे अधिक श्रमिकों वाली कंपनियां) में रोज़गार में बढ़ोतरी ज्यादातर अनुबंध आधारित श्रमिकों के रूप में हुई है - यानी ऐसे श्रमिक जो बिचौलियों के जरिये काम पर रखे जाते हैं और जिन्हें रोज़गार संरक्षण कानून का लाभ नहीं मिलता। इन कंपनियों में स्थायी श्रमिकों के रोज़गार में कमी आई है। 100 या उससे अधिक श्रमिकों वाली कंपनियों पर रोज़गार संरक्षण कानून लागू होता है इससे यह पता चलता है कि श्रम कानून ने कंपनियों को नियमित श्रमिकों को छोड़ कर अस्थायी श्रमिकों की भर्ती के लिए मज़बूर किया है। दूसरी तरफ 100 से कम मज़दूरों वाली कंपनियों में स्थायी श्रमिकों का रोज़गार बढ़ा है। गुप्ता और अन्य (2008) ने पाया कि अपेक्षाकृत कम लचीले श्रम कानून वाले भारतीय राज्यों में श्रम बहुल उद्योगों की वृद्धि दर कम रही है और समग्र रोज़गार वृद्धि में भी कमी दर्ज हुई है। साहा, सेन और मैती (2013) ने पाया कि स्थायी श्रमिकों का पक्ष लेने वाले श्रम कानून रखने वाले राज्यों में नियमित श्रमिकों की तुलना में अनुबंध आधारित श्रमिकों का अधिक विकास हुआ है। औपचारिक विनिर्माण क्षेत्र में रोज़गार रहित विकास का तीसरा कारण ढांचागत अड़चनें (विशेषकर विद्युत पहुंच) और छोटी कंपनियों में उद्यमशीलता विकास के मार्ग में अन्य रुकावटें (जैसे औपचारीकरण की ऊंची लागत) रही हैं। इनमें लघु उद्योगों के लिए आरक्षण नीति का लंबा इतिहास भी शामिल है जो बड़ी इकाइयों को श्रम बहुल उद्योगों में प्रवेश से रोकती है (जोशी 2010)। अंततः, अर्थव्यवस्था को खोलने की परिणति विदेश से सस्ते पूंजीगत सामान की उपलब्धता के रूप में सामने आई है और आर्थिक सुधारों से बढ़ी हुई प्रतिस्पर्धा समर्थक ताक़तों ने कंपनियों के कौशल और पूंजी गहनता में वृद्धि की है। यहां तक कि अनौपचारिक क्षेत्र में स्थित कंपनियों की क्षमता भी बढ़ी है ताकि विदेशी प्रतिस्पर्धा का सामना किया जा सके। (सेन 2008, राज और सेन 2012, कथूरिया, राज और सेन 2010)।

समय के साथ-साथ विनिर्माण उत्पादन और रोज़गार में ठहराव आया है और कुल उत्पादन में सेवा क्षेत्र के औपचारिक और अनौपचारिक दोनों खंडों में वृद्धि हुई है। इसमें कुल रोज़गार में अनौपचारिक सेवा क्षेत्र में वृद्धि दर्ज हुई है। विनिर्माण क्षेत्र में न केवल कुल उत्पादन और कुल रोज़गार की दृष्टि से ठहराव आया है, बल्कि औपचारिक विनिर्माण क्षेत्र का श्रम बहुल खंड समय के साथ सिकुड़ता गया है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि इस आलेख में यह पाया है कि विकासशील देशों में विकास की पिछली सफलता की कहानियों, विशेषकर जिनकी शुरुआत एशिया से हुई, की तुलना में भारत में विकास की पद्धति गैर-मानक रही है, जिसे विपरीत मार्ग कहा जा सकता है, और विकास की ऐसी पद्धति जो ज्ञान आधारित सेवाओं और पूंजी बहुल विनिर्माण क्षेत्र को श्रम बहुल विनिर्माण क्षेत्र की तुलना में अधिक लाभ देती हो, सक्षमता और समानता दोनों ही दृष्टियों से भारत के दीर्धावधि हित में नहीं है, क्योंकि इसका निर्माण भारत की अकुशल श्रमिक बहुल विनिर्माण क्षेत्र संबंधी आंतरिक तुलनात्मक लाभ की स्थिति पर आधारित नहीं है। इससे आर्थिक वृद्धि का गरीबी दूर करने संबंधी प्रभाव भी सीमित हुआ है (सेन 2008)। स्पष्ट है कि, भारत भविष्य में सुदृढ़ आर्थिक विकास बनाए रख सकता है, और साथ ही अधिक समानता पर आधारित विकास नीति अपना सकता है, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि भारत कृषि आधारित अर्थव्यवस्था से विनिर्माण आधारित अर्थव्यवस्था में अपने खोए हुए रूपांतरण को फिर से हासिल करने की कितनी क्षमता रखता है। ❑

(लेखक आईडीपीएम, यूनिवर्सिटी ऑफ मानचेस्टर, ब्रिटेन में विकास अर्थव्यवस्था के प्रोफेसर हैं। ई मेल - kunal.sen@manchester.ac.uk **)**

IAS

सिविल सेवा कोचिंग के क्षेत्र में एक नई क्रांति

PCS

(न्यूनतम शुल्क पर सामान्य अध्ययन के सभी विशेषज्ञ एक ही छत के नीचे)

KUMAR'S IAS

शुल्क

सामान्य अध्ययन

Foundation Batch (Prelims cum Mains)

₹ 12,500 (प्रथम 100 विद्यार्थियों के लिए)

सत्र प्रारंभ

23 अप्रैल

नामांकन प्रारंभ - 10 अप्रैल से

पहले आओ पहले पाओ के आधार पर

विशेष नोट

KUMAR'S IAS सेवार्थ एवं कल्याणकारी भावना से संचालित किया जाने वाला संस्थान है जो **IAS / PCS** की तैयारी न्यूनतम शुल्क पर उच्चतम गुणवत्ता के साथ कराने हेतु प्रतिबद्ध है इसके अतिरिक्त यह संस्थान आम व्यक्ति की समस्याओं के प्रति भी संवेदनशील है।

अतः संस्थान **IAS / PCS** की तैयारी करने वाले सभी अभ्यर्थियों से प्राप्त कुल **Fees** का **2%** गरीबों, विधवा महिलाओं, अनाथ बच्चों तथा वृद्ध व्यक्तियों के कल्याण पर खर्च करने को दृढ़ संकल्पित है साथ ही संस्थान आप सभी सक्षम व्यक्तियों से भी इस दिशा में सहयोग की एक अपील करता है।

धन्यवाद!

KUMAR'S IAS संस्थान में Fees अन्य संस्थानों की तुलना में सबसे कम है क्योंकि.....

KUMAR'S IAS की स्थापना **Kumar Sir** द्वारा **2006** में अपनी **Mother** की प्रेरणा से की गई थी, और उन्हीं की प्रेरणा से **Kumar Sir** ने संस्थान को केवल आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को ध्यान में रखकर संचालित किया लेकिन कुछ समय पूर्व उनकी **Mother** की **Death** हो जाने के कारण आज भी **Kumar Sir** संस्थान को सेवार्थ भावना पर ही संचालित कर रहे है। इसलिए कोई भी अभ्यर्थी **KUMAR'S IAS** में आकर कम **Fees** के बारे में कोई प्रश्न न करें और ना ही अन्य संस्थान **KUMAR'S IAS** की सेवार्थ भावना पर कोई नकारात्मक टिप्पणी करें।

KUMAR'S IAS

DELHI HEAD OFFICE

A-31/34, Basement, Jaina Exten. Comp., Dr. Mukherjee Nagar, Delhi

011-47567779

0-888-222-4455
0-888-222-4466
0-888-222-4477
0-888-222-4488

AGRA BRANCH OFFICE

7, II[nd] Floor, Jawahar Nagar, Bye Pass Road, Khandari, Agra

0562-6888886

0-8393900022
0-8393900033
0-8393900044
0-8393900055

CENTRAL ENQUIRY : 0-8882388888

Email : kumariasacademy@gmail.com
Website : www.kumarsias.com

CENTRAL ENQUIRY : 0-8882388888

YH - 296/2013

समावेशी विकास : जरूरत ठोस पहल की

कमल नयन काबरा

पिछले कुछ दशकों से भूमंडलीकरण का हमारी विकास नीतियों और उनके द्वारा मिले नतीजों पर गहरा असर पड़ रहा है। मसलन, आयात की खुली छूट, आयात शुल्क में कमी तथा विदेशी कंपनियों के भारत में बढ़ते निवेश के कारण भारत के विनिर्माण क्षेत्र में गिरावट आई है। ज्यादा काम अनौपचारिक क्षेत्र में मिल रहा है। खेती में लोगों की रुचि और उससे प्राप्त मुनाफ़ा घट रहे हैं। कृषि में ज़मीन भी घट रही है। यह तो सेवा क्षेत्र और खास तौर पर अनौपचारिक सेवा क्षेत्र का बढ़ता दायरा है जो इस स्थिति को अभी भी विस्फोटक होने से बचा रहा है

भारत की विकास यात्रा की भावी दिशाओं को प्रभावित करने वाले अनेक संकेत आजकल नज़र आने लगे हैं। एक महत्वपूर्ण बात तो यह है कि हर कोई पार्टी और राजनेता, विकास को 2014 के आम चुनावों का खास मुद्दा बना रहे हैं। जाहिर है चुनावों द्वारा हमारे राज्य के चरित्र और विकास नीति संबंधी रुझानों का आनेवाले कुछ सालों के लिये फ़ैसला होगा। किंतु नीतिगत विवादों में हमारे शासन के राजनीतिक चरित्र की विकास के लिये अहमियत झलकती है। राज्य का स्वरूप विकास के स्वरूप पर एक बहुत खास, संभवत: सबसे खास, प्रभाव डालनेवाला तत्व या कारक बना रहेगा। किंतु विकास के स्वरूप और नीतियों के बारे में मतभेदों का कोई स्पष्ट रूप सामने नहीं आ रहा है, शायद घोषणाओं द्वारा स्थिति स्पष्ट हो।

जिस तरह विकास राजनीतिक विवादों का विषय बन रहा है, उनमें कुछ बिन्दु विशेषरूप से उभर कर सामने आ रहे हैं। गरीबी, बेरोज़गारी, महंगाई और ज़मीन, संपत्ति और क़ीमतों को लेकर विभिन्न दलों की बड़ी-बड़ी कंपनियों के राजनीतिक दलों से रिश्ते विकास-विषयक राजनीतिक बहस के केंद्र बिंदु बन रहे हैं। इन मामलों का आम आदमी की ज़िंदगी, जैसे- व्यक्तिगत कल्याण के मसलों से सीधा रिश्ता है, उसी प्रकार इनका व्यापक सामाजिक विकास और समष्टिगत स्थिति से भी है। अत: आनेवाले समय में हमारी विकास यात्रा की दिशा, गति, नतीजों और उसके टिकाऊपन जैसे सवालों पर गंभीर चिंतन, मनन की जरूरत स्पष्ट नज़र आ रही है।

पिछले कुछ दशकों से भूमंडलीकरण का हमारी विकास नीतियों और उनके द्वारा मिले नतीजों पर गहरा असर पड़ रहा है। मसलन आयात की खुली छूट, आयात शुल्क में कमी तथा विदेशी कंपनियों के भारत में बढ़ते निवेश के कारण भारत के विनिर्माण यानी कल-कारखाने वाले क्षेत्र में गिरावट आई है। हजारों छोटी और मझौली फैक्ट्रियां या तो बंद हुई हैं अथवा बंद होने के कगार पर पहुंच गई हैं। उद्योग-धन्धों की वृद्धि दर में कमी आई है। संगठित रोज़गार घटा है। ज्यादा काम अनौपचारिक क्षेत्र में मिल रहा है। संगठित रोज़गार के अवसरों का टोटा बढ़ रहा है। सवा करोड़ के लगभग सालाना बढ़ती श्रम शक्ति उत्पादक रोज़गारों में खपायी नहीं जा रही है। खेती में लोगों की रुचि और उससे प्राप्त मुनाफ़ा घट रहे हैं। कृषि में ज़मीन भी घट रही है। यह तो सेवा क्षेत्र और खास तौर पर अनौपचारिक सेवा क्षेत्र का बढ़ता दायरा है जो इस स्थिति को अभी भी विस्फोटक होने से बचा रहा है, खास कर गांवों से शहरों तथा पिछड़े इलाकों से अपेक्षाकृत बेहतर इलाकों की ओर पलायन के द्वारा आधारभूत सेवाएं और सुविधाएं भी वृद्धिमान तथा अपेक्षाकृत समृद्ध आर्थिक तबकों, प्रदेशों और व्यवसायों की ओर ही सीमित होती जा रही है। आर्थिक और सामाजिक विकास के बीच खाई बढ़ रही है।

इस स्थिति का व्यावहारिक तथा यथार्थपरक जायजा गरीबों की संख्या के आधिकारिक अनुमानों के आधार पर अपूर्ण और भ्रामक रहता है। एक नया विशेषज्ञ समूह इस सवाल की तह तक जाने में लगा हुआ है। वास्तव में, मात्र उपभोग व्यय के आधार पर वंचितों की

पहचान करके उपयुक्त योजनाएं नहीं बनायी जा सकती और न ही सही रूप में लागू हो पाती है। केरल का उदाहरण लें। वहां लोगों के जीवन दृश्य का आकलन नौ बिंदुओं पर किया जाता है। घर के लिये 5 सेंट जमीन, रहने योग्य घर, नियमित आमदनी वाले व्यक्ति की मौजूदगी, पेयजल, पूरी तरह स्त्रियों पर आश्रित परिवार, पिछड़ी जाति, विकलांगों आदि के आधार पर असमावेशन का उपचार करने की मुहिम चलाई जा रही है। बहरहाल, इस सरकारी गरीबी रेखा के बदले भारत आठ मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ लोगों की संख्या का आकलन, एक अंतर्राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान द्वारा लगाया गया है। मैककिन्सी ग्लोबल इंस्टीट्यूट ने प्रचलित और काफी नीचे स्तर पर तय की गई सरकारी गरीबी रेखा के स्थान पर एक सशक्त रेखा

ग्रामीण भारत अ-समावेशन का मुख्य क्षेत्र या केंद्र माना जा सकता है। देश के 70 प्रतिशत नागरिकों का जीवन सीधे-सीधे गांवों से जुड़ा है। किंतु शहरी भारत की जीवन दशाएं और संभावनाएं भी गांवों के हालात से अप्रभावित नहीं रह पाता। गावों की गरीबी और बदहाली नगरों तक पहुंच जाती है। भारतीयों के विकास का मुख्य अर्थ ग्रामीणों का समावेशन है। इससे शहरी लोग भी लाभान्वित होंगे क्योंकि शहरों पर अत्यधिक संसाधन केंद्रित करने से गांवों में बहुत कम सौगातें मिल पाती है।

(जिसमें आठ मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि को शुमार किया है, की पेशकश की है। इसके अनुसार गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने को मज़बूर 27 करोड़ लोगों के मुक़ाबले सशक्तीकरण रेखा से नीचे अटके लोगों की तादाद 2.5 गुना ज्यादा, यानी 68 करोड़ है। हमारे सामने इस तरह तीन तरह की खासमखास चुनौतियां हैं। पहली समावेशी विकास के स्वीकृत नीतिगत लक्ष्य की प्राप्ति का दायरा 68 करोड़ अशक्त और दुष्प्रभाव्यता ग्रसित लोगों को विकास यात्रा का भागीदार तथा लाभान्वित तबका बनाना। दूसरे, इस काम के लिये कार्यक्रमों, नीतियों, कर्ता-धर्ताओं का निर्धारण तथा आधारभूत सेवाओं और सुविधाओं की तजबीज करना और इस हेतु पर्याप्त संसाधनों का जुगाड़। तीसरे, अभी हमारी अर्थव्यवस्था समष्टिगत स्तर पर महंगाई, विदेशी लेनदेन के चालू खाते में चिरस्थाई घाटे की तात्कालिक असहनीय अप्रबंधनीय मात्रा, बड़ी कंपनियों और घरानों के हाथों में बैंकों के कर्ज की विशाल अरबों रुपयों की राशि का डूबत खाते में समावेश, सोने-चांदी, ज़मीन-जायदाद तथा भवनों और विलासिता की अधिकांशत: प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में आयातित सामग्री पर बेहिसाब, मुख्यत: बेहिसाबी काली आय और धन का बेजा इस्तेमाल तथा प्राकृतिक साधनों के आवंटन से लेकर आवश्यक सामाजिक सेवाओं के निष्पादन का आकंठ भ्रष्टाचार में डूबा चरित्र, हमारे आर्थिक-सामाजिक प्रबंधन को कई तरीकों से विकास मार्ग से पथच्युत कर रहे हैं।

अत: चुनावों के बाद हमारे नये नीति निर्माताओं और शासकों को इन त्रिमुंही चुनौतियों से दो-दो हाथ होना पड़ेगा। स्पष्ट है ये चुनौतियां काफी विकट हैं। समाधान मुश्किल और कष्टसाध्य है। कितना मतैक्य इन सवालों पर है या हो पाता है यह तो आने वाला वक्त ही बता पाएगा। किंतु यह स्पष्ट है कि ये चुनौतियां गंभीर और विकराल हैं। इनसे मुंह चुराना संभव नहीं रह गया है। हो सकता है आनेवाले शासकों को कुछ बड़े बदलाव करने पड़े। कुछ अरसे में राजनीतिक खाका स्पष्ट हो जाने की उम्मीद है। शासकीय निर्णयों की महत्ता को देखते हुए क्या होने वाला है कहना मानसिक दुस्साहस होगा। किंतु हम उम्मीद करते हैं जनादेश जन-चुनौतियों से जूझने में सक्षम समाधान सामने लाएगा।

इस परिकल्पना और प्रत्याशा के आधार पर हम इन कुछ मुद्दों का सामना करने में सक्षम नीतियों और कार्यक्रमों पर अपने सुझावों का एक छोटा-सा खाका प्रस्तुत कर रहे हैं।

आर्थिक वृद्धि और समावेशी विकास का एक साथ एक सम्मिलित अभियान हमारे आम आदमी और मुख्य रूप से गरीब लोगों की भागीदारी के साथ प्रधानत: उनके हितार्थ चलाया जा सकता है। हम उसके कुछ प्रमुख तत्वों का यहां उल्लेख करना चाहेंगें। यहां यह साफ़-साफ़ बताना ज़रूरी है कि ये सुझाव पूरी तरह हमारी राष्ट्रीय प्राथमिकताओं, नीतियों, कार्यक्रमों और सामान्य रूप से स्वीकृत प्रतिबद्धताओं के अनुकूल या उनसे संगत है तथा उन पर बार-बार जनादेश प्राप्त होता रहा है। अत: इन सुझावों को समावेशी विकास कार्यक्रम के प्रमुख तत्वों के रूप में जाना जा सकता है।

ग्रामीण भारत असमावेशन का मुख्य क्षेत्र या केंद्र माना जा सकता है। देश के 70 प्रतिशत नागरिकों का जीवन सीधे-सीधे गांवों से जुड़ा है। किंतु शहरी भारत की जीवन दशाएं और संभावनाएं भी गांवों के हालात से अप्रभावित नहीं रह पाता। गावों की गरीबी और बदहाली नगरों तक पहुंच जाती है। भारतीयों के विकास का मुख्य अर्थ ग्रामीणों का समावेशन है। इससे शहरी लोग भी लाभान्वित होंगे क्योंकि शहरों पर अत्यधिक संसाधन केंद्रित करने से लाभ गांवों में बहुत कम सौगातें मिल पाती है। आज़ादी के सात दशक पूरे होने वाले हैं। अत: 2017 तक पूरे ग्रामीण भारतीयों के

हमारे सभी गांवों का यह कायाकल्प आज़ादी के सात दशक पूरा होने पर आज़ादी के प्रकटीकरण एवं प्रत्यक्षीकरण की नायाब उपलब्धि होगी। स्पष्ट है इस विचार का विस्तृत-बृहद निर्धारण, विभिन्न इलाक़ों के हालात को ध्यान में रखकर करना होगा। हमारा मत है कि ऐसा कार्यक्रम आज के भारत की अनेक कठिन समस्याओं से निजात का रास्ता खोलेगा।

समावेशन के बिना हमारा राष्ट्रीय विकास तथा स्वराज्य अपनी वैद्यता और सार्थकता स्थापित नहीं कर पाएगा। ऐसे समावेशन का जिम्मा बाज़ार के मुनाफ़ाकारी कर्ता-धर्ता नहीं उठा सकते हैं। बाज़ार प्रक्रियाओं में भागीदारी की शर्तें, निश्चित नियमित क्रय-शक्ति, जमीन, उत्पादक उपकरण, बैंक कर्ज, न्यूनतम शिक्षा तथा तंदुरुस्ती बनाये रखने की सुविधाएं, ऊर्जा के बिजली जैसे साधन, सामाजिक

सुरक्षा (जिनका हम केरल के उदाहरण तथा सशक्तीकरण रेखा के अंगों के रूप में जिक्र कर चुके हैं) राज्य की निर्णय प्रक्रियाओं तक अपनी आवाज़ पहुंचाने और बुलंद करने की संगठित क्षमता, आदि एक दुष्चक्र में फंसी रहती हैं। जो लोग ये शर्तें पूरी करते हैं। बाज़ार उन्हें पुरस्कृत करता रहता है। जो ऐसा नहीं कर पाते हैं, उन्हें न केवल बाज़ार बल्कि राज्य भी हाशिये पर डाले रहता है। इस कुचक्र से मुक्ति की एक बड़ी और प्रभावी पहल का सुझाव हम पेश कर रहे हैं।

हमारे करीब छह लाख गांवों की गलियां कच्ची हैं, मिट्टी, धूल, घास-फूस, कीचड़, कंकर-पत्थर और अनेक तरह की गंदगी से अटी रहती हैं। सामान्य जीवन तथा उत्पादन, आय अर्जन, स्वस्थ जीवन आदि में यह स्थिति रोड़ा बनी हुई है। कुल मिलाकर इन गलियों, पगडंडियों आदि की लंबाई करीब 24 लाख किलोमीटर तो है ही। इसमें बाहरी जगत से जोड़ने वाली दूसरी को भी शामिल करना होगा। अगले तीन सालों में आजादी के सात दशक पूरा होने तक, सभी गांवों की सभी गलियों-कूचों में ईंटों आदि की पक्की सड़कें जिनके दोनों ओर पानी की निकास की पक्की नालियों का निर्माण सार्वजनिक निवेश का सर्वोतम पात्र है। इस पंचायत द्वारा सीधे-सीधे ग्रामीण सहभागिता से चले कार्यक्रम द्वारा प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रोज़गार, आमदनी का अभूतपूर्व विस्तार संभव है। साथ में, देश की राष्ट्रीय आय में उल्लेखनीय इज़ाफ़ा भी। इस कार्यक्रम के त्वरित तथा दूरगामी आर्थिक वित्तीय, सामाजिक, शासन व्यवस्था, सुधार तथा कुशलता वृद्धि आदि वांछनीय प्रभाव अभूतपूर्व होंगे।

हां, इसके साथ दो-तीन सहायक कार्यक्रमों की भी जरूरत है। गांवों में स्त्रियों और पुरुषों के लिये पक्के शौचालयों, पंचायत घरों, स्कूलों पेय जल के स्रोत, स्वास्थ्य केंद्र, तथा कृषि उत्पादन व्यवस्था के लिए अति आवश्यक हर पंचायत के तहत, पंचायत के आधिपत्यवाले पक्के गोदामों द्वारा भंडारण व्यवस्था, आदि शामिल करना होगा। इन कार्यक्रमों से बेहतर तृणमूल स्तरीय, जनोन्मुख, सहभागितामय समावेशी विकास कार्यक्रम शायद ही कोई नज़र आए। इनके समाष्टिगत स्तरीय प्रभाव तथा भावी विकास की मज़बूत आधारशिला बनने की क्षमता का अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है। हमारे सभी गांवों का यह कायाकल्प आज़ादी के सात दशक पूरा होने पर आज़ादी के प्रकटीकरण एवं प्रत्यक्षीकरण की नायाब उपलब्धि होगी। स्पष्ट है इस विचार का विस्तृत-बृहद निर्धारण, विभिन्न इलाक़ों के हालात को ध्यान में रखकर करना होगा। हमारा मत है कि ऐसा कार्यक्रम आज के भारत की अनेक कठिन समस्याओं से निजात का रास्ता खोलेगा। ❑

(लेखक वरिष्ठ अर्थशास्त्री और इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नयी दिल्ली में माल्कम आदि शेषैय्या चेयर प्रोफेसर हैं। ई मेलः kamalnkabra@yahoo.co.in**)**

CS GS
COMPREHENSIVE SCHOOL OF GENERAL STUDIES
IAS
अभिनव टीम प्रयास..... सिविल सेवा को समर्पित हिन्दी माध्यम का संस्थान
The Companion IAS
Vijaypal Singh Parihar
Rajdeep Maths Academy
Rajdeep Sir
मंथन IAS
Dr. Shekhar Jha
Ojaank IAS
Ojaank Sir
Vidyalayam IAS
R. P. Singh
CSAT
New Batch
15th April
सामान्य अध्ययन
Foundation Batch
15th April
PT Special Batch
15th April
Test Series
Online/Offline 30th March
नामांकन जारी...............
B-18, IInd Floor, Opposite Aggarwal Sweets, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-9
www.csgsias.com | www.facebook.com/csgsias
9818041656, 9311602617
YH - 290/2013

मैक्ग्रॉ–हिल एजुकेशन

McGraw Hill Education WE Series

सिविल सेवा प्रारंभिक परीक्षा 2014

अन्य उपयोगी पुस्तकें

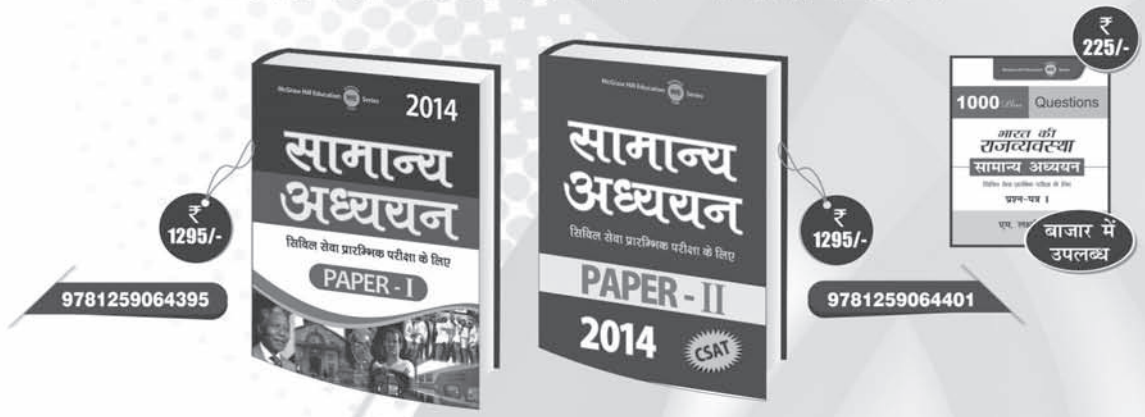

McGraw Hill Education मैक्ग्रॉ-हिल एजुकेशन (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड

बी-4, सैक्टर-63, गौतम बुद्ध नगर, नोएड़ा, उत्तर प्रदेश-201 301
फोन: 91-120-4383502/4383503, फैक्स: +91-120-4383401, वैबसाइट: *www.mheducation.co.in*

- उत्तर भारत: दिल्ली/हरियाणा/पंजाब/चंडीगढ़/जम्मू-कश्मीर/हिमाचल प्रदेश/राजस्थान/ मध्य प्रदेश: आशीष पराशर *(09717005237)*; दिल्ली/राजस्थान: दिलीप चौरसिया *(09560072125)*; *दिल्ली/एन-सी-आर: प्रकाशचन्द्र (09560055245)*; हरियाणा/पंजाब/चंडीगढ़/जम्मू-कश्मीर/हिमाचल प्रदेश: सागर भटट् *(09815089556)*; मध्य प्रदेश: रोहित शैल *(08871016668)* उत्तरप्रदेश/उतराखंड: जगदीश ध्यानी *(09670878655)*
- पूर्वी भारत: झारखंड/उड़ीसा: सतीश कुमार सिंह *(09973944225)*; बिहार: रणविजय कुमार *(08809561425)*
- पश्चिम भारत: महाराष्ट्र/गोवा/गुजरात/छत्तीसगढ़: जूनियस रॉडिक्स *(09833054319)*; छत्तीसगढ़: सोरभ कानुगोई *(08378991475)* विक्रय एवं प्रकाशन हेतु जानकारी हेतु लिखें *test.prep@mheducation.com*

Prices are subject to change without prior notice.

For online purchase of MHE products please log on to www.tmhshop.com

YH - 298/2013

उत्पादक रोज़गार और शिक्षा का सशक्तीकरण
भारतीय युवाओं के लिए एक कार्यसूची

राघबेन्द्र झा

अब समय आ गया है कि भारतीय योजनाकारों को शिक्षा व्यय को इस रूप में समझना चाहिए कि यह तीव्र आर्थिक विकास के लिए एक अनिवार्य निवेश है। इतना ही नहीं, आर्थिक विकास को सुदृढ़ करने के अलावा एक असरदार शैक्षिक कार्यक्रम, जिसमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी की शिक्षा पर बल दिया गया हो, भारत की विशाल युवा आबादी के सशक्तीकरण में सहायक होगा और उससे मध्यम से दीर्घावधि के लिए स्थाई उच्च आर्थिक विकास की ठोस नींव रखी जा सकेगी

''किसी व्यक्ति को शिक्षित बनाने में ख़र्च किए गए अधिक श्रम और समय की तुलना एक महंगी मशीन के साथ की जा सकती है। ऐसा व्यक्ति जो कुछ सीखता है, उसकी शिक्षा के व्यय की भरपाई सामान्य श्रमिक के पारिश्रमिक पर किए जाने वाले खर्च से हो जाती है।'' (एडम स्मिथ, 1904, (1776), पृष्ठ 101.)

''सबसे मूल्यवान पूंजी मानव मात्र में निवेश किया जाने वाला धन है।'' (अल्फ्रेड मार्शल, 1961, 1890 संस्करण, पृष्ठ 564)।

कम से कम 1776 से अर्थव्यवस्थाओं में शिक्षा को प्रमुखता दी जाने लगी। एडम स्मिथ ने शिक्षा को अपने समूचे कार्यक्षेत्र के केंद्रीय स्तंभों में से एक समझा। 19वीं सदी के जाने-माने अर्थशास्त्री अल्फ्रेड मार्शल ने इसे बेहतर ढंग से रेखांकित किया। आधुनिक आर्थिक इतिहास की सबसे तीखी विडंबनाओं में से एक यह रही कि 20वीं सदी के प्रमुख विकास मॉडलों, जिनमें हारोड-डोमर और नव-शास्त्रीय (निओ क्लैसिकल) परंपराएं भी शामिल हैं, ने मानव पूंजी पर बल को यदि समाप्त नहीं किया तो उसे कम जरूर किया। 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध और 1990 के दशक के प्रारंभ में ही यह संभव हो पाया कि जब अर्थशास्त्रियों ने तत्कालीन प्रचलित विकास मॉडलों की अपर्याप्तता महसूस करना शुरू किया, जिनमें अंतर्राष्ट्रीय विकास दरों और प्रतिव्यक्ति आय में अंतर स्पष्ट करने के लिए श्रम, पूंजी और प्रौद्योगिकी पर बल दिया जाता था, जिनके स्थान पर आर्थिक विकास में मानव पूंजी के मॉडल लोकप्रिय हुए। जैसा कि नोबेल पुरस्कार विजेता रॉबर्ट लुकास (1988) ने कहा था कि ''जब आप आर्थिक विकास के बारे में सोचना शुरू करते हैं, तो किसी अन्य विषय के बारे में सोचना कठिन होता है।'' इस सैद्धांतिक अनुस्थापन के साथ आनुभविक अनुसंधान को भी महत्व दिया गया। 1965 से 1995 की अवधि में बैरो (2001) ने लगभग सबसे पहले करीब 100 देशों के नमूने प्रदर्शित करते हुए यह सिद्ध किया कि शैक्षिक उपलब्धि का प्रतिव्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। विशेषकर, इस मानव पूंजी परिवर्ती घटक का प्रभाव परंपरागत निवेश की तुलना में अधिक था, जिसमें पूंजी के निवल संग्रहण पर विचार किया जाता था। प्रतिव्यक्ति जीडीपी की वृद्धि दर में एक वर्ष की अतिरिक्त स्कूली शिक्षा के फलस्वरूप 0.44 प्रतिशत की बढ़ोतरी मापी गई। और शिक्षा में निवेश के सामाजिक लाभ की दर 7 प्रतिशत आंकी गई। इसके अतिरिक्त विज्ञान और गणित शिक्षा का विशेष रूप से सुदृढ़ प्रभाव पड़ा और यह महसूस किया गया कि मानव पूंजी के रूप में महिलाओं को पर्याप्त सक्षम बनाने के लिए बहुत कुछ करने की आवश्यकता है। आर्थिक विकास के अनुभव तेजी से अनुसंधान का महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गए और आर्थिक विकास में तेजी लाने के लिए शिक्षा के महत्व के पक्ष में आम सहमति एक प्रमुख विषय बन गया। इससे यह बुनियादी संदेश स्पष्ट हो गया कि एडम स्मिथ और अल्फ्रेड मार्शल इस दृष्टि से सही थे कि शिक्षा के जरिये दीर्घावधि

इस तथ्य को देखते हुए कि 1951-52 से 2012-13 की अवधि में भारत में प्रतिव्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद की औसत वृद्धि 5 प्रतिशत (भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा परिकलित आंकड़ों के अनुसार) रही है, प्रतिव्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद में मानव पूंजी का अनुमानित योगदान अत्यंत व्यापक रहा है।

तक आर्थिक निवेश कम से कम उतना ही महत्वपूर्ण है जितना पूंजी निवेश होता है।

भारत की स्वतंत्रता के बाद आर्थिक विकास के लिए आयोजना की प्रक्रिया में मानव पूंजी संचय के लिए ऊपर वर्णित अवहेलना व्यापक रूप में दिखाई दी और उसमें पूंजी, श्रम एवं कुछ हद तक प्रौद्योगिकी के मुद्दे संकेंद्रित रहे।

अब समय आ गया है कि भारतीय योजनाकारों को शिक्षा व्यय को इस रूप में समझना चाहिए कि यह तीव्र आर्थिक विकास के लिए एक अनिवार्य निवेश है। इतना ही नहीं, आर्थिक विकास को सुदृढ़ करने के अलावा एक असरदार शैक्षिक कार्यक्रम, जिसमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी की शिक्षा पर बल दिया गया हो, भारत की विशाल युवा आबादी के सशक्तीकरण में सहायक होगा और उससे मध्यम से दीर्घावधि के लिए स्थाई उच्च आर्थिक विकास की ठोस नींव रखी जा सकेगी।

भारत के जनसांख्यकीय लाभ

शिक्षा में निवेश के मात्रात्मक अनुमान उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन भारत की विशाल युवा आबादी को देखते हुए बैरो (2001) के अनुसार सामाजिक लाभ की दर 7 प्रतिशत से अधिक रहने की संभावना है।

तालिका-1 में भारत के मौजूदा जनसांख्यकीय लाभ दर्शाए गए हैं जिन पर काफी चर्चा होती रही है। इसमें भारत की वर्तमान स्थिति और चीन, कुछ अन्य देश जिनका प्रतिव्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद 2009 में डॉलरों में क्रय शक्ति समानता की दृष्टि से भारत के समान था, विश्व और कुछ प्रमुख राष्ट्र समूहों के संदर्भ में संभावनाओं की तुलना की गई है।

2012 में भारत की 65 प्रतिशत आबादी कामकाजी समूह यानी 15 से 64 वर्ष की आयु वाले लोगों से संबद्ध थी। मौजूदा जनसंख्या प्रवृत्तियों को देखते हुए इस अनुपात को चीन के पार कर जाने की संभावना है। भारत में आश्रितता का अनुपात (कामकाजी आबादी के प्रतिशत के रूप में वृद्ध) पहले ही सबसे कम है, जिसका अर्थ है कि समय के साथ-साथ यदि युवा उत्पादक गतिविधियों में संलग्न होंगे तो भारत की निजी वित्तीय बचत और भौतिक पूंजी निवेश में तेज़ी आने का अनुमान है। चीन के विपरीत भारत की आबादी 2025 के बाद भी बढ़ती रहेगी, अत: इन प्रवृत्तियों के भविष्य में उस समय तक जारी रहने की संभावना है जब तक भारत उच्च आय या उच्च मध्य आय समूह का राष्ट्र नहीं बन जाता।[1]

विचारणीय है कि वर्तमान में किसी अन्य देश के समक्ष ऐसी भाग्यशाली स्थितियां नहीं हैं; वास्तव में गिने-चुने देशों के समक्ष ऐसे अवसर हैं। अब यह भारतीयों पर निर्भर है कि वे इस स्थिति का लाभ उठाएं।

क्षमता और उपलब्धि - शिक्षा

भारत के जनसांख्यिकीय लाभों के दोहन का केंद्र बिंदु युवाओं की व्यापक शिक्षा, विशेषकर विज्ञान और गणित की शिक्षा तथा उन्हें उत्पादक कार्यों में लाभकारी रोज़गार प्रदान करना है। तालिका-2 में तुलनात्मक संदर्भ में भारत संबंधी महत्वपूर्ण शैक्षिक आंकड़े दर्शाए गए हैं।

वयस्कों की स्कूली शिक्षा के औसत वर्षों के संदर्भ में भारत का 100 देशों में 65वां स्थान है। वास्तव में 9 वर्ष तक की आयु के विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य शिक्षा की अवधि और शिक्षण घंटों को छोड़ कर भारत का निष्पादन फीका है। यह तथ्य विशेष रूप से चिंताजनक है कि विशाल युवा आबादी के बावजूद भारत में गिने-चुने विश्वविद्यालय हैं जो 22 देशों के शीर्ष 100 विश्वविद्यालयों में शामिल हैं। हालांकि आज़ादी के तत्काल बाद सकल घरेलू उत्पाद का कम से कम 6 प्रतिशत शिक्षा पर ख़र्च करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था लेकिन 2002 तक केवल 4.1 प्रतिशत ख़र्च ही शिक्षा पर किया जा सका। कुछ लेखक 1980 और 1990 के दशकों को भारतीय उच्चतर शिक्षा के लिए निराशाजनक मानते हैं (पुष्कर, 2013)।

वास्तव में तालिका - 2 में इस बात को स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है कि भारत में वर्षों से उच्चतर शिक्षा क्षेत्र की उपेक्षा की जाती रही है। 11वीं पंचवर्षीय योजना (2007-2012) और 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012-2017) के दौरान उच्चतर शिक्षा पर व्यय में भारी बढ़ोतरी की गई। किंतु, इस अधिक खर्च का पूरा लाभ प्राप्त करने के मार्ग में अनेक बाधाएं हैं। उदाहरण के लिए केंद्र और राज्य दोनों ही सरकारों की उच्चतर शिक्षा प्रबंधन में बहुत बड़ी भूमिका है। कभी-कभी इस क्षेत्र में उनके संबंध सहयोगात्मक नहीं होते और नतीजतन अधिकार क्षेत्र को लेकर विवाद की स्थिति पैदा हो जाती है।

तालिका - 3 में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के बारे में कुछ और साक्ष्य प्रदान किए गए हैं। 1999 में कक्षा 1 से प्रारंभ करके कक्षा 5 तक पहुंचने वाले विद्यार्थियों में लड़कों की हिस्सेदारी केवल 63 प्रतिशत और लड़कियों की हिस्सेदारी 60 प्रतिशत थी। यह अनुपात निम्नतर मध्यम आय वाले देशों की तुलना में बहुत कम है। यदि हम ऐसी शिक्षा की गुणवत्ता का आकलन न भी करें और विभिन्न आय समूहों[2] के बीच पहुंच को लेकर समानता पर ध्यान न दें फिर भी ये आंकड़े हमें चेतावनी देने वाले हैं।

क्षमता और निष्पादन - रोज़गार

बेरोज़गारी के बारे में भारत और कई अन्य देशों से संबंधित आंकड़े पूरी तरह उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी, विश्व बैंक संकेतकों के अनुसार 2008-11 की अवधि में भारत में युवा बेरोज़गारी पुरुषों में 10 प्रतिशत और महिलाओं में 12 प्रतिशत थी। इसी अवधि के दौरान प्राथमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों में बेरोज़गारी 12 प्रतिशत देखी गई।

माध्यमिक और तृतीयक शैक्षिक स्तर से संबंधित बेरोज़गारी क्रमश: 42 और 23 प्रतिशत देखी गई है।

---

1. यहां एक चेतावनी शामिल करने की आवश्यकता है। भारत की जनसांख्यिकीय लाभ की स्थिति का संबंध बिगड़ते लिंग संतुलन के साथ भी है। यह एक ऐसी समस्या है जो उच्चतर शिक्षा और आय के साथ और बिगड़ रही है (चौधरी और झा, 2013)।

2. सरकारी एजेंसियां अक्सर बच्चों की निर्धनता का आकलन बच्चों की शिक्षा के साथ नहीं करती हैं। तथ्य यह है कि निर्धन बच्चों का अनुपात निर्धन वयस्कों की तुलना में अधिक है। इन दोनों मुद्दों के प्रति एक समन्वित दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए जैसा कि चौधरी और झा (2013) ने सुझाव दिया है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम को भी अक्सर शिक्षा की गुणवत्ता के अभाव, खराब वितरण और अपूर्ण आमेलन के अधिकार के रूप में समझा गया है। झा (2014) ने दर्शाया है कि अपर्याप्त लक्षित सब्सिडी की समस्या कल्याण कार्यक्रमों में आमतौर पर व्याप्त है।

तालिका : 1

जनसंख्या गतिकी : भारत और चुने हुए अन्य देश/समूह

देश/ समूह	जनसंख्या मिलियन में			औसत वार्षिक जनसंख्या वृद्धि		आबादी आयु संघटन 2012			आश्रितता अनुपात 2012		अशोधित मृत्युदर 2011	अशोधित जन्मदर 2012
	2000	2012	2025	2000 – 2012	2012 – 2025	0– 14	15 – 64	65 +	कार्यशील आबादी में युवा प्रतिशत	कार्यशील आबादी में	प्रति 1,000 व्यक्ति वृद्ध	प्रति 1,000 व्यक्ति
भारत	1,042.30	1,236.70	1,418.70	1	1	29	65	5	45	8	8	21
चीन	1,262.60	1,350.70	1,415.90	1	0	18	73	9	25	12	7	12
मंगोलिया	2.4	2.8	3.3	1	1	27	69	4	39	5	7	23
वियतनाम	77.6	88.8	95.8	1	1	23	71	7	32	9	6	16
फिलीपीन्स	77.7	96.7	119.2	2	2	35	62	4	56	6	6	25
इंडोनेशिया	208.9	246.9	282	1	1	29	66	5	45	8	6	20
विश्व	6,102.10	7,046.40	8,003.80	1	1	26	66	8	40	12	8	19
निम्न आय	648.2	846.5	1,113.20	2	2	39	57	4	69	7	9	33
मध्य आय	4,243.30	4,897.80	5,555.00	1	1	27	67	6	40	10	8	19
निम्न मध्य आय	2,077.90	2,507.00	2,965.90	2	1	31	63	5	50	8	8	24
उच्चतर मध्य आय	2,165.40	2,390.80	2,589.10	1	1	22	70	8	31	11	7	15
निम्न एवं मध्य आय	4,891.50	5,744.30	6,668.20	1	1	29	65	6	44	9	8	21
पूर्वी एशिया और प्रशांत	1,812.20	1,991.60	2,142.80	1	1	21	71	8	30	11	7	14
यूरोप और मध्य एशिया	256.5	272.1	281.3	0	0	22	68	10	32	15	9	16
लैटिन अमरीका और कैरीबियन	500.3	581.4	660.2	1	1	28	66	7	42	11	6	19
मध्य पूर्वी और उत्तरी अफ्रीका	276.6	339.6	413.3	2	2	30	65	5	47	7	6	24
दक्षिण एशिया	1,382.20	1,649.20	1,909.70	1	1	30	65	5	47	8	8	22
सब-सहारा अफ्रीका	663.7	910.4	1,261.00	3	3	43	54	3	80	6	12	38
उच्च आय	1,210.60	1,302.10	1,335.60	1	0	17	67	16	25	23	9	12
यूरो क्षेत्र	315.1	333.8	331.4	0	0	15	66	19	23	29	9	10

स्रोत : विश्व विकास संकेतक 2013(विश्व बैंक)

तालिका : 2

शैक्षिक आंकड़ों के संदर्भ में भारत की वैश्विक स्थिति

श्रेणी	आंकड़े	आंकड़े रिपोर्ट किए जाने का वर्ष	विश्व में स्थान
वयस्कों की स्कूली शिक्षा के औसत वर्ष	5.1 वर्ष	2000	100 में 65वां
अनिवार्य शिक्षा की अवधि		8 वर्ष	1997 12 में 8वां
शिक्षा की अवधि (प्राथमिक स्तर)	6 वर्ष	2002	177 में 62वां
शिक्षा की अवधि (माध्यममिक स्तर)	5 वर्ष	2002	176 में 155वां
प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने की दर	90 प्रतिशत	2005	124 में 71वां
शिक्षा खर्च (जीडीपी का प्रतिशत)	4.1	2002	131 का 82वां
9 वर्ष की आयु के विद्यार्थियों के लिए शिक्षा के घंटे	1051 घंटे	2000	38 में 5वां
प्राथमिक शिक्षा शिक्षक	44	2003	135 में 112वां
प्रति 1000 प्राथमिक शिक्षा शिक्षक[क]		3.21	2011 134 वें 104वां
प्राथमिक स्तर पर प्रति विद्यार्थी सरकारी खर्च[ख]	7.2	2002	70 में 61वां
प्रति 10 लाख 100 शीर्ष विश्वविद्यालय[ग]	0.00177	2005	22 में 22वां

क प्राथमिक स्तर पर शिक्षण स्टाफ। सार्वजनिक और निजी। पूर्ण और अंशकालिक। सभी पाठ्यक्रम। कुल में सरकारी और निजी प्राथमिक शिक्षा संस्थानों में शिक्षकों की कुल संख्या शामिल है। शिक्षकों में पूर्णकालिक या अंशकालिक व्यक्ति शामिल हैं भले ही उनकी योग्यता या वितरण व्यवस्था कुछ भी हो, अर्थात् आमने सामने शिक्षा देना और/या दूरस्थ शिक्षा। इसके अंतर्गत इसमें वे शैक्षिक कार्मिक शामिल नहीं हैं जो शिक्षण संबंधी सक्रिय ड्यूटी नहीं करते हैं (उदाहरण के लिए मुख्य अध्यापक, मुख्याध्यापिका या प्रधानाचार्य, जो पढ़ाते नहीं हैं) और ऐसे व्यक्ति जो शिक्षा संस्थानों में कभी कभार या स्वयंसेवी क्षमता से कार्य करते हैं। संख्याएं समान वर्ष के लिए प्रति एक हजार आबादी से संबंधित हैं।

ख प्राथमिक स्तर पर प्रतिव्यक्ति सरकारी खर्च का अर्थ है सरकार द्वारा प्राथमिक शिक्षा पर कुल रिपोर्टिड वर्तमान खर्च को प्राथमिक शिक्षा में कुल विद्यार्थियों की संख्या से विभाजित किया गया और प्रति व्यक्ति जीडीपी के प्रतिशत के रूप में दर्शाया गया खर्च।

ग शीर्ष 100 में शामिल विश्वविद्यालयों की संख्या। आंकड़े समान वर्ष के लिए प्रति 10 लाख आबादी को दर्शाते हैं।

स्रोत : ''इंडिया एजुकेशन : स्टेटिस्टीकल प्रोफाइल'', नेशन मास्टर, 28 फरवरी, 2014 को http://www.nationmaster.com/country-info/profiles/India/Education, से एक्सेस किए गए।

तालिका : 3

शैक्षिक उपलब्धि : भारत और चुने हुए अन्य देश/समूह

	प्राथमिक शिक्षा के प्रथम दर्जे में सकल दाखिला अनुपात		दर्जा 1 से दर्जा 5 में पहुंचने वाले पुरुष विद्यार्थियों का प्रतिशत		दर्जा 1 से दर्जा 5 में पहुंचने वाले महिला विद्यार्थियों का प्रतिशत		जनसंख्या वर्ग की उत्तरजीविता		प्राथमिक शिक्षा में पुनरावृत्ति करने वाले		माध्यमिक शिक्षा में पहुंचने की दर	
	संबद्ध आयु समूह पुरुष प्रतिशत	संबद्ध आयु समूह महिला प्रतिशत					दर्जा 1 से प्राथमिक शिक्षा के अतिम दर्जे में पहुंचने वाले पुरुष विद्यार्थियों का प्रतिशत	दर्जा 1 से प्राथमिक शिक्षा के अंतिम दर्जे में पहुंचने वाली महिला विद्यार्थियों का प्रतिशत	दाखिले में पुरुष	दाखिले में महिला	पुरुष प्रतिशत	महिला प्रतिशत
	2011	2011	1999	2010	1999	2010	2010	2010	2011	2011	2010	2010
भारत	112	114	63	..	60	..	..	..	5	5	88	89
चीन	109	110	82	..	80	..	..	..	0	0	..	..
मंगोलिया	106	104	..	92	..	94	92	94	0	0	98	99
वियतनाम	..	..	80	..	86	..	..	..	..	..	..	..
फिलीपीन्स	130	120	69	75	79	82	72	80	3	2	99	97
इंडोनेशिया	110	115	87	..	92	..	..	..	3	3	84	96
विश्व	114	111	..	..	..	..	74	76	5	5	..	..
कम आय	134	126	..	60	..	62	58	59	10	10	..	..
मध्यम आय	111	109	..	..	..	..	76	78	4	4	..	..
निम्न मध्यम आय	115	111	69	..	72	..	68	71	4	4	86	88
उच्चतर मध्यम आय	104	106	83	..	81	..	88	88	4	4	..	..
निम्न और मध्यम आय	115	112	..	..	..	..	72	74	5	5	..	..
पूर्वी एशिया और प्रशांत	106	109	83	..	80	..	88	89	2	1	..	..
यूरोप और मध्य एशिया	102	101	..	..	..	..	98	99	1	1	99	98
लैटिन अमरीका और कैरीबियन	115	112	..	..	..	..	81	86	9	8	..	..
मध्य पूर्व और उत्तर अफ्रीका	107	105	89	97	90	97	88	86	8	6	..	..
दक्षिण एशिया	122	119	63	..	60	..	61	65	5	5	86	88
सब-सहारा अफ्रीका	120	111	..	66	..	67	58	57	8	9	..	..
उच्च आय	101	100	..	..	..	..	96	93	1	1	..	..
यूरो क्षेत्र	100	99	..	..	..	..	96	97	1	4	..	..

स्रोत : विश्व विकास संकेतक, 2013, विश्व बैंक

तालिका-4 शिक्षा के ढांचे विशेषकर एक दशक की अवधि में युवा बेरोज़गारी पर प्रकाश डालती है। 1991 में 15 वर्ष से अधिक आयु के युवाओं में आबादी के अनुपात में रोज़गार केवल 58 प्रतिशत था जो 2011 में वास्तव में गिर कर 54 प्रतिशत रह गया। श्रम शक्ति में युवाओं की भागीदारी कम थी, जो वास्तव में, कम आय और कम एवं मध्यम आय वाले देशों से भी कमतर दर्ज़ हुई। कुल रोज़गार में अप्रदत्त पारिवारिक कार्य का बड़ा हिस्सा था, जिसमें महिलाओं की विशेष भागीदारी थी। सकल घरेलू उत्पाद में 2009-11 की अवधि में 1990-92 की अवधि की तुलना में हालांकि बढ़ोतरी दर्ज हुई लेकिन यह फिर भी चीन और कम एवं मध्यम आय वाले देशों से कम थी।

निष्कर्ष

इस आलेख में यदि और कुछ नहीं तो भारतीय युवाओं के लिए शिक्षा और रोज़गार के बढ़ते अवसरों का महत्व अवश्य रेखांकित किया गया है। इन अवसरों का लाभ कैसे उठाया जा सकता है, यह इस आलेख के क्षेत्र से बाहर है। फिर भी, कुछ बुनियादी सुझाव दिए जा सकते हैं। पहला यह कि शिक्षा में सभी स्तरों पर, यानी प्राथमिक, माध्यमिक, तृतीयक और व्यावसायिक शिक्षा के लिए सरकारी एवं निजी निवेश (मानव (शिक्षक) और पूंजी दोनों) अवश्य बढ़ाया जाना चाहिए। यह निवेश घरेलू स्रोतों और एफडीआई दोनों स्रोतों से बढ़ाने की आवश्यकता है। विज्ञान, इंजीनियरी और गणित शिक्षा पर विशेष जोर दिया जाना चाहिए। शिक्षा का ढांचा

तालिका : 4

बेरोज़गारी की स्थिति : भारत की तुलनात्मक स्थिति

	आबादी के अनुपात में रोज़गार				कमजोर रोज़गार				श्रमिक उत्पादकता	
	कुल (15 और उससे अधिक आयु वालों का प्रतिशत		युवा (15-24 वर्ष आयु समूह का का प्रतिशत		अप्रदत्त परिवार श्रमिक और प्रदत्त श्रमिक पुरुष (पुरुष कर्मचारियों का प्रतिशत		अप्रदत्त परिवार श्रमिक और प्रदत्त श्रमिक महिला (महिला कर्मचारियों का प्रतिशत		प्रतिनियोजित व्यक्ति जीडीपी प्रतिशत वृद्धि	
	1991	2011	1991	2011	1990.1992	2008.11	1990.1992	2008.11	1990.92	2009.11
भारत	58	54	46	34	..	79	..	85	1	5ण्2
चीन	75	68	71	51	..	..	..	..	6.8	9.4
मंगोलिया	55	59	38	32	..	57	..	52	..	..
वियतनाम	77	75	73	59	..	..	..	..	4.6	3.5
फिलीपीन्स	60	61	42	41	..	42	..	46	.3.3	2.7
इंडोनेशिया	61	63	42	40	..	62	..	67	6.2	3.9
विश्व	62	60	52	42	..	..	..	..	0.6	3.4
कम आय	72	72	59	56	..	..	..	..	.3.5	4.3
मध्यम आय	63	59	52	40	..	..	..	..	2.7	5.7
निम्न मध्यम आय	58	55	43	36	..	..	..	..	0.4	3.9
उच्चतर मध्यम आय	67	63	60	45	..	..	..	..	4.1	6.6
निम्न और मध्यम आय	64	61	53	43	..	..	..	..	2.4	5.5
पूर्वी एशिया और प्रशांत	73	68	66	49	..	..	..	..	6.7	7.9
यूरोप और मध्य एशिया	55	51	40	32	..	..	..	..	.5.9	4.1
लेटिन अमरीका और कैरीबियन	57	62	48	46	..	..	..	..	0.8	2.4
मध्य पूर्व और उत्तर अफ्रीका	41	41	26	23	..	..	..	..	1.9	0.6
दक्षिण एशिया	59	55	47	37	..	..	..	..	3.1	4.7
सब-सहारा अफ्रीका	64	65	47	47	..	..	..	..	.5.2	2.2
उच्च आय	57	56	45	37	..	..	..	..	0.9	1.9
यूरो क्षेत्र	50	51	42	34	..	..	..	..	2.3	1.9

स्रोत: विश्व विकास संकेतक, 2013 (विश्व बैंक)

इन परिवर्तनों को समाहित करने में सक्षम अवश्य होना चाहिए। शिक्षा के तीव्र विस्तार में सहायक नियामक व्यवस्था करने की आवश्यकता है और केंद्र तथा राज्य सरकारों को सहकारितापूर्ण संघवाद की भावना से काम करना चाहिए।

रोज़गार के संदर्भ में भी ऐसे ही निष्कर्ष सामने आए हैं। भारत ने हाल के वर्षों में उच्च आर्थिक विकास दर हासिल की है, लेकिन रोज़गार की कमी के साथ आर्थिक वृद्धि स्थाई नहीं कही जा सकती। श्रम और उत्पाद बाजार संबंधी अनेक कानून (बड़े और मध्यम आकार के व्यापार से संबंधित) श्रम गतिशीलता में बाधक हैं और घरेलू और वैश्विक बाज़ार के साथ अनुकूलन की समस्याओं का निराकरण करने की आवश्यकता है।

संभवत: सरकारी और निजी, दोनों ही क्षेत्रों के नीति निर्माताओं में धारणात्मक परिवर्तन सबसे महत्वपूर्ण है। विकास और गरीबी के बीच मौजूदा संबंध को समझा गया है लेकिन यह भी समझने की आवश्यकता है कि युवाओं की शिक्षा और रोज़गार के प्रति दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए बिना और उन्हें भारत की विकास नीति के मध्य में रखे बिना न तो मध्यम अवधि में उच्च विकास दर हासिल की जा सकती है और न ही स्थाई गरीबी उन्मूलन संभव हो सकता है। ❑

(लेखक पीएचडी (कोलंबिया), एफडब्ल्यूआईएफ, आर्न्टकोर्डेन अर्थशास्त्र विभाग, राजीव गांधी प्रोफेसर ऑफ इकोनॉमिक्स, के अध्यक्ष, ऑस्ट्रेलिया साउथ एशिया रिसर्च सेंटर, कॉलेज ऑफ एशिया एंड द पैसिफिक, ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनीवर्सिटी के कार्यकारी निदेशक हैं। इससे पहले वे अमरीका में कोलंबिया विश्वविद्यालय और विलियम्स कॉलेज, कनाडा में क्वीन्स यूनिवर्सिटी, ब्रिटेन में वार्विक विश्वविद्यालय और भारत में दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरू और इंदिरा गांधी विकास अनुसंधान संस्थान में अध्यापन कर चुके हैं। उन्होंने लोक अर्थशास्त्र, वृहत् अर्थशास्त्र और विकास अर्थशास्त्र जैसे क्षेत्रों में विशेषता हासिल की है। ई-मेल a.r.jha@anu.edu.au **)**

Platinum
Champions are made Not born

Platinum

An Ideal Institute for Civil Services Examination

सिविल सेवा परीक्षा 2014 (विनय दूबे के कुशल दिशा निर्देशन में)

प्रारम्भिक परीक्षा विशेष बैच 10 अप्रैल

सामान्य अध्ययन फाउन्डेशन बैच 25 अप्रैल

Enquiry : 099538 52355 Visit us : www.platinumeducational.com

Contact No.: 011-45120333, 08468 9880 22, 09810 9009 14

1498/1, Ist Floor, Outram Lane, Opp. to BBM-DTC Depot, Kingsway Camp, Delhi-9

YH - 289/2013

ग़रीबी रेखा : प्राथमिकताओं के सवाल

अशोक कुमार पाण्डेय

हालिया सर्वे बताते हैं कि 2009-2010 में शहरों का उपभोक्ता व्यय गांवों के उपभोक्ता व्यय की तुलना में 92 प्रतिशत अधिक हो गया। शहरों और गांवों दोनों में सबसे निचले पायदान के दस फ़ीसदी लोगों के उपभोक्ता व्यय में वृद्धि की तुलना में सबसे ऊपर स्थित दस फीसद लोगों के उपभोक्ता व्यय में वृद्धि काफी अधिक रही। हम जानते हैं कि ग़रीब तबका अपनी आय का सबसे बड़ा हिस्सा भोजन के मद में ख़र्च करता है जबकि सबसे रईस तबका विलासिता की चीज़ों में

दुनियाभर में ग़रीबी और उससे उपजी कुपोषण जैसी समस्याएं सरकारों और अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों के लिए गहन चिंता का विषय रही हैं, बीसवीं सदी के चौथे दशक में युद्धों की विभीषिका से बाहर निकलने के बाद गैर समाजवादी देशों में भी जनता के बड़े तबके की वंचना को दूर करना एक प्राथमिक कार्यभार की तरह सरकारों के एजेंडें में शामिल हुआ तथा जहां राष्ट्रीय स्तर पर कल्याणकारी राज्य की संकल्पना के साथ वंचित तबके को रोज़गार, भोजन तथा स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध करवाना सरकारों के एजेंडें में शामिल हुआ, वहीं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बनी संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्थाओं ने इसकी व्यापक मानीटरिंग और आर्थिक रूप से कमज़ोर देशों को इस कार्य के लिए धन तथा संसाधन उपलब्ध कराने हेतु अनेक प्रयास किये, जाहिर है कि इस पूरी कवायद में सबसे ज़रूरी था ग़रीब लोगों की पहचान करना, जिससे कि उनके लिए बनी योजनाएं सीधे उन तक पहुंच सकें। दुनियाभर में इसके लिए अलग-अलग मानक बनाए गए, जहां अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सभी देशों के तुलनात्मक अध्ययन और उनकी क्रय शक्ति क्षमता के आधार पर एक ग़रीबी रेखा की संकल्पना की गयी है, वहीं भिन्न-भिन्न देशों ने अपनी राष्ट्रीय परिस्थितियों और प्राथमिकताओं के आधार पर ग़रीबी रेखा को परिभाषित किया है।

भारत में गरीबी की बहस नई नहीं है। आज़ादी के पहले और बाद में भी लगातार ग़रीबी बहस के केंद्र में रही है। आरंभिक दौर में आज़ाद भारत की सरकारों ने ग़रीबी उन्मूलन को हमेशा ही अपने वरीयता वाले लक्ष्य के रूप में प्रस्तुत तो किया लेकिन 'ग़रीबी हटाओ' जैसे नारों के बावजूद यह बदस्तूर जारी रही। 1957 में इंडियन लेबर कांफ्रेंस में गरीबी को परिभाषित करने की जो कोशिश की गई उसमें शुरू से ही दो तरह की दृष्टियों का टकराव रहा। पहला समूह वह जो गरीबी की परिभाषा को इस तरह निर्धारित करना चाहता था जिससे कि इस रेखा के नीचे रहने वालों की संख्या कम से कम दिखाई दे। इस सोच के तहत पेट भरा होना ग़रीब न होने के लिए पर्याप्त माना गया। इस कांफ्रेंस के बाद योजना आयोग ने एक वर्किंग ग्रुप बनाया था। जिसने भारत के लिए 'आवश्यक कैलोरी उपभोग' की अवधारणा पर आधारित ग़रीबी रेखा का प्रस्ताव किया। इसके तहत उस समय बीस रुपये प्रतिमाह को विभाजक रेखा के रूप में स्वीकृत किया गया। 1979 में योजना आयोग में ही ग़रीबी को पुनर्परिभाषित करने के लिये एक टास्क फोर्स का गठन किया। लेकिन इसने भी मामूली फेरबदल के साथ मूलत: 'आवश्यक कैलोरी उपभोग' की अवधारणा को ही आधार बनाया। 1973 की क़ीमतों को आधार बनाते हुए इसने ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 49 रुपये प्रतिव्यक्ति प्रतिमाह तथा शहरी क्षेत्रों के लिए 57 रुपये की विभाजक रेखा तय की। मुद्रास्फीति के अनुसार इसमें समय-समय पर समायोजन किया गया और वर्तमान में यह शहरी क्षेत्रों के लिए 559 रुपये और गांवों के लिये 368 रुपये है। योजना आयोग ग़रीबी रेखा के निर्धारण के लिये राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर पर एनएसएसओ के उपभोक्ता व्यय सर्वेक्षणों के आधार पर विभाजक रेखा तय करता है। 2004-2005 के लिए प्रोफेसर लकड़वाला की अध्यक्षता में 1997 में बनी

विशेष समूह द्वारा की गई अनुशंसा के आधार पर जो आंकड़े निकाले गए थे उनके अनुसार देश में उस समय गरीबों की कुल संख्या 28.3 प्रतिशत थी।

'सेंटर फॉर पॉलिसी आल्टरनेटिव' की एक रिपोर्ट में मोहन गुरुस्वामी और रोनाल्ड जोसेफ अब्राहम इस गरीबी रेखा को 'भूखमरी रेखा' कहते हैं। कारण साफ है। इसके निर्धारण का इकलौता आधार आवश्यक कैलोरी उपभोग है। यानी इसके अनुसार वह आदमी ग़रीब नहीं हैं जो येन केन प्रकारेण दो जून अपना पेट भर ले और अगले दिन काम करने के लिए जिंदा रहे। यूनिसेफ स्वस्थ शरीर के लिए प्रोटीन, वसा, लवण, लौह और विटामिन जैसे तमाम अन्य तत्वों को जरूरी बताता है जिसके अभाव में मनुष्य कुपोषित रह जाता है तथा उसकी बौद्धिक व शारीरिक क्षमताएं प्रभावित होती हैं। लेकिन गरीबी रेखा तो केवल जिंदा रहने के लिए जरूरी भोजन से आगे नहीं बढ़ती। इसके अलावा शायद व्यवस्था यह मानकर चलती है कि आबादी के इस हिस्से का स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन, घर, स्वच्छ पानी, सैनिटेशन जैसी तमाम मूलभूत सुविधाओं पर तो कोई हक़ है ही नहीं। वैसे तो जिस 'आवश्यक कैलोरी उपभोग' की बात की जाती है (शहरों में 2100 तथा गावों में 2400 कैलोरी प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन) वह भी दिनभर शारीरिक श्रम करने वालों के लिहाज से अपर्याप्त है। 'इंडियन कांउसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च' के अनुसार भारी काम में लगे हुए पुरुषों को 3,800 कैलोरी तथा महिलाओं को प्रतिदिन 2,925 कैलोरी की आवश्यकता है। यही नहीं, अनाजों की कीमतों में तुलनात्मक वृद्धि व उपलब्धता में कमी, स्वास्थ्य तथा शिक्षा जैसे क्षेत्रों में सरकार की घटती भागीदारी, विस्थापन तथा तमाम ऐसी ही दूसरी परिघटनाओं की रोशनी में यह रेखा आर्थिक स्थिति के आधार पर समाज को जिन दो हिस्सों में बांटती है उसमें ऊपरी हिस्से के निचले आधारों में एक बहुत बड़ी आबादी भयावह ग़रीबी और वंचना का जीवन जीने के लिये मज़बूर है और तमाम सरकारी योजनाएं उसको लाभार्थियों की श्रेणी से उसके अधिकारिक तौर पर ग़रीब न होने के कारण बाहर कर देती है।

इसी वजह से भारत सरकार के ग़रीबी के आधिकारिक आंकड़े हमेशा से विवाद में रहे हैं। विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय तथा दूसरी स्वतंत्र संस्थाओं के अध्ययनों में देश में वास्तविक गरीबों की संख्या के आंकड़ें सरकारी आंकड़ों से कहीं ज्यादा रहे हैं। विश्व बैंक की 'ग्लोबल इकोनामिक प्रॉस्पेक्ट्स फार 2009' नाम से जारी रिपोर्ट में अनुमान लगाया गया है, कि 2015 में भारत की एक तिहाई आबादी बेहद गरीबी (1.25 डॉलर यानी लगभग 60 रुपये प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति से भी कम आय) में गुजारा कर रही होगी। इस रिपोर्ट के अनुसार यह स्थिति सब सहारा देशों को छोड़कर पूरी दुनिया में सबसे बदतर होगी। यहीं नहीं, यह रिपोर्ट भारत की तुलनात्मक स्थिति के लगातार बद्तर होते जाने की ओर भी इशारा करती है। इसके अनुसार जहां 1990 में भारत की स्थिति चीन से बेहतर थी वहीं 2005 में जहां चीन में गरीबों का प्रतिशत 15.9 रह गया, भारत में यह 41.6 थी।

विश्व बैंक की 'ग्लोबल इकोनामिक प्रॉस्पेक्ट्स फार 2009' नाम से जारी रिपोर्ट में अनुमान लगाया गया है, कि 2015 में भारत की एक तिहाई आबादी बेहद गरीबी (1.25 डॉलर यानी लगभग 60 रुपये प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति से भी कम आय) में गुजारा कर रही होगी। इस रिपोर्ट के अनुसार यह स्थिति सब सहारा देशों को छोड़कर पूरी दुनिया में सबसे बदतर होगी। यहीं नहीं, यह रिपोर्ट भारत की तुलनात्मक स्थिति के लगातार बद्तर होते जाने की ओर भी इशारा करती है।

इन्हीं विसंगतियों के मद्देनजर पिछले दिनों सरकार ने गरीबी रेखा के पुनर्निधारण के लिये जो नयी कवायदें शुरू की थीं उन्होंने इस जिन्न को एक बार फिर से बोतल से बाहर निकाल दिया था। सबसे पहले आई असंगठित क्षेत्र के उद्यमों के लिये गठित राष्ट्रीय आयोग (अर्जुन सेनगुप्ता समिति) की रिपोर्ट ने देश में तहलका ही मचा दिया था। इसके अनुसार देश की 77 फीसदी आबादी 20 रुपये रोज़ से कम में गुजारा करती है। दो अंकों वाली संवृद्धि दर और शाइनिंग इंडिया के दौर में यह आंकड़ा सच्चाई के घिनौने चेहरे से नकाब खींचकर उतार देने वाला था। समिति ने असंगठित क्षेत्र के लिये दी जाने वाली सुविधाएं इस आबादी तक पहुंचाने की सिफ़ारिश की थी। लेकिन बात यहीं पर खत्म नहीं हुई। भारत सरकार द्वारा गरीबी रेखा के निर्धारण के लिये मानक तैयार करने के लिये ग्रामीण विकास मंत्रालय के पूर्व सचिव श्री एन के सक्सेना की अध्यक्षता में जो समिति बनाई थी उसके आंकड़े और भी चौकाने वाले थे। इस समिति ने अगस्त 2009 में पेश अपनी रिपोर्ट में गरीबी रेखा से ऊपर रहने वालों के विभाजन के लिये पांच मानक सुझाये। जिसमें शहरी क्षेत्रों में न्यूनतम 1,000 रुपये तथा ग्रामीण क्षेत्रों में न्यूनतम 700 रुपयों का उपभोग या पक्के घर या दो पहिया वाहन या मशीनीकृत कृषि उपकरणों जैसे ट्रैक्टर या जिले की औसत प्रतिव्यक्ति भू-संपत्ति का स्वामित्व। इस आधार पर समिति पर गरीबी रेखा के निर्धारण पर समिति ने पाया कि भारत की ग्रामीण जनसंख्या का कम से कम पचास फीसदी इसके नीचे जीवनयापन कर रहा है। सक्सेना समिति ने खाद्य मंत्रालय के आंकड़ों का भी जिक्र किया है जिसके अनुसार गांवों में 1,015 करोड़ बीपीएल राशन कार्ड हैं। अगर इसी को आधार बनाया जाएतो भी गांवों में गरीबी रेखा से नीचे रह रहे लोगों की संख्या लगभग 53 करोड़ ठहरती है जो कुल आबादी का लगभग पचास फीसदी है।

समिति का यह भी मानना था कि जहां आधिकारिक तौर पर 1973-74 से 2004-05 के बीच गरीबी 56 प्रतिशत से घटकर 28 प्रतिशत हो गयी वहीं गरीबों की वास्तविक संख्यां में कोई कमी नहीं आयी। अपने निष्कर्ष में वह कहते हैं कि 'गरीब परिवारों की एक बहुत बड़ी संख्या गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रमों से बहिष्कृत रही है और ये निश्चित रूप से सुदूर क्षेत्रों में रहने वाले बेजुबान लोग हीं होंगे। लेकिन सरकार ने इस समिति की अनुशंसाओं को लागू करने से साफ इंकार कर दिया। योजना आयोग द्वारा समिति को लिखे गये पत्र का जिक्र पहले ही किया जा चुका है। ग्रामीण विकास मंत्री सी पी जोशी ने इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा था कि 'सक्सेना समिति

को गरीबों की गणना करने के लिये नहीं सिर्फ गरीबों की पहचान करने के लिये नयी प्रणाली विकसित करने के लिये कहा गया था।'

इस दौरान योजना आयोग के एक सदस्य अभिजीत सेन ने तर्क दिया था कि गरीबों की गणना आवश्यक कैलोरी उपभोग की जगह आय के आधार पर की जानी चाहिये। उनका यह भी मानना था कि मौजूदा मानकों के आधार पर गणना से शहरी क्षेत्रों में गरीबों की वास्तविक संख्या 64 फीसदी तथा गांवों में अस्सी फीसदी है। इस संदर्भ में केंद्र सरकार द्वारा प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार समिति के तत्कालीन अध्यक्ष सुरेश तेंदुलकर समिति को गरीबों की संख्या की गणना की जिम्मेदारी दी गयी थी। इस आयोग की रिपोर्ट में एक तरफ तो आवश्यक कैलोरी उपभोग वाली परिभाषा से आगे बढ़ने की कोशिश करती है तो दूसरी तरफ आंकड़ों में गरीबी कम रखने का दबाव भी इस पर साफ था।

तेंदुलकर समिति के अनुसार 2004-05 में भारत की कुल आबादी का 37.2 फीसदी हिस्सा गरीबी रेखा के नीचे था। यह आंकड़ा योजना आयोग के 27.5 फीसदी से तो अधिक है लेकिन अभिजीत सेन कमेटी या ऐसे अन्य अध्ययनों के निष्कर्षों से कम। हालांकि योजना आयोग से इसकी सीधी तुलना मानकों के परिवर्तन के कारण संभव नहीं है। आयोग के अनुसार बिहार तथा ओड़िसा में ग्रामीण गरीबी का प्रतिशत क्रमशः 55.7 तथा 60.8 था, उल्लेखनीय है कि सेन कमेटी के अनुसार इन दोनों प्रदेशों में ग्रामीण गरीबी का प्रतिशत 80 से अधिक था। आयोग ने ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी निर्धारण के लिये सीमारेखा 356.30 से बढ़ाकर 444.68 रुपये और शहरी क्षेत्रों में 538.60 रुपये से बढ़ाकर 578.80 की है। इस आधार पर दैनिक उपभोग की राशि शहरों में लगभग 19 रुपये और गांवों में लगभग 15 रुपये ठहरती है जो विश्व बैंक द्वारा तय की गयी अंतर्राष्ट्रीय गरीबी रेखा (20 रुपये) से कम है। समिति ने आवश्यक कैलोरी वाले मानक को पूरी तरह समाप्त कर दिया था। इसकी जगह पर समिति का जोर शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य क्षेत्रों में होने वाले ख़र्चों को भोजन के साथ समायोजित कर ग्रामीण तथा शहरी विभाजन को समाप्त कर क्रय शक्ति समानता पर आधारित एक अखिल भारतीय गरीबी रेखा के निर्धारण पर दिया। यह अवधारणा के रूप में 1973-74 वाले मानकों से निश्चित रूप से बेहतर थी जिसमें शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी तमाम जरूरतों को सरकार द्वारा मुफ्त उपलब्ध कराये जाने की मान्यता पर आधारित थे। लेकिन आवश्यक कैलोरी उपभोग वाली अवधारणा को पूरी तरह से खत्म किया जाना, खासतौर से तब, जबकि उसी दौर में अंतर्राष्ट्रीय खाद्य नीति अनुसंधान के अंतर्राष्ट्रीय भूख सूचकांक में भारत को 66 वें पायदान पर रखा गया है और खाद्यान्न संकट, खाद्यान्नों की क़ीमतों में अभूतपूर्व तेज़ी तथा कुपोषण की समस्या लगातार गहराती गयी है, इसकी नीयत पर सवाल उठता ही है। इस दौर में पेश की गयी इस अवधारणा का अर्थ होगा कि गरीबी रेखा से वास्तविक गरीबों का बहुलांश बाहर रह जायेगा। यहां पर यह भी बता देना आवश्यक है कि कई हालिया अध्ययन बताते हैं कि सबसे गरीब दस फीसदी लोगों का कैलोरी उपभोग सबसे अमीर दस फीसदी लोगों के कैलोरी उपभोग से कम है जबकि यह तो सर्वज्ञ है कि जहां अमीर आदमी तमाम दूसरी पोषक चीजों का उपभोग करता है वहीं गरीबों का वही तबका अपनी लगभग पूरी आय भोजन पर ही ख़र्च करता है। दरअसल, मानकों के न्यायपूर्ण निर्धारण के लिये जहां पर एक तरफ आवश्यक कैलोरी उपभोग की अवधारणा को इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च की पूर्व में उद्धृत अनुशंसा के आधार पर और ऊंचे स्तर पर ले जाते हुए इसमें पोषण के लिये आवश्यक अन्य तत्वों के साथ समायोजित किया जाना चाहिये था और इसके साथ एक सम्मानजनक जीवनस्तर के लिये आवश्यक शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन, घर, पीने का साफ पानी, सैनिटेशन जैसी तमाम चीजों से जोड़कर देखा जाना चाहिये था। इस संदर्भ में सेंटर फॉर आल्टरनेटिव पॉलिसी रिसर्च द्वारा मूलभूत आवश्यकताओं की क़ीमत पर आधारित गरीबी की विभाजक रेखा ज्यादा न्यायपूर्ण लगती है जिसमें 2004-2005 के लिये अखिल भारतीय स्तर पर 840 रुपये प्रतिव्यक्ति प्रतिमाह का निर्धारण किया गया है। इसके साथ ही एन. के. सक्सेना द्वारा सुझाये गये मानक भी सच के ज्यादा करीब हैं। साथ ही तेंदुलकर समिति गरीबी निर्धारण के आधारों में विस्तार के दावे के बावजूद गरीबी की बहुआयामी प्रकृति के बारे में कोई पहल नहीं करती। पहले की तमाम रिपोर्टों की तरह यह भी गरीबी को महज आर्थिक समस्या की तरह निरूपित करती है। इसके सामाजिक-सांस्कृतिक आयामों को समझे बिना इसे जड़मूल से समाप्त किया ही नहीं जा सकता। जाति, लिंग, शरीरिक अक्षमता, क्षेत्रीय असंतुलन जैसे तमाम कारक भारत में गरीबी को निर्धारित करते हैं। लेकिन बावजूद इसके तेंदुलकर द्वारा दी गयी परिभाषा का उपयोग करने से ग़रीबी रेखा के नीचे रहने वालों की संख्या 27.5 प्रतिशत से बढ़कर 37.2 प्रतिशत हो गयी थी।

सेंटर फार आल्टरनेटिव पॉलिसी रिसर्च द्वारा मूलभूत आवश्यकताओं की क़ीमत पर आधारित गरीबी की विभाजक रेखा ज्यादा न्यायपूर्ण लगती है जिसमें 2004-2005 के लिये अखिल भारतीय स्तर पर 840 रुपये प्रतिव्यक्ति प्रतिमाह का निर्धारण किया गया है। इसके साथ ही एन. के. सक्सेना द्वारा सुझाये गये मानक भी सच के ज्यादा करीब हैं। साथ ही तेंदुलकर समिति गरीबी निर्धारण के आधारों में विस्तार के दावे के बावजूद गरीबी की बहुआयामी प्रकृति के बारे में कोई पहल नहीं करती। पहले की तमाम रिपोर्टों की तरह यह भी गरीबी को महज आर्थिक समस्या की तरह निरूपित करती है। इसके सामाजिक-सांस्कृतिक आयामों को समझे बिना इसे जड़मूल से समाप्त किया ही नहीं जा सकता।

अभी हाल में राष्ट्रीय नमूना सर्वे विभाग के प्राविजनल इस्टीमेट के सामने आने और उसमें ग़रीबी रेखा के नीचे रहने वालों की संख्या में कमी के दावे से यह बहस पुनर्जीवित हो गयी है। इस रिपोर्ट के अनुसार 2004-2005 की तुलना में ग्रामीण इलाकों में गरीबी आठ प्रतिशत कम होकर 41.8 प्रतिशत से 33.8 प्रतिशत हो गयी जबकि शहरी इलाकों में गरीबी में 4.8 प्रतिशत की कमी आई है और यह 25.7 प्रतिशत से घटाकर 20.9 प्रतिशत हो गयी है। अगर कुल संख्या

देखें तो इन आंकड़ों के अनुसार 2004-05 के 40.72 करोड़ लोगों की तुलना में अब गरीबों की कुल संख्या 35.46 करोड़ है जिसमें से गांवों में 27.82 करोड़ तथा शहरों में 7.64 करोड़ लोग ग़रीब हैं।

ज़ाहिर है ये आंकड़े हालिया स्थिति को देखते हुए चौंकाने वाले हैं, विरोधाभास को लेकर पहला सवाल तो खुद एनएसएसओ के इसके तुरंत बाद जारी बेरोज़गारी के आंकड़ों से ही उठ खड़ा हुआ। इन आंकड़ों के अनुसार 2004-2005 से 2009-2010 के बीच देश में रोज़गार के अवसरों में 4.6 करोड़ की कमी आई है। पिछले आर्थिक सर्वेक्षणों में इसकी स्पष्ट पदचाप सुनाई पड़ ही रही थी। उत्पादन के हर क्षेत्र में विकास दरों में भारी कमी, रोज़गार के घटते अवसर, मंदी का असर और ऐसे तमाम दूसरे नकारात्मक कारकों के बीच ग़रीबी के आंकड़ों में कमी कैसे संभव है, यह सवाल देशभर के सामने एक गंभीर बहस का सवाल बना हुआ है। सबसे पहला सवाल तो ग़रीबी के निर्धारण से ही जुड़ा हुआ है। इन एस्टिमेट्स में राष्ट्रीय स्तर पर 22.42 रुपये प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति की आय को ग्रामीण इलाकों के लिए और 28.35 रुपये आय को शहरी इलाकों के लिए ग़रीबी रेखा के निर्धारक के रूप में लिया गया है, साथ ही इसके जिस आधार वर्ष का चुनाव किया गया है वह 2010 का वर्ष कृषि के लिए एक भयावह वर्ष था तथा अवर्षा के कारण कृषि के उत्पादन के निचले स्तरों वाले इस वर्ष से तुलना करने पर ऊंचे सूचकांक मिलना स्वाभाविक है। जाहिर है ये सूचकांक विश्वसनीय नहीं हो सकते। यही वज़ह है कि उपभोग खर्च में इन आंकड़ों के अनुसार हुई वृद्धि 2004-05 और 2009-10 में हुए बड़े सैम्पल आधारित सर्वे के बीच आई वृद्धि की तुलना में ज्यादा है। जहां 2004-05 और 2009-10 के बीच वृद्धि दो प्रतिशत से भी कम रही, वहीं 2009-10 और 2011-12 के बीच उपभोग खर्चों में ये आंकड़े 9 प्रतिशत की वृद्धि दिखा रहे हैं। चुनावी वर्ष होने के कारण इन आंकड़ों के प्रति दोनों पक्षों का उत्साह समझा जा सकता है, लेकिन यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि अभी जो प्रोविजनल इस्टीमेट आये हैं वे केवल केंद्रीय नमूना के सर्वे से प्राप्त आंकड़ों के उपयोग से प्राप्त हुए हैं, राज्यों के नमूना के आंकड़ों के उपयोग के बाद आने वाले अंतिम निष्कर्ष इससे भिन्न हो सकते हैं। इसीलिए अंतिम रिपोर्ट के आ जाने के बाद ही कोई मुकम्मल टिप्पणी संभव हो सकती है।

बावजूद इसके इन आंकड़ों से कई ऐसे निष्कार्ष दिखाई देते हैं जो भूमंडलीकरण के बाद के वर्षों में लगातार बढ़ रही नकारात्मक प्रवृत्तियों की ओर स्पष्ट इशारा कर रहे हैं। पहला तथ्य है शहरी और ग्रामीण इलाक़ों के उपभोक्ता व्यय के बीच खाई में निरंतर वृद्धि 2004-2005 में गांवों के उपभोक्ता व्यय की तुलना में शहरों का उपभोक्ता व्यय 88 प्रतिशत कम था, हालिया सर्वे बताते हैं कि 2009-2010 में शहरों का उपभोक्ता व्यय गांवों के उपभोक्ता व्यय की तुलना में 92 प्रतिशत अधिक हो गया। शहरों और गांवों दोनों में सबसे निचले पायदान के दस फ़ीसदी लोगों के उपभोक्ता व्यय में वृद्धि की तुलना में सबसे ऊपर स्थित दस फीसद लोगों के उपभोक्ता व्यय में वृद्धि काफी अधिक रही। हम जानते हैं कि ग़रीब तबका अपनी आय का सबसे बड़ा हिस्सा भोजन के मद में ख़र्च करता है जबकि सबसे रईस तबका विलासिता की चीज़ों में। इसका मतलब साफ है कि जहां गरीब व्यक्ति के भोजन के ख़र्चों में वृद्धि कम हो पा रही है वहीं सबसे अमीर लोगों की विलासिता में ख़र्च करने की क्षमता बढ़ती जा रही है। यहां तक कि गांवों के सबसे अमीर दस फीसदी लोगों का उपभोक्ता व्यय भी शहर के सबसे अमीर दस फीसदी लोगों की तुलना में 45 प्रतिशत कम पाया गया है। गांवों में सबसे ग़रीब दस प्रतिशत लोगों का प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन का ख़र्च लगभग 16 रुपये पाया गया हैं वहीं शहर में यह आंकड़ा 26 रुपये का है, ग्रामीण क्षेत्र आय, उपभोग तथा रोज़गार, सभी मामलों में शहरों से बहुत ज्यादा पीछे रह गए हैं और सरकार की तमाम नीतियों की घोषणाओं के बावजूद यह अंतर लगातार और अधिक बढ़ता चला जा रहा है।

इसी तरह इन आंकड़ों के अनुसार तेंदुलकर द्वारा बनाई गई गरीबी रेखा के नीचे अब भी देश का एक चौथाई हिस्सा निवास करता है। जाहिर है कि देश के भीतर गैरबराबरी लगातार बढ़ रही है, अगर इसे लगातार घटती जा रही विकास दरों के साथ जोड़ कर देखें तो स्थिति भयावह नज़र आती है।

यही नहीं, अगर सामाजिक समुदायों को अलग-अलग करके देखें तो ग्रामीण और शहरी दोनों इलाकों में अनुसूचित जातियों-जनजातियों तथा पिछड़े समुदायों के बीच ग़रीबी का प्रतिशत सबसे ज्यादा है। गांवों में अनुसूचित जनजाति के 47.4 प्रतिशत लोग, अनुसूचित जाति के 42.3 प्रतिशत लोग और पिछड़ी जातियों के 31.9 फ़ीसदी लोग ग़रीबी रेखा से नीचे हैं जबकि शहरों में इन समुदायों के गरीबीरेखा से नीचे रहने वाले लोगों की

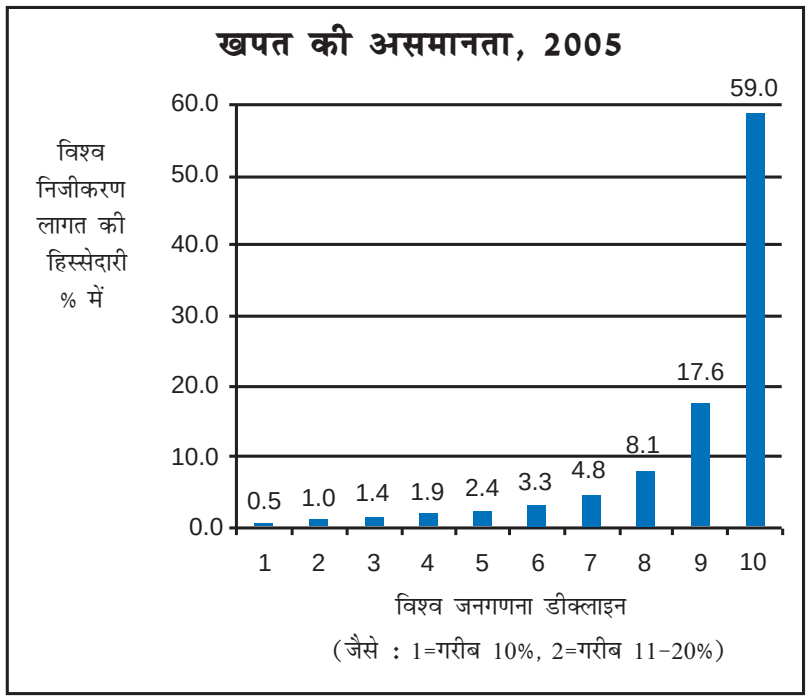

स्रोत : विश्व बैंक विकास संकेतक 2008

संख्या क्रमशः 30.40 प्रतिशत, 34.1 प्रतिशत तथा 31.9 प्रतिशत है। ग्रामीण बिहार तथा छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जातियों-जनजातियों के दो तिहाई लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं जबकि मणिपुर, ओड़ीसा तथा उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में यह संख्या पचास फीसदी से भी ज़्यादा है।

खाद्य सुरक्षा बिल के ज़रिये ग़रीबों को भोजन उपलब्ध कराने के दावे कर रही सरकार के सामने ये आंकड़े अजीब-सी उलझन लेकर आए हैं। सर्वोच्च न्यायालय में जब हलफनामा देकर योजना आयोग ने शहरी और ग्रामीण गरीबी के लिए अपने मानक प्रस्तुत किये थे तब देशभर में उसके खिलाफ़ आवाज़ें उठी थीं। अब जब उन्हीं मानकों पर ग़रीबी कम होने के दावे किये जा रहे हैं तो ये सवाल फिर से उठाने लाजिमी हैं। आंकड़ों के आने के बाद कुछ लोगों द्वारा जिस तरह 12 या 10 या 1 रुपये में पेटभर खाना उपलब्ध होने की बात की गयी वह सत्ता वर्ग की अमानवीयता तथा संवेदनहीनता प्रदर्शित करता है। इन बयानों ने जनता का गुस्सा और बढ़ा दिया। सवाल यह भी है कि आज़ादी के साठ साल बाद भी आबादी का इतना बड़ा हिस्सा सिर्फ 'पेट भरने' तक महदूद है, उसे शिक्षा, स्वास्थ्य, पीने के साफ़ पानी, छत, सुरक्षा और मनोरंजन जैसा कुछ नहीं उपलब्ध है। क्या सिर्फ़ यही राजनीतिक अर्थव्यवस्था की भयानक नाकामयाबी दिखाने के लिए बहुत नहीं है? पेट भर खाने को अहसान की तरह दिखाने वाले इन लोगों को मानव विकास रिपोर्ट और भूमंडलीय भूख सूचकांक के उन आंकड़ों पर गौर करना चाहिए जिनके अनुसार इस देश के लगभग आधे बच्चे कुपोषित हैं। एक तरफ हमारी सरकार अपने विज्ञापनों में गर्भवती महिलाओं के लिए अच्छे आहार की बात करती है तो दूसरी तरफ देश की आबादी का इनता बड़ा हिस्सा दो जून रोटी से महरूम है और उससे बड़ा हिस्सा ऐसा है जिसे सिर्फ़ दो वक़्त की रोटी नसीब हो पा रही है। यह किसी भी सभ्य लोकतांत्रिक देश के लिए राष्ट्रीय शर्म का सबब होना चाहिए कि आज़ादी के इतने वर्षों बाद और विकास के इतने दावों के बाद भी ऐसे हालात हैं। भूमंडलीकरण के साथ इन हालात में किस तरह से दुनियाभर में बदतरी आई है और अमीरी-ग़रीबी के बीच की खाई बढ़ी है इसे नीचे दिए गए रेखाचित्र से समझा जा सकता है जहां विश्व के सबसे अमीर दस फीसदी और सबसे ग़रीब दस फीसदी लोगों के उपभोक्ता व्यय का अंतर देखा जा सकता है। जाहिर है कि नई आर्थिक नीतियों के साथ आर्थिक नवउदारवाद को स्वीकारना हमारे देश में भी आय-व्यय-उपभोग के बीच अंतर के इसी ट्रेंड पर विकास कर रहा है। यहां यह भी बता देना बेहतर होगा कि जो लोग वर्तमान ग़रीबी रेखा को विश्व बैंक की वैश्विक गरीबी रेखा ($1.25 प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन) को क्रय शक्ति समानता के समकक्ष मानते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि विश्व बैंक का वह पैमाना चरम गरीबी के लिए है। एन के सक्सेना इसे 'चूहे-बिल्ली की रेखा' बताते हैं। उनके अनुसार सिर्फ़ जानवर ही इन हालात में जिंदा रह सकते हैं। खैर, इन आंकड़ों की ओर लौटें तो इनके निष्कर्षों के प्रति बढ़ते विरोधों के चलते बने दबाव के बीच हालत यह है कि विपक्ष तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं को छोड़िये, सरकार के वरिष्ठ मंत्री तथा सत्ता पक्ष के दिग्गज प्रवक्ता भी इस आंकड़े को स्वीकार नहीं कर रहे। द *हिन्द* में 25 जुलाई, 2013 को छपी रुक्मिणी एस और एम. के. वेणु की रपट के अनुसार सरकार वर्तमान ग़रीबी रेखा की जगह एक व्यापक पैमाना बनाने पर विचार कर रही है जिसमें ग्रामीण इलाक़ों के लिए 50 रुपये प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन तथा शहरी इलाकों के लिए 62 रुपये प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन का ख़र्च ग़रीबी रेखा निधारित करेगा। पांच लोगों के सामान्य परिवार के लिए इसका अर्थ हुआ 7,500 रुपये प्रतिमाह और शहरी इलाकों के लिए 9,300 रुपये प्रतिमाह यह पैमाना खाद्य सुरक्षा कानून के तहत लोगों को सस्ता अनाज उपलब्ध कराने तथा सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का लाभ पहुंचाने के लिए उपयोग में लाया जाएगा। एक अनुमान के आधार पर इस पैमाने से देश की आबादी का 65 प्रतिशत हिस्सा इस रेखा के नीचे है। क्रय शक्ति समानता के आधार पर भी यह विश्व बैंक द्वारा परिभाषित माध्यम स्तर की ग़रीबी के पैमाने ($1.25 प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन) के क़रीब होगा। देखना यह होगा कि सरकार इसे किस तरह लागू करती है और इस पैमाने का उपयोग किस तरह लागू करती है और इस पैमाने का उपयोग किस तरह करती है।

आंकड़ों के इन सब खेलों के बीच असल सवाल पर कहीं कोई चर्चा नहीं है- आखिर लगातार अमीरी-ग़रीबी की खाई बढ़ा रही, खुद संकट में फंसकर सारी दुनिया को संकट में डाल रही और दुनियाभर में बुरी तरह से असफल हो रही नवउदारवादी नीतियों को लेकर सत्ता वर्ग इतना ज़्यादा दृढ़ क्यों है? क्या कारण है कि इन नीतियों के किसी विकल्प के बारे में विचार नहीं हो रहा? ग़रीबों को थोड़ी सब्सिडी, थोड़ी सहायता या दान देने की जगह सरकारें ऐसी नीतियों पर विचार क्यों नहीं करतीं जिनसे रोज़गार और उत्पादन दोनों की जनोन्मुखी वृद्धि संभव हो और एक प्रक्रिया में सबसे अमीर लोगों के पास संकेंद्रित धन नीचे के संस्तरों पर पहुंचे। ट्रिकल डाउन का सिद्धांत बुरी तरह असफल साबित हुआ है। जाहिर है कि अमीरों की समृद्धि अपने आप गरीबों की बेहतरी में तब्दील होती दुनिया में कहीं दिखाई नहीं दे रही। तो इसकी वैकल्पिक नीतियां क्यों नहीं बनाई जा सकती? अगर उत्पादन का विकेंद्रीकरण हो, विलासिता की वस्तुओं की जगह जरूरत की सस्ती चीज़ों के उत्पादन बढ़ाने तथा बहुतायत लोगों को रोज़गार देने, क्षेत्रीय असमानताओं को खत्म करने तथा समान व संवहनीय विकास की नीतियां बनाई जाएं तो बड़ी आबादी अपने आप समृद्ध होगी। ❑

(लेखक 'कृषि मूल्य एवं लागत आयोग' में वरिष्ठ सांख्यिकी अधिकारी हैं साथ ही आल्टरनेटिव इकॉनामिक सर्वे सहित विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में सामाजिक - आर्थिक विषयों पर एक लंबे अर्से से गंभीर लेखन करते रहे हैं। ई मेल : ashokk34@gmail.com **)**

विशेष दौड़ के विशेष धावक

राकेश (18) ऑस्ट्रेलिया की अपनी विशेष यात्रा पर जाने की तैयारी के साथ-साथ लोगों द्वारा किये जा रहे सवालों के उत्तर भी देता जा रहा था। वहां मौजूद लोगों को उसके आत्मविश्वास को देखकर हैरानी हो रही थी। उन्हें सहसा इस बात का विश्वास नहीं हो पा रहा था कि यही युवक पूरे जम्मू क्षेत्र से एकमात्र विकलांग प्रतियोगी है जो विशेष ओलंपिक के लिए चुना गया है।

राकेश भी डाउन सिंड्रोम से ग्रसित अन्य रोगियों की तरह मानसिक रोगियों की भीड़ में खो जाता और अपनी पहचान बनाने से वंचित रह जाता। अगर उसकी ज़िंदगी में ललित कुमार और डॉ. अश्विनी जैसे लोग न आते। इन दोनों ने उसे आगे बढ़ने का हौसला दिया और उसका आत्मविश्वास बढ़ाया।

राकेश के अलावा करीब 70 ऐसे युवक जो मानसिक रूप से कमजोर हैं, प्रेरणा अनुसंधान और पुनर्वास सस्थान, आर एस पुरा, जम्मू के छात्र हैं। यहां वे गणित के सवाल तो हल करते ही हैं, साथ ही साथ एक नयी व खुशहाल ज़िंदगी के सपने भी संजोते हैं। यहां के शिक्षक इन छात्रों में आत्मविश्वास की भ. ावना जागृत करते हैं ताकि ये भी स्वतंत्र और सम्मान की जिंदगी जी सकें।

राकेश की मां कांता देवी कहती हैं ''12 साल की उम्र तक राकेश घर से बाहर तक नहीं निकलता था। हालांकि वह उग्र स्वभाव का नहीं है, फिर भी उसके साथ हमेशा परिवार का कोई न कोई सदस्य अवश्य रहता था। उसके पिता एक फौजी अफसर हैं, अत: उनका ज्यादातर समय घर से बाहर ही बितता है। इसलिए राकेश की देखभाल की जिम्मेदारी पूरी तरह से मेरे हीं ऊपर होती है।

कांता देवी के चमकते हुए चेहरे से यह साफ जाहिर था कि वो अपने बेटे की इस कामयाबी से काफी खुश है। उनका मानना है कि राकेश की इस कामयाबी से उनके परिवार का नाम रोशन हुआ है।

राकेश के अलावा उन 70 छात्रों के परिवार वाले भी प्रेरणा केंद्र, जो कि सहयोग इंडिया नामक गैर लाभकारी संगठन के सहयोग से चलायी जाती है, के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। सहयोग इंडिया के निरंतर प्रयास ने इन युवकों की ज़िंदगी ही बदल डाली है। कमलजीत कौर जो कि विशेष ओलंपिक के लिये जम्मू राज्य की प्रशिक्षक हैं, बताती हैं कि इस संस्थान के 6 बच्चे विशेष ओलंपिक के लिए चुने गए थे, मगर अपनी निराशा को भी नहीं छुपाती जब वे कहती हैं- हालांकि हमारे संस्थान से 6 बच्चे चुने गए थे मगर हम आर्थिक मज़बूरियों के चलते एक भी प्रतियोगी को ऑस्ट्रेलिया भेजने में असमर्थ रहे, क्योंकि वहां जाने में एक प्रतियोगी पर कम से कम 80,000 का ख़र्च आता।

हालांकि यह पहली बार हुआ है कि प्रतियोगियों का चयन जम्मू क्षेत्र से हुआ है, इसलिए यह निर्णय लिया गया कि कम से कम एक प्रतियोगी को जरूर भेजा जाए।

ललित कुमार, जोकि एक समाजसेवी होने के साथ-साथ विशेष ओलंपिक के क्षेत्रीय समन्वयक भी हैं, की भी इन मानसिक रूप से कमज़ोर बच्चों के साथ जुड़ने की एक अलग कहानी है, ललित कुमार की बड़ी बहन भी इन्हीं बच्चों की श्रेणी में आती हैं। उनकी और उन जैसे बच्चों की विवशतता देख ललित कुमार सोचने पर विवश हो गए और कुछ करने की ठान ली। उन्होंने यह महसूस किया कि ऐसी लड़कियों को तो और भी परेशानी का सामना करना पड़ता है।

ललित बताते हैं ''मैंने इस रोग से संबंधित पुस्तकों का अध्ययन किया तथा कई पुनर्वास केंद्रों का दौरा किया। मुझे लगा कि ऐसे बच्चों को पुनर्वासित किया जा सकता है। अगर उन्हें बचपन में ही बुनियादी प्रशिक्षण दिया जाए तो ये आगे चलकर अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं। इसी सोच ने मुझे विशेष ओलंपिक से भी जुड़ने को प्रेरित किया।''

सवा जिले के दो पंचायतों में किये गए एक सर्वेक्षण से कुछ चौंकाने वाले तथ्य सामने आए। पूरे क्षेत्र में 672 विकलांग बच्चे हैं। जिनमें मानसिक रूप से कमज़ोर बच्चे भी शामिल हैं, इन 672 बच्चों में से सिर्फ़ 8 ऐसे बच्चे हैं जिन्हें सरकारी सहायता मिलती हैं और सिर्फ 70 बच्चों को विकलांगता प्रमाणपत्र मिली है।

डॉ. अश्विनी कुमार बताते हैं, ''सरकार के तरफ से हमें कोई सहायता नहीं मिलती। हमें पता है कि हमारे जम्मू क्षेत्र में कुछ ही ऐसे पुनर्वास केंद्र हैं जहां इस तरह के बच्चों के लिए आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध हैं। अत: हम बिना सरकारी सहायता के भी इन केंद्रों को चला सकते हैं। हमलोगों ने एक ऐसे विशाल पुनर्वास केंद्र बनाने का निर्णय किया है जहां कम से कम 400 बच्चों के रहने की सुविधा हो। वहां हम इन बच्चों को वो सारी सुविधाएं उपलब्ध कराएंगे जो उन्हें आज के इस प्रतिस्पर्धात्मक युग में अपनी अलग पहचान बनाने में सहायता प्रदान करें।'' ❑

(चरखा फीचर्स)

कर सुधार और जीएसटी

भविष्य के सुधारों के लिए चुनौतियां

महेश सी. पुरोहित

केंद्र और राज्य सरकारों की अप्रत्यक्ष कर व्यवस्था में जीएसटी की शुरुआत से और केंद्र सरकार के प्रत्यक्ष करों में डीटीसी लाने से एक कुशल, लागत प्रभावी और पारदर्शी कर व्यवस्था की स्थापना में मदद मिलेगी। इससे भारत की कर व्यवस्था स्पर्धात्मक बनेगी और इसका असर देश-विदेश में होगा। लेकिन यह महत्वपूर्ण बात होगी कि इसमें आने वाली बाधाएं दूर की जाएं, साथ ही राज्य स्तर के अन्य करों में भी सुधार किये जाने चाहिए

स्वतंत्रता प्राप्ति से ही भारत नियोजित विकास के रास्ते पर चलता रहा है। शुरू-शुरू में भारतीय आर्थिक नीति का बुनियादी उद्देश्य था सामाजिक न्याय के साथ वृद्धि दर में तेज़ी सुनिश्चित करना। इस उद्देश्य की प्राप्ति में कुल मिलाकर अर्थव्यवस्था की विकास दर नियोजित आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। लेकिन विकास की समग्र दर काफी कम थी, जिसके कारण कई मोर्चों पर उतनी कामयाबी नहीं मिल पाई जितनी की उम्मीद की जाती थी। भारत जैसी स्थिति वाले कुछ देशों ने उन्हीं दिनों काफी ऊंची विकास दर प्राप्त की थी, जिससे विकास के रास्ते में भारत पिछड़ गया। विकास की कम दर और आयात-निर्यात में असंतुलन के चलते आर्थिक स्थायित्व लगभग पतन के कगार पर था। ऐसी स्थिति ढांचागत समायोजन के कार्यक्रम के समय 1991 में थी।

कर सुधार

1991 से ही आर्थिक नीति पर सबसे ज्यादा जोर कर नीति तथा प्रशासन पर था। शुरू-शुरू में प्रत्यक्ष करों का जोर सुधार, सरलीकरण और युक्तिसंगतता पर होता था, जिसके कारण मार्जिनल रेट्स कम होते थे और कर दर कम करनी पड़ती थी। लेकिन कई कारणों के चलते आय और संपदा पर लगाये जाने वाले सभी कर प्रारंभिक अवस्था में थे और कर ढांचा अब बहुत पेचीदा हो गया था। परिणामस्वरूप आयकर अधिनियम की फिर से संचरना करने की जरूरत पड़ गयी। नये बनाये गए आयकर को प्रत्यक्ष कर संहिता कहा गया और इसमें सभी प्रत्यक्ष कर शामिल कर लिए गए। ये कर हैं - आयकर, लाभांश वितरण कर, फ्रिंज बेनीफिट कर और संपदा कर। इस तरह से एक कुशल और प्रभावी कर व्यवस्था विकसित की गयी।

अप्रत्यक्ष करों के मामले में अनेक कानूनों की संख्या घटाने की कोशिशें की गईं, उन्हें युक्तिसंगत बनाया गया और कर व्यवस्था में सुधार करके उसे सुविधाजनक बनाया गया तथा संघीय उत्पाद कर और बिक्री कर को वैट में शामिल कर लिया गया। इस तरह से दोहरे वैट की व्यवस्था बनी, जिससे करों से बचने की प्रवृत्ति में सुधार आया और यह काम अधिक स्पर्धात्मक हो गया। लेकिन यह सिर्फ अल्पअवधि का सुधार था। दोहरे वैट से कर व्यवस्था की सभी खामियों से छुटकारा नहीं मिल पाया। दोहरे वैट में निम्नलिखित कमियां अब भी हैं :

- केन्द्रीय वैट से मूल्यांकन की समस्याएं पैदा होती हैं, जिससे बड़ी संख्या में मुकदमें दायर किये जाते हैं।
- इसका आधार संकीर्ण होता है, जिसके कारण कर व्यवस्था में तटस्थता की कमी आ जाती है तथा अकुशलता जारी रहती है।
- सेवाओं पर कर केंद्र द्वारा लगाये जाते हैं और ये कमोडिटी कर से अलग होते हैं। इसके कारण कर लगाने में मुश्किलें पेश आती हैं और आपूर्त्ति किया गया माल मिले-जुले ठेके के अंतर्गत उपलब्ध कराया जाता है।
- केंद्रीय वैट व्यवस्था के अंतर्गत बिक्री कर लगाने की व्यवस्था चल रही है। यह केंद्रीय कर व्यवस्था पर भी लागू है।
- राज्य और केंद्र स्तरों पर कर प्रशासन अब भी बहुत पेचीदा और जटिल है।

उक्त कमियों को ध्यान में रखते हुए अब प्रस्ताव किया गया है कि मौजूदा डुअल वैट, सर्विस टैक्स और केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा लगाये जाने वाले कुछ जिन्स टैक्सों की जगह माल और सेवा कर (जीएसटी) शुरू किया जाए।

जीएसटी का डिजाइन

वर्ष 2009 में राज्य वित्तमंत्रियों की उच्चाधिकार प्राप्त समिति ने एक संयुक्त कार्यदल का गठन किया, जिसे जीएसटी के बारे में मोटी-मोटी रूपरेखा प्रस्तुत करने का काम सौंपा गया। इस कार्यदल के अनुसार केंद्र और राज्य जीएसटी की जगह सेनवैट (जिसमें केंद्रीय उत्पाद कर शामिल है), लगाया जाए। पान मसाले, पेट्रोलियम और तंबाकू से बनी चीज़ों पर लगने वाला अतिरिक्त उत्पाद शुल्क, माल और विशेष महत्व वाली चीजों पर लगने वाली अतिरिक्त उत्पाद शुल्क अधिनियम 1957 के अंतर्गत तथा जवाबी करों के अतिरिक्त उत्पाद शुल्क की जगह आयात की गयी चीजों पर लगने वाले अतिरिक्त शुल्क (इन्हें फिलहाल सीमा शुल्क के रूप में वर्गीकृत किया गया है), उप-कर और सरचार्ज केंद्र सरकार लगाए इसमें मोटर, स्पिरिट, और हाई स्पीड डीजल पर अतिरिक्त उत्पाद शुल्क शामिल है। राज्य द्वारा लगाये जाने वाले करों में जीएसटी के अंतर्गत वैट, खरीद कर, मनोरंजन कर, लक्जरी कर और चुंगी की जगह प्रवेश पर लगने वाले कर की जगह जीएसटी लगे। जीएसटी में कच्चे पेट्रोल और इससे बनी चीजों के स्थान पर लगने वाला कर शामिल नहीं होगा।

इस व्यवस्था में कच्चा तेल और इससे बने उत्पादों को इसलिये नहीं शामिल किया जाता कि इसके जरिए बड़ी मात्रा में संसाधन प्राप्त होते हैं। इससे पूंजीगत माल जैसी चीजें दुर्लभ होती हैं और आखिरकार यह पेट्रोलियम क्षेत्र की कुशलता को प्रभावित करती हैं। इसीलिए सुझाव दिया जाता है कि कुल मिलाकर पेट्रोलियम क्षेत्र को जीएसटी कर व्यवस्था के अंगर्तत लाया जाए और जरूरी हो तो उस पर अतिरिक्त उत्पाद शुल्क और बिक्री कर लगे ताकि अधिक राजस्व प्राप्त हो।

जहां तक तंबाकू का सवाल है, प्रस्ताव किया गया है कि यह आधारभूत जीएसटी का एक अंग बनें। लेकिन, अधिक संसाधन प्राप्त करने के उद्देश्य से केंद्र इस क्षेत्र पर अधिक कर लगाना चाहती है। हालांकि राज्य इस पर अतिरिक्त कर नहीं लगाते। इससे सवाल उठता है कि केंद्र के लिए असमान आधार क्यों हो और राज्य के लिए क्यों नहीं ?

दोनों के लिए कोई भी आधार मंजूर किया जाए, जीएसटी के दो भाग रहेंगे- सीजीएसटी (केंद्र द्वारा लगाया गया कर) और एसजीएसटी (जो राज्यों द्वारा लगाया जाएगा)। दोनों की दरें केंद्र और राज्यों की राजस्व आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए तय की जाएंगी और इस तरह से कुल कर व्यवस्था आमतौर पर करों की स्वीकार्यता के अनुकूल रहेगी।

संविधान के वर्तमान प्रावधानों के अंतर्गत राज्यों में तैयार माल पर केंद्र को कर लगाने का अधिकार नहीं है। इसी तरह से राज्यों को सेवाओं पर कर लगाने का अधिकार प्राप्त नहीं है। यही कारण है कि जीएसटी शुरू करने के लिए संविधान संशोधन की जरूरत पड़ेगी। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए वित्त मंत्रालय ने लोकसभा में 22 मार्च, 2011 को 115वां संविधान संशोधन विधेयक पेश किया था।

इसी संदर्भ में ईसी ने शुरू-शुरू में सुझाव दिया था कि करों की दरें 15 प्रतिशत के आस-पास रखीं जाएं। इसमें से 7 प्रतिशत केंद्र द्वारा और 8 प्रतिशत राज्यों द्वारा कर लगायी जाएं। ऐसा यह मानकर किया जाता है कि फिलहाल कर की प्रभावी दर 13.5 प्रतिशत है। (कुछ वर्ग की चीज़ों पर लगने वाला कर पांच प्रतिशत के आसपास है जबकि कुछ अन्य चीजों पर 13.5 प्रतिशत)। राज्य वैट की दर होगी 10 प्रतिशत और केंद्रीय वैट की दर सेवा कर के लिए 12 प्रतिशत होगी।

दूसरी तरफ केंद्र सरकार ने प्रस्ताव किया है कि जीएसटी शुरू करने के पहले साल में करों की तिहरी व्यवस्था रखी जाए यानी आवश्यक जिन्सों पर 6 प्रतिशत, सेवाओं पर 8 प्रतिशत और मानक दर 10 प्रतिशत हो। अगले यानी दूसरे वर्ष मानक दर 9 प्रतिशत हो जाएगी और यह बाद के वर्षों में 8 प्रतिशत होगी। इसी तरह से आवश्यक जिन्सों पर 6 प्रतिशत तीसरे वर्ष बढ़कर 8 प्रतिशत हो जाएगी। इस तरह से तीसरे वर्ष जीएसटी की दर एक जैसी हो जाएगी।

राज्य इस मामले में अलग राय रखते हैं। असलियत यह है कि कुछ विदेश यात्राओं के बाद राज्यों के वित्त मंत्री चाहते हैं कि अगर यूरोप के देशों में एक दर चलती है तो इसे भारत में एक ही रखने में क्या कठिनाई है? हमारे देश में भी इसे एक समान होना चाहिए।

वर्तमान कर व्यवस्था के अंतर्गत केंद्र और राज्यों का कर बंटवारा दोहरे वैट पर आधारित है। इसे राज्यों द्वारा वसूला जाता है और इसके प्रावधान केंद्रीय बिक्री कर अधिनियम 1956 के होते हैं। जीएसटी की तुलना में मूल आधार वाले जीएसटी ठीक नहीं हैं। अत: सीएसटी की मौजूदा व्यवस्था की जगह एक अन्य व्यवस्था इंटीग्रेटेड जीएसटी लाने का प्रस्ताव है। इसीलिए जिन राज्यों में आयात होता है वहां टैक्स एक्पोर्टिंग का प्रस्ताव नहीं रखा जाता। पूंजीगत माल सहित सभी आयात की जाने वाली चीजों को सेट आफॅ कर दिया जाएगा और निर्यात शून्य दर पर किया जाएगा। इस मुद्दे पर कुछ सहमति बन गयी है। लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि इससे कई तरह की कर व्यवस्थाओं का रास्ता सुगम हो गया है। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण घटनाक्रम है और इसे सुलझा लिया जाना चाहिए।

संवैधानिक संशोधन

संविधान के वर्तमान प्रावधानों के अंतर्गत राज्यों में तैयार माल पर केंद्र को कर लगाने का अधिकार नहीं है। इसी तरह से राज्यों को सेवाओं पर कर लगाने का अधिकार प्राप्त नहीं है। यही कारण है कि जीएसटी शुरू करने के लिए संविधान संशोधन की ज़रूरत पड़ेगी। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए वित्त मंत्रालय ने लोकसभा में 22 मार्च, 2011 को 115वां, संविधान संशोधन विधेयक पेश किया था। यहां ध्यान देने की बात है कि इस विधेयक को पेश किये जाने से पहले ईसी ने संविधान संशोधन विधेयक के तीन मसौदों पर विचार

किया था। ये केंद्र सरकार द्वारा भेजे गए थे और ईसी की तीन भिन्न बैठकों में भेजे गए। यह बैठकें अगस्त-अक्तूबर 2010 के बीच और एक बैठक फरवरी 2011 में हुई थी। इन पर राज्यों को गंभीर आपत्तियां थीं, जिनमें से कुछ का विवरण नीचे दिया जा रहा है :

पहला तो यह कि प्रस्तावित संविधान संशोधन में एक जीएसटी परिषद के गठन की बात कही गयी है जो कर दरों, मुक्त करने और उनकी सीमा तय करने के लिए सिफ़ारिशें करेगी। इस विधेयक के जरिये राष्ट्रपति को अधिकार दिया गया है कि वह परिषद का गठन करे और केंद्रीय वित्त मंत्री को उसका अध्यक्ष बनाया जाए। केंद्र और राज्य सरकारों के राजस्व मंत्री और सभी राज्यों के वित्त मंत्री इसके सदस्य हों। लेकिन इस मामले में राज्यों का विचार है कि इस परिषद से संबद्ध सभी पक्षों के बारे में उन्हें समान अधिकार होने चाहिए। राज्यों द्वारा उठाई गयी आपत्तियों को ध्यान में रखते हुए प्रस्ताव है कि जीएसटी काउंसिल का गठन मौजूदा ईसी की तर्ज़ पर किया जाए। इसका अच्छा इतिहास रहा है और एक दशक से ज्यादा समय तक यह कर सुधारों का काम करती रही है। प्रस्तावित परिषद में केंद्रीय वित्त मंत्री और सभी राज्यों तथा संघशासित प्रदेशों के वित्त मंत्री होने चाहिए, जो इस बात का ध्यान रखें कि अगर कोई परिवर्तन किया गया तो इसका केंद्र और राज्यों पर एक जैसा असर पड़े।

दूसरा यह कि इस विधेयक में एक जीएसटी विवाद निपटान प्राधिकरण स्थापित करने की व्यवस्था है। इसमें एक अध्यक्ष और दो सदस्य होंगे, जो जीएसटी परिषद अथवा केंद्र या राज्य सरकारों द्वारा लाए गए परिवर्तनों से उत्पन्न विवादों का निपटारा करेंगे। राज्यों को इस तरह के निकाय की जरूरत पर गंभीर चिंता है।

तीसरे, पेट्रोलियम पदार्थों को जीएसटी से मुक्त रखने पर फिर से विचार करने की ज़रूरत है। प्रस्ताव यह है कि इन प्रेट्रोलियम पदार्थों को जीएसटी की परिभाषा में शामिल कर लिया जाए जिससे इन पर कराधान में सुविधा हो और इसका आधार व्यापक बनाया जा सके। अगर जीएसटी से इन चीज़ों को मुक्त भी रखा जाए, तो भी संविधान संशोधन विधेयक इस जीएसटी व्यवस्था को अपरिवर्तनशील बना देगा। भविष्य में अगर राज्य या केंद्र सरकार इन वस्तुओं पर जीएसटी का फ़ैसला भी करेगी तो इसके लिए संविधान संशोधन विधेयक लाना पड़ेगा। भविष्य की बात सोचते हुए तर्कसंगत यह होगा कि हम संविधान संशोधन लाकर किसी कर का प्रावधान न करें।

जीएसटी का प्रशासन करना अधिकारियों के लिए जटिल मुद्दा रहा है। जीएसटी पर गठित संयुक्त कार्यदल ने सुझाव दिया था कि एक सीमा से नीचे वाले करदाता इन कर प्रशासनों के दिन-प्रतिदिन के काम के लिए जिम्मेदार बनाए जाएं जो पंजीकरण, वसूली और आईटीसी मुद्दों को देखें (सीजीएसटी और एसजीएसटी दोनों के)। इन प्रशासकों को केंद्र और राज्यों के अधिकारियों के प्रति जवाबदेह बनाया जाए। ईसी ने इन सिफ़ारिशों पर आगे विचार किया और उसने 'मॉडल एंड रोड मैप फॉर जीएसटी इन इंडिया' शीर्षक प्रस्ताव रखे।

उम्मीद की जाती है कि केंद्र और राज्यों के बीच कोई सहमति बन जाएगी, जिससे उक्त मुद्दों का निपटारा हो सकेगा।

जीएसटी का प्रशासन

जीएसटी का प्रशासन करना अधिकारियों के लिए जटिल मुद्दा रहा है। जीएसटी पर गठित संयुक्त कार्यदल ने सुझाव दिया था कि एक सीमा से नीचे वाले करदाता इन कर प्रशासनों के दिन-प्रतिदिन के काम के लिए जिम्मेदार बनाए जाएं जो पंजीकरण, वसूली और आईटीसी मुद्दों को देखें (सीजीएसटी और एसजीएसटी दोनों के)। इन प्रशासकों को केंद्र और राज्यों के अधिकारियों के प्रति जवाबदेह बनाया जाए। ईसी ने इन सिफ़ारिशों पर आगे विचार किया और उसने 'मॉडल एंड रोड मैप फॉर जीएसटी इन इंडिया' शीर्षक प्रस्ताव रखे। तद्नुसार प्रशासनिक कार्यों को सौंपने का मुद्दा निम्नलिखित के अनुसार रहेगा :

- रुपये 1.5 करोड़ तक के माल का कारोबार केवल राज्य देखेंगे।
- रुपये 1.5 करोड़ तक के सेवाओं के कारोबार सिर्फ़ केंद्र को सौंपे जांएगे।
- रुपये 1.5 करोड़ से अधिक के कारोबार सीजीएसटी के प्रशासन के लिए केंद्र और राज्य सरकारों दोनों को तथा एसजीएसटी राज्यों को सौंपे जाएंगे।

प्रशासन की उक्त योजना से राज्य और केंद्र सरकार दोनों को एक-दूसरे से संपर्क रखने और व्यापारियों से बात करने की जरूरत होगी। इसके लिए राज्य और केंद्र सरकारों के कर प्रशासक अधिकारियों को भी व्यापारियों और एक-दूसरे के संपर्क में रहना होगा।

लेकिन करदाता की सुविधा के सिद्धांतों और वसूली की किफायत को ध्यान में रखते हुए सुझाव है कि सभी प्रशासनिक प्रक्रियाओं में राज्य और केंद्र दोनों को शामिल करने की बजाय युक्तिसंगत बात यह होगी कि उन्हें अलग-अलग जिम्मेदारी सौंपी जाए। इसीलिए जीएसटी प्रशासन को युक्तिसंगत बनाने के लिए निम्नलिखित का प्रस्ताव किया जाता है:

पहला, यह कि जीएसटी विभाग का फिर से दोनों स्तरों पर गठन किया जाए, यानी इसे एसजीएसटी और सीजीएसटी में विभाजित किया जाए। ऐसा इस तरीके से किया जाए कि हर विभाग की जिम्मेदारी और अधिकार, केंद्र और राज्य स्तरों पर तय किये जा सकें।

दूसरा, यह कि केंद्र के स्तर पर अधिकारियों की सीमित संख्या को ध्यान में रखते हुए प्रस्ताव है कि इन अधिकारियों को नज़र रखने और बड़े व्यापारियों पर संचालन के काम की जिम्मेदारी सीजीएसटी और एसजीएसटी स्तरों पर सौंपी जाए। पंजीकरण, कर भुगतान और सभी व्यापारियों को रिटर्न भेजने का काम उन्हें सौंपा जाए और इस बात का ध्यान न रखा जाए कि उनका आकार क्या है। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता अपने रिटर्न का पंजीकरण करेंगे और संबद्ध राज्य सरकार को भेजेंगे। सामान्य रूप से इस कर के बारे में व्यापारी एक अधिकारी से बात करेगा।

तीसरे, व्यापारियों के पास जितना कर अदायगी बनती हो, उसे संबद्ध सरकार के क्षेत्र

में स्थित बैंक में भुगतान किया जाए। इसका मतलब यह कि एसजीएसटी की कर प्राप्ति राज्य सरकार के खाते में की जाए और सीजीएसटी का भुगतान केंद्र सरकार के खाते में हो।

चौथा, यह दस्तावेज़ों की जांच का काम इस व्यवस्था के अंतर्गत मजबूत बनाया जाए। प्रतिसत्यापन के न हो पाने से व्यापारी कर भुगतान से बचना चाहेंगे और कर योग्य बिक्री का अनुचित श्रेय लेना चाहेंगे। केंद्रीकृत विभागों की स्थापना करके कर वंचना से बचा जा सकता है। ये विभाग क्षेत्रों में भी हो सकते हैं। फ्रांस में ऐसा होता है। फ्रांस जैसे देशों के अनुभवों को ध्यान में रखते हुए प्रस्ताव किया जाता है कि इस भूमिका को एसजीएसटी और सीजीएसटी अधिकारियों में बांट दिया जाए। एसजीएसटी अधिकारी अपने-अपने राज्यों में प्रतिसत्यापन के मुद्दों को देखें, जबकि केंद्र सरकार के सीजीएसटी अधिकारी कर मामलों और अंतर्राज्यीय मुद्दों की जिम्मेदारी संभालें।

पांचवें, सूचित कर और वास्तविक कर जिम्मेदारी के बीच का अंतर कम करना और उसकी लेखा परीक्षा बहुत जरूरी है। इसीलिए लेखा परीक्षा की एक निश्चित योजना बनाने की जरूरत है, जिसमें सभी आर्थिक गतिविधियों और सभी वर्गों के कर दाताओं का ध्यान रखा जाए। साथ ही, इसमें पहचान करने और परिपालन न करने वालों की प्रक्रियाओं का ध्यान रखा जाए। जीएसटी लेखा परीक्षा में स्थानीय मुद्दे भी होते हैं तथा अंतर्राज्यीय मुद्दे भी शामिल होते हैं। अत: लेखा परीक्षा का काम एसजीएसटी और जीसीएसटी दोनों प्रकार के अधिकारियों को सौंपा जाना चाहिए। सामान्य तौर पर अंतर्राज्यीय सीमाओं वाले मामलों की जांच सीजीएसटी अधिकारी करें। इससे उन्हें एसजीएसटी अधिकारियों का सहयोग मिलेगा और जीसीएसटी अधिकारी मामलों का चयन कर सकेंगे।

छठें, एसजीएसटी और सीजीएसटी अधिकारियों दोनों के लिए एमआईएस एक समन्वित गतिविधि होनी चाहिए। एसजीएसटी, सीजीएसटी, कस्टम्स और आयकर विभाग में सूचनाओं का आदान-प्रदान हो और इसका आधार पैन नंबर बनाए जाएं। इसके लिए कर सूचना आदान-प्रदान व्यवस्था होनी चाहिए। अन्य कर विभागों से जुड़े हुए अधिकारियों को भी इस सूचना तक पहुंच मिलनी चाहिए।

निष्कर्ष

केंद्र और राज्य सरकारों की अप्रत्यक्ष कर व्यवस्था में जीएसटी की शुरुआत से और केंद्र सरकार के प्रत्यक्ष करों में डीटीसी लाने से एक कुशल, लागत प्रभावी और पारदर्शी कर व्यवस्था की स्थापना में मदद मिलेगी। इससे भारत की कर व्यवस्था स्पर्धात्मक बनेगी और इसका असर देश-विदेश में होगा। लेकिन यह महत्वपूर्ण बात हा. ेगी कि इसमें आने वाली बाधाएं दूर की जाएं साथ ही, राज्य स्तर के अन्य करों में भी सुधार किये जाने चाहिए। राज्य स्तर के अन्य सुधारों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए, जिनमें राज्यों द्वारा लगाए जाने वाले उत्पाद कर, मोटर गाड़ी कर, पैसेंजर तथा गुड्स टैक्स और पंजीकरण तथा स्टांप ड्यूटी शामिल है। इससे भारतीय कर व्यवस्था देश को आगे बढ़ाने में मददगार होगी और देश को विकास और समृद्धि के नये क्षितिज तक पहुंचाने में सहायता मिलेगी। ❑

(लेखक वैट शुरू करने के बारे में राज्य वित्त मंत्रियों की उच्चाधिकार प्राप्त समिति के पूर्व सदस्य, सचिव और इस समय नई दिल्ली स्थिति सार्वजनिक, आर्थिक एवं नीति अनुसंधान प्रतिष्ठान के निदेशक हैं। ई मेल : maheshpur@gmail.com **)**

विनिर्माण क्षेत्र को राहत

केंद्रीय वित्त मंत्री श्री पी. चिदम्बरम ने 2014-15 के अंतरिम बजट में प्रत्यक्ष करों की दरों में परिवर्तन की घोषणा की है।े 2014-15 में कुछ अप्रत्यक्ष करों में परिवर्तन का प्रस्ताव किया है जो निम्न है :

1. पूजीगत वस्तुओं और उपभोक्ता वस्तुओं में वृद्धि को प्रोत्साहित करने के लिए 30-06-2014 तक की अवधि के लिए केंद्रीय उत्पाद शुल्क टैरिफ अधिनियम की अनुसूचि के अध्याय 84 और अध्याय 85 के तहत आने वाली सभी वस्तुओं पर उत्पाद शुल्क 12 प्रतिशत से घटाकर 10 प्रतिशत करने का प्रस्ताव है। इन दरों की समीक्षा नियमित बजट पेश करते समय की जायेगी।
2. अप्रत्याशित नकारात्मक वृद्धि दिखा रहे ऑटो मोबाइल उद्योग को राहत देने के लिए 30-06-2014 तक की अवधि के लिए निम्नलिखित उत्पाद शुल्क घटाने का प्रस्ताव किया है
   (क) छोटी कार, मोटर साईकल, स्कूटर तथा वाणिज्यिक वाहनों में 12 प्रतिशत से 8 प्रतिशत।
   (ख) एसयूवी 30 प्रतिशत से 24 प्रतिशत।
   (ग) बड़ी तथा मझौली कारों में 27/24 प्रतिशत से 24/20 प्रतिशत।
   इसी तरह चेसिस तथा ट्रेलरों पर उत्पाद शुल्क में भी कटौती का प्रस्ताव किया है।
3. मोबाइल हैंडसेटों के घरेलू उत्पाद को प्रोत्साहित करने तथा आयात पर निर्भरता कम करने के लिए सभी श्रेणियों की मोबाइल हैंडसेटों के लिए उत्पाद शुल्क की नई दरों का प्रस्ताव किया है। ये दरें सेनबेट क्रेडिट के साथ 6 प्रतिशत और बिना सेनवेट क्रेडिट के एक प्रतिशत होगी।
4. साबुन और रंगीन रसायनों के घरेलू उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिये गैर-खाद्य ग्रेड के औद्योगिक तेलों तथा वसिय अल्कोहलों पर सीमा शुल्कढ़ाचे को युक्तिसंगत बनाकर 7.5 प्रतिशत करने का प्रस्ताव किया है।
5. निर्दिष्ट सड़क निर्माण मशीनरी के घरेलू उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए ऐसी आयातित मशीनों पर लगने वाली सीवीडी से छूट समाप्त करने का प्रस्ताव है।
6. करेंसी नोटों के मुद्रण के लिए प्रतिभूति कागज़ के स्वदेशी उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए बैंक नोट पेपर मिल इंडिया प्राइवेट लिमिटेड द्वारा आयातीत पूंजीगत माल पर 5 प्रतिशत रियायती सीमा शुल्क का प्रस्ताव किया है। ❑

इंटरनेट को कौन संचालित करता है?

स्वतंत्रता और राष्ट्रीय सुरक्षा पर प्रभाव

सुनील अब्राहम

इंटरनेट को कौन संचालित करे यह मुद्दा इतना महत्त्पूर्ण नहीं है। ऐसा इसलिए है कि वास्तव में इंटरनेट को कोई भी स्वत: संचालित नहीं करता है। इंटरनेट मानकों, प्रौद्योगिकियों और कार्यकर्ताओं का एक व्यापक संग्रह है जो दिलचस्प तरीके से विभिन्न परतों, भौगोलिक स्थानों और सेवाओं की दृष्टि से अत्यन्त विविध है। इंटरनेट के विभिन्न कर्ताओं में सरकारें, निजी क्षेत्र, सिविल सोसायटी और तकनीकी एवं शैक्षिक समुदाय शामिल हैं, जो पहले से ही विभिन्न मंचों और शासन व्यवस्थाओं द्वारा विनियमित हैं

पिछले वर्ष की दूसरी छमाही इंटरनेट संचालन की दृष्टि से ऐतिहासिक रही, जिसका मुख्य कारण था एडवर्ड स्नोडेन नाम का एक व्यक्ति। जर्मन चांसलर एंजेला मार्केल और ब्राजील के राष्ट्रपति डिल्मा रोसफे को पता चला कि वे अमरीकी निगरानी का लक्ष्य हैं, सुरक्षा संबंधी कारणों से नहीं बल्कि आर्थिक कारणों से। उन्होंने इसका जोरदार विरोध किया। इतिहास, प्रौद्योगिकी, सांस्थिति और वाणिज्य संबंधी कारणों से कथित परोपकारी तानाशाह या इंटरनेट के प्राथमिक संरक्षक के रूप में अमरीका की भूमिका एक बार फिर से जांच के घेरे में आ गई। आई स्टार निकायों ने 7 अक्तूबर को मोंटेवीडियो स्टेटमेंट[1] जारी करते हुए अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। इन निकायों को तकनीकी समुदाय के रूप में भी जाना जाता है जिनमें इंटरनेट कार्पोरेशन फॉर असाइंड नेम्स एंड नंबर्स (आईसीएएनएन); 5 क्षेत्रीय इंटरनेट रजिस्ट्रीज (आरआईआर्स) यानी अफ्रीकी, अमरीकी, एशिया-प्रशांत, यूरोपीय और लैटिन अमरीकी; दो मानक निर्धारण संगठन - वर्ल्ड वाइड वेब कंसोर्टियम (डब्ल्यू3सी) और इंटरनेट इंजीनियरिंग टॉस्क फोर्स (आईईटीएफ); इंटरनेट आर्किटेक्चर बोर्ड (आईएबी); और इंटरनेट सोसायटी (आईएसओसी) शामिल हैं। वक्तव्य में 'व्यापक नियंत्रण और निगरानी से मिली अद्यतन जानकारियों के अनुसार वैश्विक इंटरनेट इस्तेमालकर्ताओं के भरोसे और विश्वास की अनदेखी किए जाने पर गंभीर चिंता' प्रकट की गई। इसमें 'आईसीएएनएन और आईएएनए कार्यों के वैश्वीकरण की प्रक्रिया में तेज़ी लाने' की आवश्यकता पर बल दिया गया। इसे देखते हुए यह प्रश्न उठता है कि क्या आई स्टार निकाय अंतिम रूप से यह चाहते हैं कि इंटरनेट के संचालन में अमरीका द्वारा अदा की जा रही विशेष भूमिका को समाप्त किया जाए? किंतु, दृष्टिकोण में इस नाटकीय परिवर्तन की पुष्टि के रूप में यह भी गया कि 'यह वैश्वीकरण एक ऐसे माहौल में हो जिसमें सभी सरकारों सहित सभी संबद्ध पक्षों की समान भागीदारी हो।' इससे स्पष्ट है कि आई स्टार निकाय बहु-पक्षवाद के ख़िलाफ़ कोई समझौता करने के पक्ष में नहीं हैं। दो दिन बाद राष्ट्रपति रोसफे ने फैडी चेहाडे के साथ एक बैठक के बाद ट्वीटर पर घोषणा की कि ब्राज़ील 'सरकारों, उद्योग जगत, सिविल सोसायटी और शिक्षाविदों के एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन'[2] की मेजबानी करेगा। इस प्रस्तावित सम्मेलन को अब नेट मुडियल का नाम दिया गया है और 23 तथा 24 अप्रैल को साओ पाउलो में होने वाले सम्मेलन में विचार-विमर्श के लिए 'सैद्धांतिक' अथवा 'इंटरनेट संचालन पारिस्थितिकी प्रणाली के अधिक विकास की रूपरेखा तैयार करने' के बारे में 188 प्रस्ताव प्रस्तुत किए गए हैं। यह बैठक निश्चित रूप से पारिस्थितिकी तंत्र में बहुपक्षीय और बहु-साझेदार व्यवस्था के लिए एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर सिद्ध होगी।

1. इंटरनेट सहयोग के भविष्य के बारे में मोंटेवीडियो वक्तव्य
   https://www.icann.org/en/news/announcements/announcement-07oct13-en.htm
2. एनएसए निगरानी के खिलाफ़ जारी संघर्ष में ब्राज़ील वैश्विक इंटरनेट सम्मेलन का आयोजन करेगा
   http://rt.com/news/brazil-internet-summit-fight-nsa-006/

बहु-पक्षवाद और बहु-साझेदारीवाद के बीच शुरू हुई यह बहस एक दशक से अधिक पुरानी हो चुकी है। बहु-साझेदारीवाद शासन का एक ऐसा रूप है, जो यह सुनिश्चित करने का प्रयास करता है कि नीति निर्धारण व्यवस्था में प्रत्येक साझेदार को एक सीट प्राप्त हो (चाहे परामर्शदाता क्षमता में अथवा निर्णय करने की क्षमता में, जो इस बात पर निर्भर हो कि आप किस की मांग करते हैं)। ट्यूनिस कार्यसूची (एजेंडा), जो 2003-05 के दौरान सूचना समाज संबंधी विश्व सम्मेलन (डब्ल्यूएसआईएस) के विचार विमर्श का अंतिम परिणाम था, में बहु-साझेदारी पद्धति को उचित ठहराया गया था। यथास्थिति बनाए रखने के पक्षधरों ने सूचना समाज के बारे में विश्व सम्मेलन को संयुक्त राष्ट्र निकायों या बहु-पक्षवाद द्वारा इंटरनेट का नियंत्रण अपने हाथ में लेने के प्रथम प्रयास के रूप में देखा। किंतु, ट्यूनिस कार्यसूची[3] ने स्पष्ट किया और इस बात की पुष्टि भी की कि बहु-साझेदारीवाद आगे के लिए एक सही मार्ग है, हालांकि बहु-पक्षवाद को भी इंटरनेट संचालन के एक वैध घटक के रूप में स्वीकार किया गया। साझेदारों की सूची में राष्ट्र, निजी क्षेत्र, सिविल सोसायटी, अंतर-सरकारी संगठन, अंतर्राष्ट्रीय मानक संगठन और ऊपर वर्णित 'साझेदार समूहों के भीतर शैक्षिक और तकनीकी समुदाय' शामिल थे।

ट्यूनिस कार्यसूची ने इंटरनेट गवर्नेंस फोरम (आईजीएफ) का भी गठन किया और संवर्धित सहयोग की प्रक्रिया शुरू की। आईजीएफ को व्यापक रूप में परिभाषित किया गया और उसके लिए 12 सूत्री लक्ष्य निर्धारित किए गए जिनमें 'उभरते हुए मुद्दों की पहचान करना, संबद्ध निकायों और आम लोगों का ध्यान उनकी तरफ आकर्षित करना और जहां कहीं उचित हो, सिफ़ारिशें करना' शामिल था। संक्षेप में, यह एक शिक्षण मंच, बातचीत का एक माध्यम और उदार नियम विकसित करने का एक स्थान था, जो किन्हीं अंतर्राष्ट्रीय संधियों का माध्यम नहीं था। संवर्धित सहयोग को परिभाषित करते हुए कहा गया कि ''इसका उद्देश्य सरकारों को इंटरनेट से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय सार्वजनिक नीति के मुद्दों में अपनी भूमिकाएं और दायित्वों का निर्वाह करने में समान स्तर पर सक्षम बनाना था, लेकिन तकनीकी और प्रचालन संबंधी मामलों में उन्हें कोई भूमिका प्रदान करना नहीं था क्योंकि उनका अंतर्राष्ट्रीय सार्वजनिक नीति संबंधी मुद्दों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।'' उसके बाद से अभी तक इसे अधिक स्पष्ट रूप में परिभाषित करने के प्रयास जारी हैं।

विश्वभर में टेलीविजन चैनलों के दर्शकों से संबंधित आंकड़ों से पता चलता है कि किसी भी औसत दिन में विश्वभर में बहुसंख्यक चैनलों ने राजनीतिक अभिव्यक्ति की बजाय सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को वरीयता प्रदान की। चीन की दीवार केवल उसके नागरिकों-इंटरनेटजनों को प्रभावित करती है और उसकी सेंसरशिप का प्रभाव अन्य अधिकार क्षेत्रों पर नहीं पड़ता है। दूसरी तरफ, अमरीकी सेंसरशिप का प्रभाव लगभग समूचे विश्व पर पड़ता है। इसकी वजह यह है कि उसकी सेंसरशिप व्यवस्था मुख्य रूप से ब्लॉकिंग या फिल्टरिंग पर आधारित नहीं है बल्कि पहचान, प्रौद्योगिकी और वित्तीय मध्यस्थों पर दबाव डालती है, जिससे उन्हें अपने लक्ष्य मजबूरन ऑफलाइन पूरे करने पड़ते हैं।

सात वर्ष बाद, दुबई में विश्व दूरसंचार सम्मेलन के दौरान यथास्थिति बनाए रखने के पक्षधरों ने इंटरनेट का नियंत्रण संयुक्त राष्ट्र द्वारा अपने हाथ में लिए जाने का एक और प्रयास किया। यहां तक कि गैर-अमरीकी सिविल सोसायटी कार्यकर्ता, जो अमरीकी प्रभुत्व के प्रति सहज नहीं थे, वे भी यथास्थिति बनाए रखने के बारे में समझौता करने के इच्छुक थे क्योंकि वे इस बात से कायल थे कि अमरीकी अदालतें किसी भी अन्य देश की तुलना में ऑनलाइन मानवाधिकारों की दृढ़तापूर्वक रक्षा करने में अधिक सक्षम थीं। वास्तव में, अमरीकी प्रशासन ने संयुक्त राष्ट्र और अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को वरीयता देने वाले अन्य देशों के निरूपण के लिए एक अच्छा आधार तैयार किया था। हिलेरी क्लिंटन के नेतृत्व में 'इंटरनेट आज़ादी' अमरीकी विदेश विभाग का सिद्धांत था। तत्संबंधी व्याख्या के अनुसार इंटरनेट के मुद्दे पर विश्व समुदाय तीन भागों में विभाजित था - पक्षधर राष्ट्र, विरोधी राष्ट्र और परिवर्तनशील राष्ट्र। अमरीका, ब्रिटेन और कुछ स्कैंडिवेनियन देश स्वतंत्रता के पक्षधर थे। चीन, रूस और सउदी अरब अधिकारवादी राष्ट्रों के उदाहरण थे जो इंटरनेट पर सेंसरशिप के पक्षधर थे। इसके अतिरिक्त भारत, ब्राज़ील और इंडोनेशिया परिवर्तनशील राष्ट्रों के उदाहरण थे जो उपरोक्त दोनों समूहों में कहीं भी जा सकते थे।

किंतु, इंटरनेट की आजादी का सिद्धांत एक गंभीर छलावा था। अमरीकी सेंसरशिप व्यवस्था चीन से बेहतर नहीं थी। चीन राजनीतिक अभिव्यक्ति को सेंसर किए जाने के पक्ष में था जबकि अमरीका बौद्धिक संपदा अधिकार-धारकों के नाम पर ज्ञान को सेंसर किए जाने का पक्षधर था, जिनका हिलेरी पर जबर्दस्त प्रभाव था। विश्वभर में टेलीविजन चैनलों के दर्शकों से संबंधित आंकड़ों से पता चलता है कि किसी भी औसत दिन में विश्वभर में बहुसंख्यक चैनलों ने राजनीतिक अभिव्यक्ति की बजाय सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को वरीयता प्रदान की। चीन की दीवार केवल उसके नागरिकों-इंटरनेटजनों को प्रभावित करती है और उसकी सेंसरशिप का प्रभाव अन्य अधिकार क्षेत्रों पर नहीं पड़ता है। दूसरी तरफ, अमरीकी सेंसरशिप का प्रभाव लगभग समूचे विश्व पर पड़ता है। इसकी वजह यह है कि उसकी सेंसरशिप व्यवस्था मुख्य रूप से ब्लॉकिंग या फिल्टरिंग पर आधारित नहीं है बल्कि पहचान, प्रौद्योगिकी और वित्तीय मध्यस्थों पर दबाव डालती है, जिससे उन्हें अपने लक्ष्य मजबूरन ऑफलाइन पूरे करने पड़ते हैं। जब हम निगरानी का मूल्यांकन करते हैं तो चीन की तुलना में अमरीकी दृष्टिकोण

3. ट्यूनिस एजेंडा फार द इन्फार्मेशन सोसायटी : http://www.itu.int/wsis/docs2/tunis/off/6rev1.html

अवरोधयुक्त आईपी व्यवस्था के साथ अमरीका से भिन्न, भारत का विश्वास है कि भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए ज्ञान तक पहुंच एक पूर्व शर्त है। जहां तक वैश्विक बौद्धिक संपदा नीति अथवा ज्ञान नीति तक पह. ुंच का प्रश्न है, भारत को घरेलू नीति और अंतर्राष्ट्रीय नीति विकास के मामले में विश्व बौद्धिक संपदा संगठन के स्तर पर अग्रणी समझा जाता है। पिछली सदी में 70 के दशक से हमारे नीति-निर्माता दवाओं तक पहुंच के रूप में स्वास्थ्य के अधिकार के हिमायती रहे हैं।

अधिक खराब लगता है। इसके अतिरिक्त जहां तक सेंसरशिप का प्रश्न है, चीन केवल अपने नागरिकों पर व्यापक निगरानी रखता है जबकि इससे भिन्न अमरीकी निगरानी न केवल उसके नागरिकों को प्रभावित करती है बल्कि बहु-परतीय दृष्टिकोण के माध्यम से प्रत्येक एकल इंटरनेट इस्तेमालकर्ता को भी प्रभावित करती है। इन परतों में कार्यक्रमों और नीतियों के अनेक समूह शामिल हैं, जैसे मालवेयर, ट्रोजन, सॉफ्टवेयर संवेदनाएं और एन्क्रिप्शन मानकों में पिछले मार्ग से प्रवेश, जो प्रमुख सेवा प्रदाताओं, टेल्कोज़, आईएसपी, राष्ट्रीय बुनियादी ढांचे और सबमरीन फाइबर ऑप्टिक केबल्स पर रोक लगाते हैं। सुरक्षा विशेषज्ञ ब्रूस स्केनियर के अनुसार 'प्राइवेसी (निजता) के बिना सुरक्षा का कोई अर्थ नहीं है और स्वतंत्रता के लिए सुरक्षा और निजता दोनों जरूरी हैं।' इस प्रकार केवल निगरानी सुरक्षा संबंधी आवश्यकता की अनदेखी करती है और कार्यात्मक बाज़ारों से समझौता करती है। इनमें ई-कॉमर्स, ई-बैंकिंग, बौद्धिक संपदा, व्यक्तिगत जानकारी और गोपनीय जानकारी के लीक होने का जोखिम बढ़ जाता है। इंटरनेट और सूचना समाज को सुरक्षित बनाने के लिए सरकारी और निजी क्षेत्र द्वारा व्यापक निगरानी आवश्यक होगी।

भारत के लिए अवसर

अवरोधयुक्त आईपी व्यवस्था के साथ अमरीका से भिन्न, भारत का विश्वास है कि भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए ज्ञान तक पहुंच एक पूर्व शर्त है। जहां तक वैश्विक बौद्धिक संपदा नीति अथवा ज्ञान नीति तक पहुंच का प्रश्न है, भारत को घरेलू नीति और अंतर्राष्ट्रीय नीति विकास के मामले में विश्व बौद्धिक संपदा संगठन के स्तर पर अग्रणी समझा जाता है। पिछली सदी में 70 के दशक से हमारे नीति-निर्माता दवाओं तक पहुंच के रूप में स्वास्थ्य के अधिकार के हिमायती रहे हैं। हाल ही में जून 2013 में भारत ने दृष्टिबाधित व्यक्तियों के लिए मराकश संधि करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। यह संधि दृष्टिबाधित व्यक्तियों को एक इस्तेमालकर्ता अधिकार (जिसे एक विशिष्टता, लचीलापन या परिसीमन के रूप में देखा जाता है) प्रदान करती है, जिससे दृष्टिबाधित व्यक्ति कॉपीराइटधारक को कोई भुगतान किए बिना पहुंच योग्य प्रारूप में उपलब्ध पुस्तकों को ब्रेल में परिवर्तित कर सकते हैं। मराकश संधि केवल विकलांगता विषयक (केवल दृष्टिबाधित व्यक्तियों के लिए) है और यह विशेष रूप से काम (केवल कॉपीराइट के मामले में) करती है। यह नीतिगत दृष्टि से उपयुक्त पद्धतियों की निर्यात नीति के मामले में भारत की सफलता का पहला उदाहरण है। कॉपीराइट अधिनियम में विकलांगों के लिए भारत की छूट मराकश संधि से भिन्न है, लेकिन यह विकलांगता निरपेक्ष और कार्य निरपेक्ष, दोनों से संबद्ध है। इसे देखते हुए कि संधि के सफल कार्यान्वयन, अर्थात् किसी एक देश में विकलांग व्यक्तियों के लिए उपलब्ध पुस्तकों को विश्व समुदाय हेतु भागीदारी के लिए इंटरनेट महत्वपूर्ण है, भारत के लिए यह उचित समय है कि वह इंटरनेट संचालन और सूचना समुदायों के व्यापक प्रबंधन के क्षेत्र में अपना प्रभाव बढ़ाए।

स्नोडेन परवर्ती स्थिति में, कथित परिवर्तनशील राष्ट्रों के पास अधिक ऊंचा नैतिक आधार है। इन देशों के लिए यह उचित समय है कि वे सुदृढ़ राजनीतिक इच्छाशक्ति का इस्तेमाल करते हुए इस मुद्दे पर एकजुट हों। दवाओं तक पहुंच के परिप्रेक्ष्य में मैत्रीपूर्ण अधिकार क्षेत्र के लिए प्रयास करने की बजाय भारत के लिए यह उचित समय है कि वह ज्ञान तक व्यापक पहुंच का अधिकार क्षेत्र कायम करने के लिए काम करे। हम विकासशील देशों को सस्ते और नवीन डिजिटल हार्डवेयर (विशेष रूप से मोबाइल फोन) प्रदान करने के लिए पे. टेंट समूहों और अनिवार्य लाइसेंसिंग का इस्तेमाल कर सकते हैं। इससे यह सुनिश्चित हो सकेगा कि अधिकारधारक, आविष्कारक, विनिर्माता, उपभोक्ता और सरकारों सभी को भारत के एक वैश्विक फार्मेसी बनने से परे इलेक्ट्रॉनिक्स स्टोर बनने पर, अधिक लाभ होगा। हम ब्राडबैंड कॉपीराइट उपकर अथवा लेवी जैसे लैट शुल्क लाइसेंसिंग मॉडलों की खोज कर सकते हैं ताकि भारत में सभी इस्तेमालकर्ताओं को कंटेंट अर्थात् विषयवस्तु (सामग्री, चित्र, वीडियो, ऑडियो, गेम और सॉफ्टवेयर) सस्ती दरों पर सुनिश्चित की जा सके और साथ ही अधिकारधारकों के लिए सभी इंटरनेट इस्तेमालकर्ताओं से कुछ रायल्टी की व्यवस्था की जा सके। इससे उन्हें अमरीका द्वारा स्थापित कॉपीराइट प्रवर्तन

बहु-साझेदारीवाद और बहु-पक्षवाद के बीच तनाव का एक हिस्सा यह भी है कि इंटरनेट प्रशासन की कोई एकल, सार्वभौम रूप में स्वीकृत परिभाषा नहीं है। इंटरनेट संचालन की रूढ़िवादी परिभाषाएं महत्वपूर्ण इंटरनेट संसाधनों के प्रबंधन तक सीमित रखती हैं, जिसके अंतर्गत डोमेन नाम प्रणाली, आईपी अड्रेसेज़ और रूट सर्वर्स - दूसरे शब्दों में, आईसीएएनएन, आईएएनए कार्य, क्षेत्रीय रजिस्ट्रीज़ और अन्य आई' निकाय शामिल हैं।

4 रोडमैप फॉर ग्लोबलाइजेशन आईएएनए : 4 सिद्धांत और सुधारों का एक प्रस्ताव : मिल्टन मूलर और ब्रेंडन क्युडबिस द्वारा 3 मार्च, 2014 को इंटरनेट संचालन के भविष्य के बारे में वैश्विक साझेदारों की बैठक में प्रस्तुत। कृपया देखें :
http://www.internetgovernance.org/wordpress/wp-content/uploads/ICANNreformglobalizingIANAfinal.pdf

आधारित सेंसरशिप व्यवस्था को कमज़ोर करने में मदद मिलेगी। जहां तक प्राइवेसी या निजता का प्रश्न है, हम विश्व स्तरीय निजता कानून बना सकते हैं और एक स्वतंत्र एवं स्वायत्त तथा सक्रिय निजता आयुक्त की स्थापना कर सकते हैं जो और सरकारी सेवा प्रदाताओं को संक्षिप्त लीज पर रख सकता है। इसके बाद हमें एक वैज्ञानिक, लक्षित निगरानी व्यवस्था की आवश्यकता होगी जो मानवाधिकार सिद्धांतों के अनुपालन के अनुसार हो। इससे भारत आईपी और निजता की दृष्टि से एक साथ सुरक्षित स्थान होगा और वह निजी क्षेत्र से भारी पूंजी निवेश आकर्षित कर सकेगा तथा वैश्विक सिविल सोसायटी और स्वतंत्र मीडिया का सदभाव अर्जित कर सकेगा। इसे देखते हुए कि सुरक्षा के लिए निजता एक पूर्व शर्त है, इससे भारत साइबर सुरक्षा की दृष्टि से भी अत्यंत सुरक्षित बन सकेगा। निश्चय ही हमारी वर्तमान परिस्थितियों में यह एक आदर्श स्वप्न है लेकिन एक राष्ट्र के रूप में अपनाने के लिए यह हमारे लिए निश्चय ही एक संभव भविष्य है।

इंटरनेट संचालन का क्षेत्र क्या है?

बहु-साझेदारीवाद और बहु-पक्षवाद के बीच तनाव का एक हिस्सा यह भी है कि इंटरनेट प्रशासन की कोई एकल, सार्वभौम रूप में स्वीकृत परिभाषा नहीं है। इंटरनेट संचालन की रूढ़िवादी परिभाषाएं महत्वपूर्ण इंटरनेट संसाधनों के प्रबंधन तक सीमित रखती हैं, जिसके अंतर्गत डोमेन नाम प्रणाली, आईपी अड्रेसेज़ और रूट सर्वर्स - दूसरे शब्दों में, आईसीएएनएन, आईएएनए कार्य, क्षेत्रीय रजिस्ट्रीज़ और अन्य आई' निकाय शामिल हैं। यह ऐसी स्थिति है जहां अमरीकी प्रभुत्व ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वाधिक स्पष्ट है। यह ऐसी स्थिति भी है जहां बहु-साझेदार मॉडल अभी तक स्पष्ट रूप से काम करता रहा है। अत: हमें मौजूदा संचालन प्रबंधों के टूटने के प्रति भी सर्वाधिक ध्यान अवश्य देना होगा। इस संदर्भ में अमरीकी प्रभुत्व को कम करने के लिए मोटेतौर पर 4 दृष्टिकोण हैं - (क) वैश्विकरण अर्थात् मौजूदा बहु-साझेदारी व्यवस्था के भीतर अन्य देशों को अमरीका के समान भूमिका देना (ख) अंतर्राष्ट्रीयकरण (आईसीएएनएन, आईएएनए कार्यों, रजिस्ट्रीज़ और आई' निकायों को संयुक्त राष्ट्र नियंत्रण या निगरानी के अंतर्गत लाना (ग) आईएएनए कार्यों में राष्ट्रों की भूमिका समाप्त करना[4] और (घ) नामों और संख्याओं के प्रबंधन के लिए प्रतिस्पर्धियों की शुरुआत करना।

क्या हमें पूर्व-मानकों-बनाम नामों और संख्याओं के लिए संचालन के विभिन्न क्षेत्रों हेतु बहु-पक्षवाद के अलग-अलग रूपों की आवश्यकता है। आदर्श दृष्टि से इन सवालों का जवाब है नहीं, नहीं, नहीं और हां। मेरे विचार में उपयुक्त वैश्विक संचालन प्रणाली विकेन्द्रीकृत, विविध और बहु-पक्षीय होगी लेकिन साथ ही अंत:प्रचालनीय होगी, जिसमें बहु-पक्षीय और बहु-साझेदारीपूर्ण, दोनों ही तरह के संस्थान और व्यवस्थाएं शामिल होंगी और यह भी कि यह व्यवस्था जनहित के लिए अनियंत्रित और जनहित के लिए ही नियंत्रित भी होंगी।

भले ही यह अंतिम समाधान न हो लेकिन यह सही है कि डोमेन नेम पर जिनका नियंत्रण है और जो आईपी अड्रेस आवंटित करते हैं, वे भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रभावित करेंगे। इसे देखते हुए कि राष्ट्रीय सीमाओं के बीच तीन रूट सर्वर[5] हैं, भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा पर असर पड़ने की आशंका अत्यन्त क्षीण है और अमरीका के लिए यह लगभग असंभव है कि वह भारत में इंटरनेट सुविधा बंद कर दें।

अधिक व्यापक परिभाषा के लिए इंटरनेट संचालन रिपोर्ट[6] से संबद्ध कार्यदल ने सार्वजनिक नीति मुद्दों से संबंधित अपनी रिपोर्ट में निम्नांकित 4 श्रेणियों को उद्धृत किया है, जो इंटरनेट के प्रबंधन से संबंधित हैं :

''(क) मूलभूत ढांचे से संबंधित मुद्दे और डोमेन नेम प्रणाली एवं इंटरनेट प्रोटोकॉल अड्रेसिज (आईपी अड्रेसिज) के संचालन सहित महत्वपूर्ण इंटरनेट संसाधनों का प्रबंधन, रूट सर्वर प्रणाली का संचालन, तकनीकी मानक, समूहीकरण (पीइरिंग) और अंतर-संचार, नवीन और समरूप प्रौद्योगिकियों सहित दूरसंचार ढांचा और विविध भाषीकरण। ये सभी ऐसे मुद्दे हैं जिनका संबंध इंटरनेट के संचालन के साथ है और जो इन मामलों के लिए जिम्मेदार मौजूदा संगठनों के दायरे के अंतर्गत आते हैं;

(ख) इंटरनेट के इस्तेमाल से संबंधित मुद्दे, जिनमें शामिल है स्पैम, नेटवर्क सुरक्षा और साइबर अपराध। ये मुद्दे इंटरनेट के संचालन से सीधे संबंधित हैं, लेकिन इनके लिए अपेक्षित वैश्विक सहयोग का स्वरूप परिभाषित नहीं है;

(ग) ऐसे मुद्दे जो इंटरनेट से संबद्ध हैं लेकिन इंटरनेट से अधिक प्रभाव डालने वाले हैं, और जिनके लिए मौजूदा संगठन जिम्मेदार हैं, बौद्धिक संपदा अधिकार और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार;

(घ) इंटरनेट संचालन के विकासात्मक पहलुओं से संबंधित मुद्दे, विशेषकर विकासशील देशों में क्षमता निर्माण संबंधित मुद्दे।''

5. मुम्बई (आई रूट), दिल्ली (के रूट) और चेन्नई (एफ रूट) देखें
http://nixi.in/en/component/content/article/36-other-activities-/77-root-servers

6. इंटरनेट संचालन संबंधी कार्य-दल की रिपोर्ट जो विश्व सूचना समाज सम्मेलन की तैयारी समिति के अध्यक्ष, ऐम्बेस्डर जैनिस कार्कलिन्स और डब्ल्यूएसआईएस के महा सचिव श्री योशिओ उत्सुमी को सौंपी गई थी : 14 जुलाई, 2005 देखें :
http://www.wgig.org/WGIG-Report.html

7. मैसेजिंग, मालवेयर, और मोबाइल एंटी-अब्यूज वर्किंग ग्रुप की वेबसाइट देखें : http://www.maawg.org/

इनमें से कुछ श्रेणियों का समाधान राष्ट्रीय कानून के जरिये किया जाता है जो संयुक्त-राष्ट्र से संबद्ध बहुराष्ट्रीय संस्थानों से पैदा होती हैं जैसे 'बौद्धिक संपदा अधिकारों' से संबद्ध अंतर्राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा संगठन और दूरसंचार ढांचे से संबद्ध अंतर्राष्ट्रीय दूरसंचार संघ। अन्य नीतिगत मुद्दे जैसे 'साइबर अपराधों' का समाधान वर्तमान में बहु-पक्षीय समझौतों द्वारा किया जाता है। उदाहरण के लिए साइबर अपराधों के बारे में बुडापेस्ट सम्मेलन और द्विपक्षीय समझौते जैसे परस्पर कानूनी सहायता संधियां। 'स्पैम' का संचालन फिलहाल निजी क्षेत्र द्वारा आत्म-नियामक प्रयासों के जरिये किया जा रहा है, जैसे- मैसेजिंग, मालवेयर, और मोबाइल एंटी-अब्यूज वर्किंग ग्रुप[7]। अन्य क्षेत्रों, जिनमें पर्याप्त अंतर्राष्ट्रीय या वैश्विक सहयोग नहीं है, के अंतर्गत 'समूहीकरण (पीइरिंग) और अंतर-संचार' शामिल हैं। इन क्षेत्रों में निजी व्यवस्थाएं गोपनीय हैं और यह स्पष्ट नहीं है कि जन-हितों की रक्षा भलीभांति की गई है या नहीं।

ऐसे में यह प्रश्न विद्यमान है कि आखिर इंटरनेट को कौन संचालित करता है ?

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि इंटरनेट को कौन संचालित करे या मुद्दा इतना महत्पूर्ण नहीं है। ऐसा इसलिए है कि वास्तव में इंटरनेट को कोई भी स्वत: संचालित नहीं करता है। इंटरनेट मानकों, प्रौद्योगिकियों और कार्यकर्ताओं का एक व्यापक संग्रह है जो दिलचस्प तरीके से विभिन्न परतों, भौगोलिक स्थानों और सेवाओं की दृष्टि से अत्यन्त विविध है। इंटरनेट के विभिन्न कर्ताओं में सरकारें, निजी क्षेत्र, सिविल सोसायटी और तकनीकी एवं शैक्षिक समुदाय शामिल हैं, जो पहले से ही विभिन्न मंचों और शासन व्यवस्थाओं द्वारा विनियमित हैं जैसे स्वनियमन, सह-नियमन और सरकारी नियमन। क्या अधिक नियमन हमेशा सही उत्तर हो सकता है? क्या हमें बहु-पक्षवाद और बहु-साझेदारीवाद में से एक को चुनना है। क्या हमें प्रक्रिया संबंधी अधिक स्थिर परिभाषाओं की आवश्यकता है। क्या हमें पूर्व-मानकों-बनाम नामों और संख्याओं के लिए संचालन के विभिन्न क्षेत्रों हेतु बहु-पक्षवाद के अलग-अलग रूपों की आवश्यकता है। आदर्श दृष्टि से इन सवालों का जवाब है नहीं, नहीं, नहीं और हां। मेरे विचार में उपयुक्त वैश्विक संचालन प्रणाली विकेन्द्रीकृत, विविध और बहु-पक्षीय होगी लेकिन साथ ही अंत:प्रचालनीय होगी, जिसमें बहु-पक्षीय और बहु-साझेदारीपूर्ण, दोनों ही तरह के संस्थान और व्यवस्थाएं शामिल होंगी और यह भी कि यह व्यवस्था जनहित के लिए अनियंत्रित और जनहित के लिए ही नियंत्रित भी होंगी। ❑

(लेखक सेटर फॉर इंटरनेट एंड सोसाइटी के कार्यकारी निदेशक हैं।
ई-मेल : sunil@cis.india.org)

योजना अब फेसबुक पर

आपकी लोकप्रिय पत्रिका योजना अब फेसबुक पर Yojana Journal नाम से पृष्ठ के साथ मौजूद है। हमारे फेसबुक पृष्ठ पर आएं और हमारी गतिविधियों तथा आगामी अंकों के बारे में ताज़ी जानकारी प्राप्त करें।

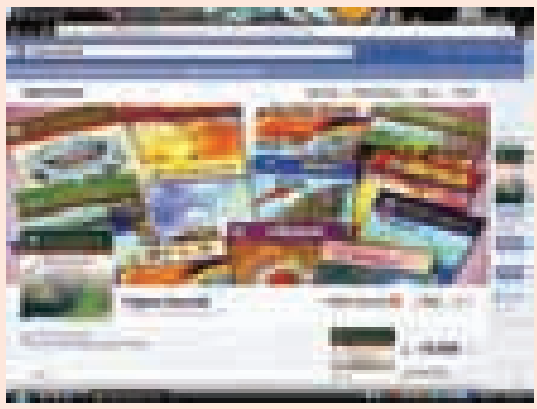

हमारा पत्ता : http://www.facebook.com/Pages/Yojana-Journal/181785378644304?ref-hL
फेसबुक पर हमसे मिलें, Like करें और अपने बहुमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराएं।

Career Launcher News www.careerlauncher.com/civils

CAREER LAUNCHER

सिविल सेवा अभ्यर्थी

Test Series Notice No. 00/2014 - 15 March 2014

सिविल सेवा (प्रारंभिक) परीक्षा, 2014

13* बार आयोजित की जाएगी

यदि आप CL की टेस्ट सीरीज़ में भाग लेते हैं तो यह आपके लिए बिल्कुल सच है। CL से जुड़ने का सबसे बड़ा लाभ यह है कि आपको हूबहू प्रारंभिक परीक्षा जैसा अनुभव प्राप्त करने के 12 अवसर प्राप्त होंगे जबकि अन्य संस्थान यह अवसर मात्र 2 या 3 बार प्रदान करते हैं। CL की टेस्ट सीरीज़ से आप के लिए प्रारंभिक परीक्षा अत्यंत सरल हो जाएगी और आपको ऐसा प्रतीत होगा कि आप 13वाँ मॉक टेस्ट दे रहे हैं। CL की टेस्ट सीरीज़ के अन्य लाभ निम्नलिखित हैं:

	UPSC	CL	अन्य
1. संपूर्ण भारत में आयोजन	✓	✓	×
2. 10,000 से अधिक अभ्यर्थी	✓	✓	×
3. सामान्य अध्ययन I & II एक ही दिन	✓	✓	×
4. हिंदी एवं अंग्रेज़ी दोनो भाषाओं में प्रश्न पत्र	✓	✓	×
5. ओएमआर शीट	✓	✓	×
6. स्कूलों में परीक्षा	✓	✓	×
7. ऑल इंडिया रैंक	×	✓	×
8. टेस्ट परिचर्चा	×	✓	×
9. पर्सनल फीडबैक	×	✓	×
10. टेस्ट के तुरंत बाद प्रश्न पत्र का हल	×	✓	✓

सिविल सेवा प्रारंभिक परीक्षा में CL के अभ्यर्थियों की सफलता की दर 6# गुना अधिक है

30.07%
CL के अभ्यर्थियों की सफलता की दर

4.7%
अन्य अभ्यर्थियों की सफलता की औसत दर

23 मार्च 2014 से टेस्ट सीरीज़ प्रारंभ
प्रधान परीक्षा 2012 एवं प्रारंभिक परीक्षा 2013 में सफल अभ्यर्थियों के लिए विशेष ऑफर

CL के 742 अभ्यर्थी सिविल सेवा प्रधान परीक्षा, 2013 के लिए योग्य पाये गये

*CL के 12 मॉक टेस्ट +1 UPSC की असली सिविल सेवा प्रारंभिक परीक्षा

#हमारे पास उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर

CL | Civil Services Test Prep
www.careerlauncher.com/civils
/CLRocks

कक्षाओं के लिए नए बैच शीघ्र प्रारंभ, विस्तृत जानकारी के लिए कृपया निकटतम् CL सेंटर पर संपर्क करें

मुखर्जी नगर: 204/216, द्वितीय तल, विराट भवन/एमटीएनएल बिल्डिंग, पोस्ट ऑफिस के सामने, फोन - 41415241/46
ओल्ड राजेन्द्र नगर: 18/1, प्रथम तल, अग्रवाल स्वीट कॉर्नर के सामने, फोन - 42375128/29
बेर सराय: 61बी, ओल्ड जे. एन. यू. कैम्पस के सामने, जवाहर बुक डिपो के पीछे, फोन - 26566616/17
साउथ कैम्पस: 283, प्रथम तल, वेकेटेश्वरा कॉलेज के सामने, सत्या निकेतन, फोन - 24103121/39

अहमदाबाद: 2656061 | इलाहाबाद: (0)9956130010 | बंगलुरू: 41505590 | भोपाल: 4093447 | भुवनेश्वर: 2542322 | चंडीगढ़: 4000666 | चेन्नई: 28154725
हैदराबाद: 66254100 | इन्दौर: 4244300 | जयपुर: 4054623 | लखनऊ: 4108009 | नागपुर: 6464666 | पटना: 2678155 | पुणे: 32502168

YH - 297/2013

भारत में जल-प्रबंधन की सर्वांगीण विफलता अस्तित्व संबंधी चुनौतियां

जितेन्द्र कुमार पाण्डेय

जल प्रदूषण नियंत्रण संबंधी शासन प्रणाली में भी जन सहभागिता के जरिये नीतियां और कानून के पालन को ज्यादा कारगर बनाने की आवश्यकता है। इसके साथ-साथ सतही तथा भूजल को प्रदूषित करने वाले व्यक्ति समूह या कंपनी के ख़िलाफ़ जुर्माने के अलावा कड़ी सजा का प्रावधान हो। जन सहभागिता तथा जनजागरण के जरिये कम शासकीय लागत में जल प्रदूषण कानून का अनुपालन सुनिश्चित किया जा सकता है

आर्थिक परिप्रेक्ष्य में बाज़ार विफलता के दृष्टांत अनेक हैं। इसके कई आसार हैं- जैसे आवश्यक वस्तुओं पर एकाधिकारी नियंत्रण, सार्वजनिक वस्तुओं की अत्यल्प पूर्ति सार्वजनिक संसाधनों का अत्यधिक शोषण एवं विनाश आदि। भारत में जल क्षेत्र में इन बाज़ार विफलताओं के अलावा अन्य गहन असंतुलन हमारी सामाजिक, आर्थिक एवं नैसर्गिक असित्व का गला घोंटने की स्थिति में है और नीति निर्माण के तल पर गहरी नींद की-सी अवस्था है। जबकि बाज़ार विफलता का निवारण शासकीय विनियमन में स्थित समझा जाता रहा है। भारत में जल-प्रबंधन के क्षेत्र में शासन प्रणाली भी विफल-सी दिखती है। इस दोहरी विफलता के कारण भारतीय जल क्षेत्र में मल्टीपल ऑरगेन फेलियर की स्थिति है, जिसका दूरगामी प्रभाव न सिर्फ़ अर्थव्यवस्था पर बल्कि जल-चक्र संतुलन पर, पर्यावरण संतुलन पर गहरा है। सतही जल तथा भूजल का घटता स्तर, इनका जैविक एवं रासायनिक प्रदूषण तथा विषाक्तता, क्रमिक मरुस्थलीकरण, बाढ़ तथा जल संकट का गहराता प्रकोप जल स्तर के क्षेत्र की विफलताएं महाकाय हैं।

मीठे जल संबंधी समस्याओं का मूल स्तर पर संबंध मानव जाति के बहुत तेज़ी से बढ़ते उपभोग स्तर से है। जहां एक ओर पृथ्वी पर जनसंख्या सात अरब के पार है, वर्धमान है, मध्यम वर्ग की बढ़ती आय तथा जीवन स्तर के कारण मानव जाति ज्यादा से ज्यादा उपभोग की ओर प्रवृत्त है। उपभोग तथा पूर्ति के इस चक्र से जहां एक ओर वित्तीय तौर पर मध्यम वर्ग समृद्धि की ओर अग्रसर है, ठीक इसके विपरीत दिशा में वास्तविक एवं प्राकृतिक संसाधनों का अवहनीय तौर पर दोहन किया जा रहा है। प्राकृतिक संसाधनों के दोहन और विनाश की सूची में जल-संसाधन सबसे ऊपर है।

जल-संसाधनों से संबंधित मालिकाना अधिकारों में स्पष्टता की कमी तथा भ्रम के कारण, संघीय ढांचे में जल-संसाधनों से संबंधित दीर्घकालिक दूरदर्शिता की कमी के कारण, आधुनिक भारतीय समाज में जल के प्रति पारंपरिक श्रद्धा के लोप के कारण, कृषि तथा औद्योगिक तकनीक के रासायनिक तीव्रता के कारण, औद्योगिक तथा शहरी क्षेत्र में जल पुनर्चक्रण तथा दूषित-जल शोधन में निवेश नगण्य होने के कारण आज हमारे ज्यादातर जल-संसाधन अपर्याप्त तथा विषाक्त हो गए हैं। जल क्षेत्र का यह संकट अपने अग्रिम चरण में है।

मीठे जल के अवहनीय दोहन के बड़े दोषी है क्रमशः अपव्ययी सिंचाई तकनीक (89%), शहरी उपभोग (7%) औद्योगिक क्षेत्र (4%) । जल व्यय के यह आंकड़े जितना बताते हैं उससे ज्यादा छिपाते हैं। उपरोक्त तीनों क्षेत्रों में प्रयुक्त जल का रासायनिक एवं माइक्रो बायोलॉजिकल प्रदूषण तथा प्रयुक्त जल का जलचक्र में सुरक्षित वापसी से संबंधित संघात (इमपैक्ट) अलग-अलग हैं। जहां एक ओर कृषि में प्रयुक्त पानी रिसकर तथा वाष्पोत्सर्जन के जरिये जलचक्र में वापस समाहित हो जाता है, वहीं शहरी और औद्योगिक क्षेत्र में प्रयुक्त जल तथा भू-जल को अपरिवर्तनीय तौर पर विषाक्त करता है। यहां थोड़ा ध्यान देने की जरूरत है जहां जल की मात्रात्मक समस्या वाटरशेड प्रबंधन एवं आयोजन के स्तर पर पलटनीय (रिवर्सेवल) है वहीं शहरी एवं औद्योगिक क्षेत्र में जनित जल विषाक्ता अपलटनीय (इरिवर्सेवल) है। इसलिए जल संसाधन के क्षेत्र में असली समस्या जल की प्रयुक्त मात्रा के साथ-साथ जल प्रयोग का

पर्यावरणीय संघात है। मात्रात्मक तौर पर भारत जल से परिपूर्ण है। भारत में विश्व का 2.5 प्रतिशत भूमि तथा विश्व का 4 प्रतिशत मीठा जल है। पर इस जल की गुणवत्ता का ह्रास बहुत तेज़ी से हो रहा है तथा वाटरशेड प्रबंधन नगण्य होने के कारण जल की इस मात्रा का उचित इस्तेमाल नहीं हो पा रहा है तथा मिट्टी की गुणवत्ता का तेज़ी से ह्रास हो रहा है।

जल-संसाधनों के अवहनीय उच्च संघात इस्तेमाल में हमारी सरकारी नीतियां जिम्मेदार रहीं हैं। उदाहरण के तौर पर कृषि को मुफ्त या सब्सिडीयुक्त बिजली मुहैया कराना, वाटरशेड प्रबंधन की दीर्घकालीन उपेक्षा, कृषि तथा उद्योग द्वारा भू-जल निचोड़ पर अनियंत्रण, शहरी, घरेलू एवं औद्योगिक अति दूषित जल का अशोधित रूप में नदियों तथा भू-जल में विसर्जन की दीर्घकालीन सुविधा, औद्योगिक क्षेत्र द्वारा जनति प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए अपर्याप्त शासन-प्रणाली, लोक स्वास्थ्य को निम्न प्राथमिकता, जल संरक्षण तथा प्रदूषण नियंत्रण में पारंपरिक तथा जनतांत्रिक संस्थाओं की भागीदारी के बजाय अनुत्तरदायी दफ्तरशाही को सशक्त करना, भू-जल माफिया को व्यावसायिक आज़ादी देना, बॉटलिंग उद्योग को प्रायः मुफ्त भू-जल इस्तेमाल करने की आज़ादी, शुष्क-कृषि, जैव-कृषि, रसायन-मुक्त कृषि में शोध की उपेक्षा आदि अधिकांश कानूनी एवं संस्थागत प्रावधान जैसे कि जल-प्रदूषण अधिनियम, केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, गंगा एक्शन प्लान, यमुना एक्शन प्लान आदि कागज़ी शेर हैं।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि कुशल सतही-जल प्रबंधन की दशा में भू-जल से संबधित समस्या स्वतः ही लुप्त हो जाएगी। सतही जल का आईडब्ल्यूआरएम (एकीकृत जल संसाधन प्रबंधन) गाइडलाइन के तहत प्रबंधन करने पर जहां एक ओर भूजल की मांग नियंत्रित होगी वहीं उसकी पुनर्भरण भी भरपूर हो सकती है।

सतही तथा भूजल के मालिक़ाना अधिकार में नीति स्पष्ट करने की तथा इन्हें कड़ाई से लागू करने की आवश्यकता है। भूजल, नदियां, झरनों, झीलों, सार्वजनिक तालाबों, पोखरों आदि की कानूनी परिभाषा सार्वजनिक संसाधनों की भांति हो तथा राज्य इनके संरक्षण की भूमिका निभाये। इन सार्वजनिक संसाधनों के प्रबंधन, जन-सहभागिता तथा जन-जागरण के बिना किसी भी राष्ट्र में असंभव है। आधुनिक सामाजिक व्यवस्था में राज्य लगातार मज़बूत हुआ है पर सार्वजनिक संसाधनों के प्रबंधन में राजकीय प्रशासन के अकुशल, अनुत्तरदायी, भ्रष्ट तथा स्थानीय परिस्थितियों से अनभिज्ञ होने की संभावना है। जनजागरण तथा जन सहभागिता से सार्वजनिक संसाधनों का प्रबंधन कुशल तथा जिम्मेदार हो सकता है। भारत में भी स्थानीय स्तर पर इसके कई सफल उदाहरण वाटरशेड प्रबंधन तथा अन्य सार्वजनिक संसाधनों के प्रबंधन में देखने को मिलते हैं। इसके विपरीत, गैर-सहभागिता से युक्त राजकीय वाटरशेड प्रबंधन प्रायः असफल रहे हैं। निजी क्षेत्रों में इस दिशा में कोशिश न के बराबर है। निजी क्षेत्र सार्वजनिक संसाधनों के संवर्धन के बजाय उनके शोषण में लिप्त हैं। इस कारण से हम समझ सकते हैं कि विश्व में जन-संसाधनों के निजीकरण की ज्यादातर कोशिशें क्यों असफल रही हैं।

सतही तथा भूजल के मालिक़ाना अधिकार में नीति स्पष्ट करने की तथा इन्हें कड़ाई से लागू करने की आवश्यकता है। भूजल, नदियां, झरनों, झीलों, सार्वजनिक तालाबों, पोखरों आदि की कानूनी परिभाषा सार्वजनिक संसाधनों की भांति हो तथा राज्य इनके संरक्षण की भूमिका निभाये। इन सार्वजनिक संसाधनों के प्रबंधन, जन-सहभागिता तथा जन-जागरण के बिना किसी भी राष्ट्र में असंभव है।

जल प्रदूषण नियंत्रण संबंधी शासन प्रणाली में भी जन सहभागिता के जरिये नीतियां और कानून के पालन को ज्यादा कारगर बनाने की आवश्यकता है। इसके साथ-साथ सतही तथा भूजल को प्रदूषित करने वाले व्यक्ति समूह या कंपनी के ख़िलाफ़ जुर्माने के अलावा कड़ी सजा का प्रावधान हो। जन सहभागिता तथा जनजागरण के जरिये कम शासकीय लागत में जल प्रदूषण कानून का अनुपालन सुनिश्चित किया जा सकता है।

यह जरूरी है कि जल-संसाधनों के उपयोग संबंधित नीति में पर्यावरण उद्देश्यों को आर्थिक उपयोगों से ज्यादा प्राथमिकता मिले। कृषि तथा सार्वजनिक उपयोगों को औद्योगिक उपयोगों से ज्यादा प्राथमिकता मिले। शहरीकरण के आयोजन संबंधी नीतियों में स्थानीय तथा वहनीय जल उपलब्धता को नज़रअंदाज न किया जाए। न सिर्फ़ कृषि बल्कि शहरीकरण की प्रक्रिया को भी वाटरशेड प्रबंधन के साथ किया जाए। यह भी जरूरी है कि जल प्रयोग की पात्रता को जल-संरक्षण की चेष्टा से संबद्ध किया जाए। व्यावसायिक औद्योगिक तथा शहरी क्षेत्रों में इस तरह की नीति आसानी से अपनायी जा सकती है।

कृषि क्षेत्र में भी स्थानीय समुदायों को तकनीकी सहायता एवं वित्तीय सहायता के जरिये जल सरंक्षण ढांचे बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। बिजली तथा बोरवेल सब्सिडी बंद करने पर जल सरंक्षण को प्रोत्साहन मिलने की संभावना है। कुशल जल सरंक्षण ढांचों से जल की उपलब्धता बढ़ाई जा सकती है तथा कृषि ऊर्जा-सघनता कम की जा सकती है। इसके अलावा भू-क्षरण, पेयजल की आपूर्ति, भू-जल स्तर में गिराव का व्युत्क्रमण, बाढ़ नियंत्रण का स्थानीय तथा अवस्थिति (इन सीटू) समाधान जल सरंक्षण ढांचों से संभव है। खास बात यह है कि जल-सरंक्षण में प्रयुक्त तकनीकें अति सरल एवं पारंपरिक हैं जिनके क्रियान्वयन में तकनीकी बाधाएं नहीं है। क्षेत्र के स्थलाकृति (टोपोग्राफी) के हिसाब से उपयुक्त स्थानों पर रिचार्ज- गढ्ढे, पुश्ता, बांध, हौदी, कंटूर-ट्रेंच, वृक्षारोपण, छत वर्षाजल एकत्रण ढांचे बनाना सरल है, सुगम है। वर्षाजल संरक्षण तथा एकत्रीकरण उन सभी क्षेत्रों में अनिवार्य किया जाना चाहिए जहां-जहां भू-जल पुनर्भरण का प्राकृतिक चक्र बाधित हो गया है।

समस्या कहां है?

जल संरक्षण द्वारा तकनीकी स्तर पर जब समाधान इतना सरल प्रतीत होता है तब जल संकट इतना गहरा और जटिल क्यों है? आधुनिक समाज में अनुदार-आत्महिता तथा समुदाय बोध में हो रहे ह्रास के कारण, आर्थिक निणर्यों में दूरदर्शिता के लोप के कारण, स्थानीय लोक-शासन के संस्थाओं के कमज़ोर या अनुत्तरदायी होने के कारण जल समस्या हमारे हाथ से निकलती जा रही है। जल-संरक्षण के कई ढांचों का लाभ न

सिर्फ निवेशकर्ता बल्कि कमोवेश पूरे समुदाय को हो सकता है। इस घनात्मक बाह्यता के कारण अनुदार-आत्महित के माहौल में ऐसे निवेश आसानी से नहीं अपनायें जाते। जल संरक्षण की दिशा में सामुदायिक सहभागिता तथा सब्सिडी की विशेष आवश्यकता है। पूर्तिपक्ष की यह विफलताएं समस्या का एक पक्ष हैं।

समस्या का दूसरा कारण आधुनिक अर्थव्यस्थाओं में जल के मांग से संबंधित है तथा उपभोग प्रयत्न दूषित जल के परिशोधन एवं निष्कासन से संबधित है। इसलिए बिना जल के मांग पर ध्यान दिए जल-संकट का निदान पूरा नहीं हो सकता।

मांग पक्ष में हमें यह समझने की जरूरत है कि जल सिर्फ़ एक आर्थिक वस्तु नहीं वरन् व्यक्तिगत तथा सामुदायिक स्तर पर यह मानवाधिकार की वस्तु है। इसका तात्पर्य यह है कि मानव जरूरतों के लिए जल के एक न्यूनतम मात्रा की हक़दारी व्यक्ति या समुदाय के क्रयशक्ति से असंबद्ध होना आवश्यक है। जहां बुनियादी मानव ज़रूरतों के लिए मुफ्त जल पात्रता एक मानवाधिकार होना चाहिए। वहीं बुनियादी ज़रूरतों के ऊपर जल के उपयोग पर राशनिंग नियंत्रण भी एक महत्वपूर्ण पक्ष है। बुनियादी अथवा गैर-बुनियादी ज़रूरतों के लिए जल के बाज़ारीकरण का तर्क भी कई बार सामने आता है। यहां यह ध्यान देने की जरूरत है कि अल्पकालिक लाभ से प्रवृत्ति बाज़ार-व्यवस्था जलापूर्ति का समाधान वहनीय तरीके से करने में सक्षम नहीं दिखती। पेयजल बॉटलिंग उद्योग इसका एक उदाहरण है जहां लाभ की मात्रा का सीधा संबंध पेयजल संकट से है तथा यह उद्योग जल संरक्षण के विपरीत है। इस उद्योग के कारण विश्व के कई क्षेत्रों का क्रमिक मरूस्थलीकरण अत्यंत तीव्रता से हो रहा है।

जल जैसे महत्वपूर्ण संसाधनों का अपवयी प्रयोग किसी भी समाज के लिए आत्मघाती है। विश्व के ज्यादातर भागों में जल के अपवयी मांग पर नियंत्रण कमज़ोर है। मांग-पक्ष के इस विफलता का समाधान अकसर पूर्ति-पक्ष से करने की चेष्टा होती है जिससे जल संकट और भी गहराता है तथा जलापूर्ति के लिए जल को लंबी दूरी तक पहुंचाने के वृहद् कार्यक्रम अपनाये जाते हैं जिनका पर्यावरणीय प्रभाव गहरा होता है और नदियों की अविरल धारा भंग होती है। इसके अलावा ऐसे कार्यक्रम अति पूंजी-सघन होते हैं और सामाजिक विस्थापन पैदा करते हैं।

यह भी गौर करने योग्य है कि मीठा जल एक नवीकरणीय संसाधन है। किंतु शहरी तथा औद्योगिक जल-उपभोग का स्वरूप ऐसा है कि प्रदूषण के माध्यम से प्रयुक्त जल की नवीकरणीयता भंग होती है। जल की गुणवत्ता के संबंध में औद्योगिक तथा शहरी जल उपभोग जल-चक्र की सबसे कमजोर कड़ी है। शहरी तथा औद्योगिक क्षेत्र लगातार साफ मीठे जल के आयात तथा अशोधित दूषित जल के निर्यात के कुचक्र को गहन कर रहे हैं। इसलिए सीवेज ट्रीटमेंट को स्थानीय स्तर पर ही अपनाने का अनिवार्य प्रावधान कानूनी तौर पर किया जाए तथा किसी भी व्यवसाय, संस्थान या शहर को प्रदूषित जल का अन्य क्षेत्रों में या भू-जल में निर्यात करने पर पूर्ण रोक हो।

उपभोग और सवृंद्धि के वर्तमान प्रक्षेप-पथ वहनीय नहीं है। इस मूल स्तर पर पुनर्विचार के बिना जल-प्रबंधन की योजनाएं कामयाब नहीं हो सकती। दफ्तरशाही तथा राजनीतिक स्तर पर ऐसे मूलभूत सुधारों का समय नहीं है। भारतीय जनतंत्र में ऐसे मूलभूत सुधार की शुरुआत आपात संकट और जनाक्रोश से ही जनित होती है। भारतीय संदर्भ में जन-जागरुकता तथा जल-जागरुकता समस्या के समाधान में पहली कड़ी है।

भारतीय जल-क्षेत्र में मुख्य चुनौतियां हैं उचित भू-जल शासन, वृहत सिंचाई प्रोजेक्ट, पर्यावरण प्रबंधन चुनौतियां, जल-प्रदूषण, बाढ़ और सूखा, जल वितरण तथा इक्विटी, भ्रष्टाचार-सरकारी एवं निजी, शहरी जलापूर्ति तथा जल प्रशोधन, खाद्य उत्पादन आदि। इन चुनौतियों की तीव्रता तथा जटिलता लगातार बढ़ रही हैं। इस परिपेक्ष्य में यह बहुत जरूरी है कि जनतांत्रिक संस्थाएं जैसे कि संसद, दफ्तरशाही, न्यायपालिका, मीडिया सिविल सोसायटी, शैक्षणिक समुदाय कैसे इस महत्वपूर्ण क्षेत्र पर अपना दृष्टिकोण विस्तारपूर्वक रखते हैं। भारत में जल प्रबंधन पर कार्य कर रही संस्थाओं की बहुलता तथा विविधता तब तक ही एक समस्या है जब तक उनकी कार्यपद्धति पृथक, अपारदर्शी, असमन्वित तथा गैर-सहभागी हैं।

जल संबंधी नीति निर्माण में मूल स्तर के सुधार अभी हमारे शासन प्रणाली द्वारा संजीदगी से नहीं लिए गए हैं। जिसके कारण कार्यक्रम वहनीय नहीं हैं। साथ ही जल क्षेत्र से संबंधित आंकड़ों की गुणवत्ता तथा समय पर उपलब्धता एक समस्या है। जिसके कारण कार्यक्रमों को उचित रूपरेखा नहीं मिल पाता।

सार्वजनिक उद्देश्य के ज्यादातर कार्यक्रम/परियोजना के बारे में गोपनीयता का आवरण होता है। इनके पर्यावरणीय तथा सामाजिक संघात की चर्चा अतिसीमित तथा अधूरी होती है। इस कारण कई परियोजनाएं स्थानीय प्रतिरोध का सामना करते हैं। अक्सर स्थानीय समुदायों का कार्यक्रमों तथा परियोजनाएं के निर्णय में, निगरानी में, परिचालन में कोई सहभागिता नहीं होती। इसके कारण अनुपयुक्त कार्यक्रमों का अपनाया जाना, अत्यधिक विस्थापन, ऊंची परियोजना लागत, कार्यक्रमों की उचित निगरानी का अभाव, कार्यान्वयन में देरी आदि कई समस्याएं कार्यक्रमों को विफल करती हैं।

जल संबंधी आंकड़े, सिंचाई संबंधी आंकड़ें, मल्टी-पर्पस परियोजनाएं द्वारा जल आवंटन के आंकड़े, यह सभी संदेह के घेरे में हैं तथा विश्वसनीय नहीं हैं। कार्यक्रमों का निष्पादन-मूल्याकंन विश्वसनीय तरीके से नहीं होता, जल आवंटन का अंतर अविकसित है, जवाबदेह नहीं है।

उपभोग और सवृंद्धि के वर्तमान प्रक्षेप-पथ वहनीय नहीं है। इस मूल स्तर पर पुनर्विचार के बिना जल-प्रबंधन की योजनाएं कामयाब नहीं हो सकती। दफ्तरशाही तथा राजनीतिक स्तर पर ऐसे मूलभूत सुधारों का समय नहीं है। भारतीय जनतंत्र में ऐसे मूलभूत सुधार की शुरुआत आपात संकट और जनाक्रोश से ही जनित होती है। भारतीय संदर्भ में जन-जागरुकता तथा जल-जागरुकता समस्या के समाधान में पहली कड़ी है। ❑

(लेखक स्वामी श्रद्धानंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, में सहायक प्राध्यापक हैं। ई-मेल: pandeyjeet@yahoo.com **)**

संघ/राज्य लोक सेवा आयोग (प्रारम्भिक) परीक्षा हेतु

प्रथम प्रश्न-पत्र

1523 सिविल सेवा प्रा. परीक्षा सामान्य अध्ययन
1524 सिविल सेवा प्रा. परीक्षा सामान्य अध्ययनः हल प्रश्न–पत्र
847 भारत का इतिहास एवं भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन
849 भारतीय राजव्यवस्था एवं भारत का संविधान
A1076 भूगोल
850 विश्व एवं भारत का भूगोल
A1091 भारतीय अर्थव्यवस्था
851 भारतीय अर्थव्यवस्था
A1089 सामान्य विज्ञान
853 सामान्य विज्ञान
172 भारतीय कला एवं संस्कृति
A1090 पारिस्थितिकी, पर्यावरण, जैव–विविधता एवं विज्ञान–प्रौद्योगिकी
1393 सिविल सेवा प्रा. परीक्षा सामान्य अध्ययनः प्रैक्टिस वर्क-बुक

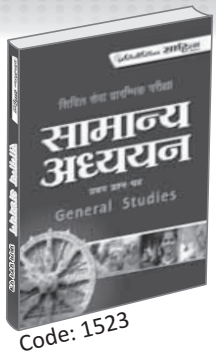

Code: 1523

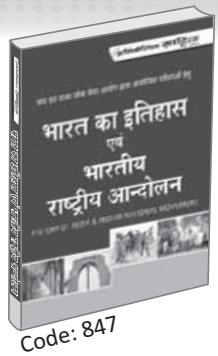

Code: 847

द्वितीय प्रश्न-पत्र

A1077 सिविल सर्विसेज एप्टीट्यूड टेस्ट
A1080 तार्किक एवं विश्लेषणात्मक योग्यता
A1078 समंक व्याख्या एवं पर्याप्तता
A1096 मौलिक आंकिक योग्यता
852 सामान्य मानसिक योग्यता
766 सामान्य बुद्धि एवं तर्कशक्ति परीक्षण
A723 तर्कशक्ति परीक्षण
A939 सामान्य बुद्धि एवं तर्क परीक्षण

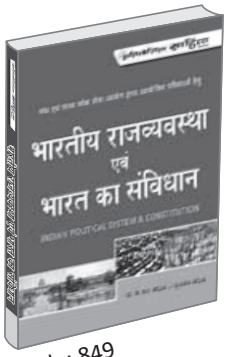

Code: 849

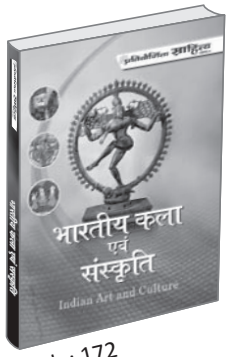

Code: 172

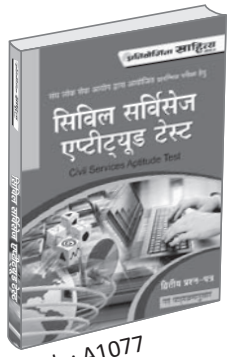

Code: A1077

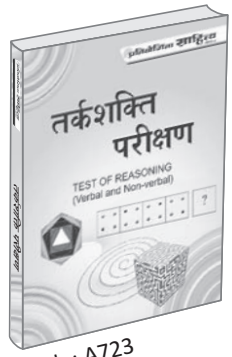

Code: A723

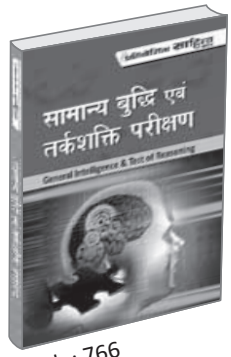

Code: 766

मुख्य परीक्षा हेतु

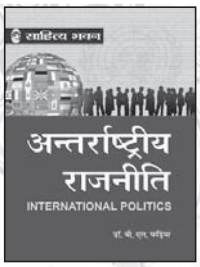

Code: 057

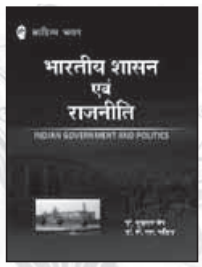

Code: 085

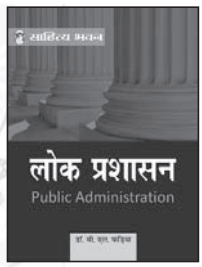

Code: 059

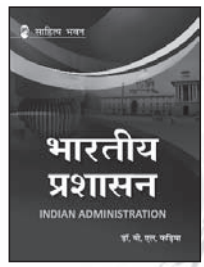

Code: 1333

Code: 096

Code: 298

प्रतियोगिता साहित्य सीरीज

For More information Call : +91 89585 00222 info@psagra.in www.psagra.in

YH - 287/2013

भारत का आर्थिक विकास
उपलब्धियां और संभावनाएं

रवींद्र एच. ढोलकिया

शानदार और तेज़ आर्थिक विकास और उद्यमशीलता तथा उपभोग की विविधता के लिए व्यापक स्तर पर अनुसंधान और विकास की जरूरत होगी। इसके लिए गुणवत्तायुक्त और कुशल मानव संसाधन विकास रणनीति की आवश्यकता है। इसमें कारोबारी उद्यम, एक उच्च स्थिति बनाने और बनाएं रखना, श्रम उत्पादकता की तेज़ वृद्धि दर, तकनीकी सुधार और विशेष उत्पादों पर जोर मुख्य तत्व होंगे। यह अर्थव्यवस्था के हित में होगा कि निजी क्षेत्र की भागीदारी पर भरोसा किया जाए और जोर दिया जाए

किसी भी अर्थव्यस्था के आर्थिक विकास का सबसे अधिक सर्वमान्य संकेतक तय भौगोलिक सीमा के भीतर और निश्चित अवधि में मूल्यों पर आधारित वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की औसत सालाना वृद्धि होती है। इसके बाद यह इस अवधि के दौरान अर्थव्यस्था में घरेलू स्तर पर उत्पादित की गई सेवा और वस्तुओं की उपलब्धता के रूप में दिखाई देती है। जब वास्तविक जीडीपी की वृद्धि को जनसंख्या में वृद्धि के परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है तो यह औसत सालाना प्रतिव्यक्ति वास्तविक जीडीपी में वृद्धि के रूप होगी और एक समय विशेष में देश के निवासियों के जीवन के स्तर में सुधार के रूप में परिलक्षित होगी। यह तथ्य उन बड़े देशों की अर्थव्यवस्थाओं पर विशेष रूप से लागू होता है जहां उनकी भौगोलिक सीमा के भीतर उत्पादन, सीमा पार से आने वाली सेवाओं और वस्तुओं की तुलना में बहुत अधिक होता है।

भारत में आर्थिक विकास का इतिहास बहुत रुचिपूर्ण और शिक्षापरक है। देश में वास्तविक जीडीपी के अनुमानों का सार्थक तुलनात्मक अध्ययन वर्ष 1900 से किया जा सकता है। शिव सुब्रह्मण्यम 2004 और हाटेकर एंड डोंगरे 2005 । भारत के आर्थिक विकास के इतिहास के लंबे काल में देश की अर्थव्यवस्था की उपलब्धियों के आकलन के लिए विभिन्न कालखंडों का निर्धारण करने के लिए उल्लेखनीय विश्लेषण किए गए हैं। हाटेकर एंड डोंगरे 2005, बालाकृष्णन एंड परमेश्वरम् 2007, और ढोलकिया 2014। इनके अनुसार भारत के आर्थिक विकास के इतिहास को पांच महत्वपूर्ण कालखंडों में विभाजित किया जा सकता है: 1. 1900-1901 से 1950-51 तक, 2. 1950-51 से 1980-81 तक, 3. 1980-81 से 1991-1992 तक, 4. 1991-92 से 2003-04 तक, 5. 2003-04 से 2011-12 तक।

ब्रिटिश शासन काल के अंतिम 50 वर्ष और प्रथम चरण में देश की अर्थव्यवस्था का प्रदर्शन अब तक सबसे खराब रहा है। इस अवधि में वास्तविक जीडीपी में लगभग एक प्रतिशत सालाना की वृद्धि देखी गई और यही वृद्धि जनसंख्या में भी रही। इससे पिछली सदी के पहले 50 वर्षो में भारत में प्रतिव्यक्ति आय में लगभग ठहराव बना रहा। हालांकि 190 वर्ष के ब्रिटिश शासन काल में अंतिम 50 वर्ष भारतीय अर्थव्यवस्था के लिहाज से शायद के सबसे बेहतर थे। इसी अवधि में आधारभूत ढांचा क्षेत्र के रेलवे, बंदरगाहों स्कूलों, कॉलेजों, अस्पतालों, बैंकों और अन्य संस्थानों में निवेश किया गया। इसका आसानी से अंदाजा लगाया जा सकता है कि वर्ष 1900-50 की अवधि में लोगों के जीवन स्तर में ठहराव शायद पूरे ब्रिटिश शासन काल की अदभुत घटना है। इन दो सदियों के आर्थिक ठहराव ने विश्व में अपनी संपदा और समृद्धि से सबको लुभाने वाले सबसे धनी देश को 1900- 1951 तक विश्व के सबसे निर्धन देश में बदल दिया।

इतने लंबे समय तक प्रतिव्यक्ति आय के ठहराव के कुछ अन्य प्रभाव भी पड़े। ऐसी परिस्थिति में अगर किसी के आर्थिक स्तर में

सुधार होता है तो निश्चित रूप के किसी के आर्थिक स्तर पर नकारात्मक असर पड़ता है क्योंकि ठहराव के काल में आय और व्यय का आंकड़ा बराबर होता है। इसलिए समाज के कुछ लोगों की तरक्की को इस संदेह के साथ देखा जाने लगता है कि वे कुछ गलत कर रहे हैं। वे दूसरे लोगों के अवसर छीनकर उन्हें गरीब बना रहे हैं। – और यह धारणा आज के समय में भी बनी हुई है। उद्यमशीलता के लिए सामाजिक और सांस्कृतिक अवरोध मतबूत हो रहे हैं और देश का आर्थिक विकास प्रभावित हो रहा है। इससे भी अधिक, जीवन स्तर में लंबे समय तक ठहराव का एक असर यह भी होता है कि जनता की उपभोग प्रणाली में कोई महत्वपूर्ण बदलाव नहीं होता है। इसके कारण इनकी जीवन प्रणाली में कोई नवाचार या नयी तकनीक का समावेश नहीं होता है। लोग जीवन भर एक ही उत्पाद का उपभोग करते हैं और इसमें कोई विविधता या बदलाव नहीं होता। उत्पाद के अप्रचलन और अवमूल्यन की दर बहुत कम होती है और पुनः प्रयोग, संसाधनों की बचत तथा कम लागत से पुरानी तकनीक के इस्तेमाल की संस्कृति व्यापक रूप से बनी रहती है।

आज़ादी के बाद, निम्न स्तर की समानता के दुष्चक्र को तोड़ना एक बड़ी चुनौती थी। आर्थिक वृद्धि के विकास के दूसरे चरण 1950–81 की अवधि के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के गठन और नियंत्रण लाइसेंस प्रणाली और उच्च करों से आर्थिक क्षेत्र में सामान्यतया और समाजवादी तरीके से आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का प्रयास किया गया। 'खरीदो या बनाओ' के आधारभूत निर्णयों के संदर्भ में, देश की आत्मनिर्भरता के लिए उत्पादन की लागत की बजाय, आयात पर अधिक ध्यान दिया गया। उन दिनों अधिकतर नेता निर्यात के प्रति उदासीन थे। हालांकि विश्व निर्यात में भारत की हिस्सेदारी व्यापक रूप से गिरनी आरंभ हो गयी थी जबकि इन्हीं 30 वर्षों 1950–80 की अवधि के दौरान वास्तविक जीडीपी की वृद्धिदर औसतन 3.5 प्रतिशत सालाना रही है। इसी अवधि में ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार हुआ और मृत्यु दर में तेज़ गिरावट दर्ज़ की गयी। इस कारण जनसंख्या में लगभग 2.2 प्रतिशत की सालाना और प्रतिव्यक्ति आय में 1.2 प्रतिशत वृद्धि हुई। इसी अवधि में वास्तविक जीडीपी की वृद्धि दर 2.5 प्रतिशत सालाना रही जबकि वास्तविक प्रतिव्यक्ति उत्पाद में यह आंकड़ा 1.2 प्रतिशत रहा।

वर्ष 1980 के दशक की शुरुआत में ही भारत में आर्थिक सुधारों की आवश्यकता महसूस की जानी लगी थी और यह चीन के बहुत बाद का समय नहीं था। मुद्रास्फीति की दरों के अनुसार विनिमय दरों का निर्धारण, मौद्रिक लक्ष्यों के अनुरूप मौद्रिक नीति में बदलाव, वित्तीय क्षेत्र में नये संस्थानों का गठन, दीर्घकालीन राजकोषीय नीति की घोषणा, चयनित जिंसों में कोटा की जरूरत कम करना और दूरसंचार तथा सूचना एवं प्रौद्योगिकी क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देना जैसे आर्थिक सुधारों की शुरुआत अस्सी के दशक में की जा चुकी थी। आर्थिक विकास के तीसरे चरण में विकास दर 3.5 प्रतिशत से लेकर 5.1 प्रतिशत सालाना दर्ज़ की गई। इसी अवधि में जनसंख्या की वृद्धि दर दो प्रतिशत रही। प्रतिव्यक्ति वास्तविक जीडीपी अस्सी के दशक में तीन प्रतिशत से अधिक सालाना की दर से बढ़ती रही।

आज़ादी के बाद, निम्न स्तर की समानता के दुष्चक्र को तोड़ना एक बड़ी चुनौती थी। आर्थिक वृद्धि के विकास के दूसरे चरण 1950–81 की अवधि के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के गठन और नियंत्रण लाइसेंस प्रणाली और उच्च करों से आर्थिक क्षेत्र में सामान्यतया और समाजवादी तरीके से आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का प्रयास किया गया। 'खरीदो या बनाओ' के आधारभूत निर्णयों के संदर्भ में, देश की आत्मनिर्भरता के लिए उत्पादन की लागत की बजाय, आयात पर अधिक ध्यान दिया गया।

चौथे चरण में अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में किए गए नीतिगत आर्थिक सुधार कार्यक्रमों को लागू करने में तेज़ी आयी। राजकोषीय नीति, भारतीय रिजर्व बैंक की स्वायत्ता, वाणिज्यिक नीति, पूंजी बाजार, नागरिक उड्डयन और बैंकिंग एवं बीमा क्षेत्र आदि में आर्थिक सुधारों के क्रियान्वयन में तेज़ी देखी गयी। इसके साथ ही उन क्षेत्रों को निजी क्षेत्र के लिए खोला गया और जो अभी सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित थे। ऐसे क्षेत्रों में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ाने पर जोर दिया गया। लाइसेंस की जरूरत खत्म करके आर्थिक गतिविधियों को उदार बनाया गया। घरेलू अर्थव्यवस्था को अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से जोड़ने के लिए धीरे–धीरे सरंक्षण कम किया गया और शुल्क घटाए गए। अर्थव्यवस्था में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति दी गयी और अंत में घरेलू उद्योगों को वैश्विक स्तर पर कारोबार की अनुमति दी जिससे कि वे बहुराष्ट्रीय कंपनी में परिवर्तित हो गए। इस चरण में वास्तविक जीडीपी की वृद्धिदर और बढ़कर छह प्रतिशत और प्रतिव्यक्ति वास्तविक जीडीपी चार प्रतिशत से अधिक हो गयी।

अर्थव्यवस्था के इतिहास के आखिरी चरण वर्ष 2003–04 से लेकर 2011–12 में आर्थिक सुधारों की दृष्टि से कोई महत्वपूर्ण निर्णय नहीं लिया गया और पिछले पांच–छह वर्ष के दौरान लिए गए निर्णयों के अनुरूप अर्थव्यवस्था को ढलने का मौका दिया गया। हालांकि पिछले चार–पांच वर्ष के दौरान कुछ ऐसे निर्णय लिए गए जो कुछ आर्थिक सुधारों के विपरीत हैं। इनमें नये नियंत्रण लागू करने, नियमन बनाने, मंजूरी लेने, प्रतिबंध लगाने, पर्यावरणीय और पारिस्थितिकीय तंत्र की अनुकूलता की अनुमति लेना जैसे निर्णय शामिल हैं। वर्ष 2008 से पहले अनुकूल वैश्विक स्थिति और घरेलू स्तर पर नरम मौद्रिक नीति तथा वित्तीय समावेशन के कदमों के कारण अर्थव्यवस्था ने उच्च आर्थिक विकास दर हासिल की। इस अवधि में वास्तविक जीडीपी की वृद्धि दर और बढ़कर 8.4 प्रतिशत हो गयी। प्रतिव्यक्ति जीडीपी भी 6.5 प्रतिशत से अधिक दर्ज़ की गयी। इसी अवधि में सबसे आश्चर्यजनक बात यह रही

कि कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों श्रम, भूमि बाज़ार, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर और व्यय प्रक्रिया में सुधारों को अभी तक भलीभांति और संतोषजनक ढंग से लागू नहीं किया जा सका। यह इसका सबूत है कि अर्थव्यवस्था में विकास की बहुत संभावनाएं मौजूद हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास की संभावनाएं

पिछले कुछ वर्षों में भारतीय अर्थव्यवस्था ने सर्वोत्तम प्रदर्शन किया था और वर्ष 2007-08 के दौरान अर्थव्यवस्था की उपलब्धियां शानदार रही थी। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि ये उपलब्धियां जिन मानकों के आधार पर प्राप्त की गयी, उनको गुजरे अधिक समय नहीं हुआ है और ये उपलब्धियां फिर आसानी से हासिल की जा सकती हैं। यह दर्शाता है कि अर्थव्यवस्था के विकास के रास्ते में छोटी-छोटी समस्याएं हैं। वर्ष 2011-12 में हम एक बार फिर उन मानकों के करीब पहुंच गए थे, जो यह संकेत करते हैं कि मौजूदा अर्थव्यवस्था में विकास की संभावनाएं मौजूद हैं।

वर्ष 2007-08 में, लागत के आधार पर भारतीय अर्थव्यवस्था की वास्तविक जीडीपी की आर्थिक वृद्धि दर 9.3 प्रतिशत के आंकड़े को छू रही थी। निर्यात की वृद्धि दर डॉलर के संदर्भ में 29 प्रतिशत, मुद्रास्फीति की दर थोक मूल्यों पर आधारित 4.7 प्रतिशत और उपभोक्ता मूल्यों पर 6.2 प्रतिशत थी। विदेशी मुद्रा भंडार 310 अरब डॉलर का डॉलर था। डॉलर की औसत विनिमय दर 40.3 रुपये प्रति डॉलर थी। चालू खाता घाटा जीडीपी का मात्र 1.3 प्रतिशत और जीडीपी का मिश्रित राजकोषीय घाटा चार प्रतिशत, जीडीपी का मिश्रित राजस्व घाटा 0.2 प्रतिशत और जीडीपी का प्राथमिक अधिशेष 0.9 प्रतिशत था। इस प्रकार वर्ष 2007-08 में उपभोक्ता मूल्य आधारित मुद्रास्फीति की दर को छोड़कर अर्थव्यवस्था की उपलब्धियां असाधारण थी। यह इसलिए संभव हुआ क्योंकि घरेलू बचत दर और घरेलू निवेश दर जीडीपी के अपने सर्वाधिक ऊंचे स्तर क्रमश: 36.8 प्रतिशत और 38.1 प्रतिशत पर पहुंच गयी थी। इसी अवधि में कौशल का परिवर्तन पूंजी निर्माण में दिखाई दिया और इंक्रीमेंटल कैपिटल आउटपुट रेशियो आईसीओआर की वृद्धि दर लगभग 4.1 प्रतिशत दर्ज की गयी।

वर्ष 2007-08 के बाद अर्थव्यवस्था की वृद्धि इन सभी मानकों पर तेज़ी से फिसलती दिखाई दी। वर्ष 2008 के संकट में वित्तीय एवं भरोसे के संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम, तेल समेत सभी जिंसों के मूल्यों में तेज़ी, यूरोमंडल का सरकारी ऋण संकट आदि ने लगभग सभी विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं को भीषण मंदी में धकेल दिया और ज्यादातर विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं की विकास दर को धीमा कर दिया। इस स्थिति से निकलने के लिए सामूहिक रूप से किए प्रयासों के तहत वित्तीय और मौद्रिक प्रोत्साहन दिए गए। भारतीय अर्थव्यवस्था इस मंदी से आर्थिक वृद्धि के संदर्भ में शुरुआत में तेज़ी से और जल्दी उभर सकती थी लेकिन मुद्रास्फीति तथा दोहरे राजाकोषीय और मौद्रिक घाटे, मुद्रा अवमूल्यन और विदेशी मुद्रा भंडार में कमी के कारण यह संभव नहीं हो सका। सार्वजनिक क्षेत्र की बचत वर्ष 2007-08 में जीडीपी के पांच प्रतिशत की तुलना में वर्ष 2011-12 में 1.3 प्रतिशत पर आ गयी। निजी क्षेत्र की बचत भी वर्ष 2007-08 में जीडीपी के 9.4 प्रतिशत से गिरकर वर्ष 2011-12 में 7.2 प्रतिशत रह गयी। इसके परिणाम स्वरूप, अर्थव्यवस्था की समग्र बचत दर वर्ष 2011-12 में छह प्रतिशत घटकर 30.8 प्रतिशत पर टिक गयी। निवेश दर भी वर्ष 2007-08 में जीडीपी के 38.1 प्रतिशत से घटकर वर्ष 2011-012 में 30.8 प्रतिशत रह गयी। इससे वर्ष 2011-12 में वास्तविक जीडीपी की वृद्धि दर 6.2 प्रतिशत पर सिमट गयी। आईसीओआर बढकर 5.6 प्रतिशत हो गया जोकि इसका सूचक है कि पूंजीगत संसाधनों की क्षमता घट रही है। यह लगातार बना रह सकता था, अगर निवेश सीमा या बिना उपयोग के रहता।

निकट भविष्य में 36.8 प्रतिशत की घरेलू बचत दर प्राप्त करने की संभावनाएं बहुत अधिक है। इसके बाद 38 प्रतिशत की निवेश दर भी हासिल की जा सकती है। इसके अलावा, भारतीय अर्थव्यवस्था की भविष्य में विकास करने की व्यापक संभावनाएं है, क्योंकि भारत दुनिया के उन चुनिंदा देशों में शामिल है जिन्हें अपनी भौगोलिक स्थिति का लाभ मिल रहा है। देश में रोज़गार योग्य आयु 25 से 65 वर्ष के समूह का अनुपात अधिक है और यह लगातार बढ़ रहा है।

सरकार भारी निवेश वाली परियोजनाओं का समय पर अनुमोदन करने, पर्यावरणीय मंजूरी देने, कर सुधार करने, कच्चे माल की आपूर्ति करने और उद्योगों को अन्य बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराने में विफल रही है। इसके अलावा सरकार प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग और पूंजी निवेश से संबंधित कई अन्य महत्वपूर्ण निर्णय तेज़ी से और सही समय नहीं कर पायी जिससे पूंजी की क्षमता घटी और अर्थव्यवस्था के आईसीओआर में इजाफा हुआ। अर्थव्यवस्था में संभावनाएं तलाशने के दृष्टिकोण से, ये सभी तत्व अस्थायी प्राकृतिक के हैं और इनमें तेज़ी से सुधार किया जा सकता है। यदि केंद्र सरकार तेज़ी से काम करते हुए त्वरित निर्णय लें और परियोजनाओं के लंबित प्रस्तावों को मंजूरी देना शुरू कर दे तो इससे न केवल निजी क्षेत्र में अतिरिक्त निवेश को बढ़ावा मिलेगा बल्कि मोजूदा परियोजनाओं के उपयोग में भी तेज़ी आएगी। इससे आईसीओआर काबू में आयेगा और यह फिर से वर्ष 2007-08 के स्तर पर होगा। इसके अलावा केंद्रीय सरकार सार्वजनिक क्षेत्र की बचत को वर्ष 2007-08 के स्तर पर पहुंचकर राजकोषीय घाटे को नियंत्रण कर पाएगी।

इसलिए, निकट भविष्य में 36.8 प्रतिशत की घरेलू बचत दर प्राप्त करने की संभावनाएं बहुत अधिक है। इसके बाद 38 प्रतिशत की निवेश दर भी हासिल की जा सकती है। इसके

अलावा, भारतीय अर्थव्यवस्था की भविष्य में विकास करने की व्यापक संभावनाएं है, क्योंकि भारत दुनिया के उन चुनिंदा देशों में शामिल है जिन्हें अपनी भौगोलिक स्थिति का लाभ मिल रहा है। देश में रोज़गार योग्य आयु 25 से 65 वर्ष के समूह का अनुपात अधिक है और यह लगातार बढ़ रहा है। संयुक्त राष्ट्र के अनुमानों के अनुसार इस समूह में बढ़ोतरी वर्ष 2027-28 तक जारी रहेगी। इसके बाद यह स्थिर रहेगी और फिर इसमें गिरावट आनी शुरू हो जाएगी। इस समूह के मौजूदा स्तर को बनाए रखने के लिए अगले 15- 20 साल और लग सकते हैं क्योंकि इसी बीच देश में जीवन अवधि बढ़ चुकी होगी। लेकिन इसके बाद वृद्धि दर आवश्यक रूप से धीमी होगी क्योंकि हम उच्च स्तर पर पहुंच रहे होंगे। क्योंकि देश में वर्ष 2027-28 तक निर्भरता अनुपात में गिरावट आएगी, इसलिए घरेलू बचत दर का स्तर बढ़कर जीडीपी के 40- 42 प्रतिशत तक पहुंच जाएगा। दक्षिण पूर्वी एशिया इस स्तर को पहले ही प्राप्त कर चुका है। यदि पूंजीगत संसाधनों की क्षमता को बनाए रखा गया और आइसीओआर 4.1 प्रतिशत पर स्थिर रहा तो वास्तविक जीडीपी की वृद्धि दर अपने आप 10 प्रतिशत सालाना पर पहुंच जाएगी। यह संभावना पूरी तरह से घरेलू संसाधनों पर आधारित है। हमें उम्मीद है कि तेज़ी से बढ़ती आर्थिक वृद्धि दर को देखते हुए बेहतर आय और शानदार बाज़ार की तलाश में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की दर में भी बढोतरी होगी। इसी तरह से देश की कंपनियां अपनी बाज़ार पहुंच बढ़ाने के लिए विदेश जाएगीं। अगर इससे देश में आने वाली पूंजी का प्रवाह दो प्रतिशत भी बढ़ता है तो सालाना वृद्धि दर बढ़कर 10.5 प्रतिशत हो जाएगीं और यह सिलसिला वर्ष 2050 तक बना रहेगा।

जनसंख्या वृद्धि दर में कमी आने की संभावना है और इसके औसतन एक प्रतिशत प्रतिवर्ष रहने की संभावना है। इससे प्रति व्यक्ति वास्तविक जीडीपी बढ़कर लग. भग नौ प्रतिशत सालाना हो जाएगी। यह दिलोदिमाग को हिलाने वाला तथ्य है कि वास्तविक प्रतिव्यक्ति आय प्रत्येक आठ वर्ष में दोगुनी होती जाएगी। वस्तुओं और सेवाओं की उपलब्धता अभूतपूर्व ढंग से बढ़ेगी और इसी के अनुरूप उपभोग भी बढ़ेगा। उपभोग योग्य वस्तुओं और सेवाओं के क्षेत्र में तेज़ी से विस्तार होगा और उपभोग के तरीकों में भी आमूलचूल परिवर्तन होगा। उपभोग बाज़ार में व्यापक विविधता होगी और इसमें लगातार बदलाव होता रहेगा। वस्तुओं के अप्रचलन होने और उनके अवमूल्यन की दर भी उच्च स्तर पर रहेगी। वस्तुओं का संग्रहण अनुकूल और व्यावहारिक नहीं होगा। वस्तुओं और संसाधनों का पुन: प्रयोग एक औपचारिक कारोबार होगा लेकिन वस्तुओं परिवारों के पहुंच होगी। सेवा क्षेत्र, मनोरंजन, सूचना, संचार तथा अनुसंधान एवं विकास जैसे क्षेत्र ज्यादा भरोसेमंद होंगे। थोड़े शब्दों में , मौजूदा सदी के अगले पचास वर्ष, पिछली सदी के पहले पचास वर्ष के ठीक उलट होंगे।

शानदार और तेज़ आर्थिक विकास और उद्यमशीलता तथा उपभोग की विविधता के लिए व्यापक स्तर पर अनुसंधान और विकास की जरूरत होगी। इसके लिए गुणवत्तायुक्त और कुशल मानव संसाधन विकास रणनीति की आवश्यकता है। इसमें कारोबारी उद्यम, एक उच्च स्थिति बनाने और बनाएं रखना, श्रम उत्पादकता की तेज वृद्धि दर, तकनीकी सुधार और विशेष उत्पादों पर जोर मुख्य तत्व होंगे। यह अर्थव्यवस्था के हित में होगा कि निजी क्षेत्र की भागीदारी पर भरोसा किया जाए और जोर दिया जाए। ❑

(लेखक वर्ष 1985 से अहमदाबाद के भारतीय प्रबंधन संस्थान में आर्थिकी के प्रोफेसर हैं। वे क्षेत्रीय आर्थिक विकास, उत्पादकता अध्ययन, लागत- उत्पादन विश्लेषण, श्रम आर्थिकी, स्वास्थ्य आर्थिकी और राष्ट्रीय लेखा पर काम करते हैं। वे छठें केंद्रीय वेतन आयोग, बचत एवं निवेश की उच्च स्तरीय मापन समिति और भारत में सार्वजनिक व्यय प्रबंधन समिति के सदस्य हैं। वे प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कई लेखों और शोध-पत्र के लेखक हैं तथा इनकी कई पुस्. तकें छप चुकी हैं। वे कई राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में परामर्शदाता है। ई मेल : rdholkia@limahd.ernet.in **)**

केंद्र प्रायोजित योजनाओं के लिए राज्यों को अतिरिक्त केंद्र सहायता

वर्ष 2014-15 के अंतरिम बजट में केंद्र प्रायोजित योजनाओं (सीएसएस) के कार्यान्वयन के लिए राज्यों और संघशासित प्रदेशों को अतिरिक्त केंद्रीय सहायता देने का प्रस्ताव किया गया है। इन योजनाओं को वर्तमान में जारी सत्रह फ्लैगशिप कार्यक्रमों के अंतर्गत 126 योजनाओं को घटाकर 66 रखने का भी प्रावधान किया गया है। इसके अनुसार वर्ष 2013-14 के बजट में किये गये 1,36,254 करोड़ रुपये की तुलना में वर्ष 2014-15 में राज्य योजनाओं के लिए केंद्रीय सहायता के अंतर्गत 3,38,566 करोड़ रुपये का उच्चतर आवंटन किया गया है। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना के लिए राज्यों/संघशासित प्रदेशों को 34,000 करोड़ रुपये की केंद्रीय सहायता का प्रस्ताव किया गया है।

सर्वशिक्षा अभियान के लिए 27,635 करोड़ रुपये, विद्यालयों में मध्याह्न भोजन के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम हेतु 13,152 करोड़ रुपये और राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के लिए 4,965 करोड़ रुपये का प्रावधान किया है। समेकित बाल विकास सेवाओं (आईसीडीएस) के लिए राज्यों/संघशासित प्रदेशों की योजनाओं के लिए 18,691 करोड़ रुपये केंद्रीय सहायता के तौर पर प्रदान किये जाएंगे। इसी प्रकार ग्रामीण आवासों के लिए केंद्रीय सहायता के तौर पर राज्यों/संघशासित प्रदेशों को 16,000 करोड़ रुपये, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के लिए 13,000 करोड़ रुपये, पेयजल आपूर्ति के लिए 11,000 करोड़ रुपये और ग्रामीण स्वच्छता के लिए 4,260 करोड़ रुपये प्रदान किये जाएंगे। जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीकरण अभियान (जेएनएनयूआरएम) के लिए राज्यों/संघशासित प्रदेशों को केंद्रीय सहायता के तौर पर शहरी विकास के लिए 7060 करोड़ रुपये प्रदान किये जाएंगे। ❑

भारतीय अर्थव्यवस्था
मंदी के दौर में विकास की चुनौती

अरविंद कुमार सेन

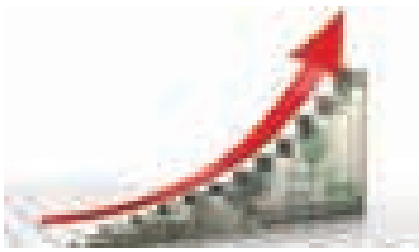

आज देश की 60 फीसदी आबादी युवा है और आने वाले दशक में इन युवाओं की तादाद में इज़ाफ़ा होने की संभावना है। जब कमाने वाले हाथों यानी युवाओं की तादाद ज्यादा हो और खाने वाले पेट यानी वरिष्ठ नागरिकों की संख्या कम हो तो किसी भी अर्थव्यवस्था के लिए यह जश्न का समय होता है। मगर भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए यह स्थिति आने वाले संकट की भविष्यवाणी-सी प्रतीत हो रही है। हमें समय रहते इन युवा हाथों को कौशल प्रशिक्षण देकर उनकी काबिलियत के मुताबिक रोज़गार मुहैया करवाना होगा वरना यह युवा आक्रोश अर्थव्यवस्था ही नहीं बल्कि पूरे देश के लिए ख़तरनाक साबित हो सकता है

''हम क्या कर रहे हैं और हम क्या करने में सक्षम हैं, इन दोनों के बीच का फासला दुनिया की अधिकांश समस्याओं को सुलझा सकता हैं।'' - महात्मा गांधी

कोई तीन साल पहले की बात है। भारतीय अर्थव्यवस्था 9.4 फीसदी की दर के साथ आगे बढ़ रही थी। शेयर बाज़ार गुलज़ार था और सेंसेक्स 21,000 अंकों से ऊपर चल रहा था। भारतीय बाज़ार में घुसने को उतावली विदेशी कंपनियां हर रोज़ भारत में प्रवेश की घोषणाएं कर रही थी। हर तरफ बहार का मौसम था। उत्साही अर्थशास्त्री दावा कर रहे थे कि जल्दी ही भारत की अर्थव्यवस्था दोहरे अंकों में यानी दस फीसदी से ज्यादा की विकास दर दर्ज करते हुए चीन को पीछे छोड़ देगी। कयास लगाया जा रहा था कि मुंबई शेयर बाज़ार का सूचकांक सेंसेक्स किसी भी पल 25,000 की ऊंचाई छू सकता है। फिर एक जलजला आया और भारतीय अर्थव्यवस्था के बारे में किए जा रहे यह सारे सुनहरे दावे बालू के महल की माफ़िक बिखर गए। केंद्रीय सांख्यिकीय संगठन ने ताज़ा आंकड़ों के आधार पर आगे का अनुमान लगाते हुए कहा है कि मौजूदा वित्त वर्ष 2013-14 में भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास दर 4.9 फीसदी रह सकती है। अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक संगठन, विश्व बैंक, एशियाई विकास बैंक और तमाम दूसरे विश्वस्तरीय अनुमानों ने एक राय से कहा है कि चालू वित्त वर्ष में भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए पांच फीसदी की विकास दर हासिल करना बेहद मुश्किल होगा। यानी आर्थिक विकास दार हर हाल में पांच फीसदी से कम रहने की पूरी संभावना है।

भारतीय अर्थव्यवस्था आठ फीसदी की जोरदार विकास दर से सीधे चार फीसदी की गहराई में गिर गई। यहां तक कि हालात सुधरने की बजाय महीने दर महीने बिगड़ते ही जा रहे हैं। पिछली सात तिमाहियों से जीडीपी विकास दर पांच फीसदी से नीचे ही रही है। आखिर क्या गलती रह गई। गिरावट की वजहों को समझने से पहले हमें उन पहलुओं पर गौर करना होगा, जिनका सहारा लेकर भारतीय अर्थव्यवस्था ने पिछले एक दशक के दरम्यान सात फीसदी से ज्यादा की विकास दर हासिल की थी। 2001 से लेकर 2008 की आर्थिक मंदी तक के बीच वैश्विक स्तर पर जिंसों की क़ीमतों में नरमी देखी गई। चूंकि भारत कई अहम जिंसों का आयात करता है, लिहाजा क़ीमतों में नरमी का सीधा फायदा भारतीय अर्थव्यवस्था को मिला। मिसाल के तौर पर भारत अपनी जरूरत के 80 फीसदी पेट्रोलियम उत्पादों का आयात करता है। 2008 की आर्थिक मंदी से पहले पेट्रोलियम उत्पादों की क़ीमतों में कोई बड़ा उछाल नहीं आने का फायदा आयात के मोर्चे पर भारत को मिला।

वहीं दूसरी तरफ 2001 से 2008 के बीच का दौर विकसित अर्थव्यवस्थाओं खासकर अमरीकी और पश्चिमी यूरोप के लिए भी ऊंची विकास दर वाला रहा है। विकसित अर्थव्यवस्थाएं तेज़ी से आगे बढ़ रही थी और इसका फायदा विकसित देशों को निर्यात करने वाली विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को मिला। भारत भी इस आर्थिक बूम का फायदा उठाने वाले देशों में से एक था। यह जगजाहिर है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में सेवा क्षेत्र का योगदान 60 फीसदी के आसपास है और इस क्षेत्र की

कंपनियों का मुख्य ग्राहक विकसित देशों की कंपनियां हैं। जब तक विकसित अर्थव्यवस्थाओं के विकास की राह पर आगे बढ़ती रही, इसका फायदा भारत की आईटी कंपनियों को भी मिलता रहा। जब 2008 की आर्थक मंदी के बवंडर के विकसित अर्थव्यवस्थाएं धराशायी हो गई तो भारतीय आईटी कंपनियों को भी इसका खामियाज़ा भुगतना पड़ा। चूंकि भारतीय अर्थव्यवस्था सेवा क्षेत्र के बलबूते कुंलाचें भर रही थी, इसलिए सेवा क्षेत्र की विकास दर धीमी होते हीं पूरी अर्थव्यवस्था मंदी की चपेट में आ गई। तमाम बैलआउट पैकेजों के बावजूद 2008 की आर्थिक मंदी के बाद से लेकर आज तक विकसित अर्थव्यवस्थाएं विकास की पूरानी रफ्तार हासिल नहीं कर पाई हैं। यही बात भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए भी कहीं जा सकती है जो बीते तीन सालों से विकास की पुरानी रफ्तार हासिल करने की कोशिश कर रही है।

गौर करने वाली बात है कि जिस दफा अमरीकी अर्थव्यवस्था में रिकवरी के संकेत यानी मंदी से बाहर निकलने के आंकड़े मिलते है, लगभग उसी वक्त भारत के आर्थिक हलकों में भी जश्न का माहौल हो जाता है। संदेश साफ है। भारतीय अर्थव्यस्था के विकास की नाड़ी अमरीकी अर्थव्यवस्था से जुड़ी हुई है। अगर अमरीकी अर्थव्यवस्था में रिकवरी होती है तो भारतीय अर्थव्यवस्था में भी तेजी देखने को मिलेगी। अगर अमरीकी अर्थव्यवस्था मंदी के भंवर में फंसती है तो भारतीय अर्थव्यवस्था को भी गिरावट का सामना करना पड़ेगा। मतलब भारतीय अर्थव्यवस्था की तक़दीर विकसित देशों खासकर अमरीकी अर्थव्यवस्था के साथ जुड़ गई है। कारण, भारतीय अर्थव्यवस्था सेवा क्षेत्र पर हद से ज्यादा निर्भर है और हमारी आईटी कंपनियां अमरीकी अर्थव्यवस्था पर हद से ज्यादा निर्भर हैं। हालांकि वैश्विक आर्थिक मंदी का असर दुनिया की सारी अर्थव्यवस्थाओं पर पड़ा है लेकिन उभरती अर्थव्यवस्थाओं में भारत सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ है। चीन आज सात फीसदी के आस पास एक चमकीली विकासदर वाले जोन में है मगर भारतीय अर्थव्यवस्था के साथ ऐसा नहीं है।

कहा जा सकता है कि 2001 से 2008 के बीच भारतीय अर्थव्यवस्था के दमदार आर्थिक विकास में माकूल वैश्विक माहौल का योगदान था। 2008 के बाद से भारतीय अर्थव्यवस्था में आई गिरावट के लिए भी बिगड़ता वैश्विक आर्थिक माहौल जिम्मेदार है। चीन की तरह हमारे पास मजबूत विनिर्माण क्षेत्र नहीं है और दक्षिण कोरिया की तरह भारत ने अपने मानव संसाधन के विकास में निवेश नहीं किया है। लिहाजा उभरती अर्थव्यवस्थाओं में आर्थक मंदी का सबसे गहरा असर भारत पर पड़ा है। जाहिर है, भारतीय अर्थव्यवस्था की बागडोर भारत से ज्यादा अमरीकी नीति-निर्माताओं के हाथ में है। भारतीय अर्थव्यवस्था की गिरावट भी हम समय रहते

कहा जा सकता है कि 2001 से 2008 के बीच भारतीय अर्थव्यवस्था के दमदार आर्थिक विकास में माकूल वैश्विक माहौल का योगदान था। 2008 के बाद से भारतीय अर्थव्यवस्था में आई गिरावट के लिए भी बिगड़ता वैश्विक आर्थिक माहौल जिम्मेदार है। चीन की तरह हमारे पास मजबूत विनिर्माण क्षेत्र नहीं है और दक्षिण कोरिया की तरह भारत ने अपने मानव संसाधन के विकास में निवेश नहीं किया है। लिहाजा उभरती अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक मंदी का सबसे गहरा असर भारत पर पड़ा है।

नहीं थाम पाए और अब अर्थव्यवस्था को दुबारा विकास की राह पर लाना भी हमारे हाथ में नहीं है क्योंकि अर्थव्यवस्था की ड्राइविंग सीट पर कोई और बैठा है। बीते एक दशक की ऊंची विकास से पहले भारत ने अपनी संरचनात्मक (स्ट्रक्चरल) दिक्क़तों को दूर करने के लिए कोई क़दम नहीं उठाया था। इसी वजह से कई नामी, अर्थशास्त्रियों का कहना है कि भारत कभी दुबारा सात फीसदी से ज्यादा कि विकास दर हासिल नहीं कर पाएगा क्योंकि सात फीसदी से ज्यादा विकास दर को सफल बनाने वाले वैश्विक माहौल अब मौजूद नही हैं।

सवाल उठता है कि क्या भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए बदले वैश्विक माहौल में विकास के रास्ते बंद हो चुके हैं। जवाब है नहीं। हमारे नीति-निर्माताओं के सामने भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए दो रास्ते हैं। पहला, मामूली बदलावों के साथ जो चल रहा है, उसे चलने दें और वैश्विक अर्थव्यवस्था में रिकवरी लौटने का इंतजार करें। जैसे हीं वैश्विक अर्थव्यवस्था मंदी के दायरे से बाहर निकलेगी, इसका फायदा भारत को भी मिलेगा। मगर यह रास्ता हद से ज्यादा आशावादी है और भारतीय अर्थव्यवस्था को विदेशी नीति-निर्माताओं के रहमो-करम पर छोड़ देता है। यह ठीक वैसा है कि मानों हम जानबूझकर बिना ड्राइवर वाली गाड़ी में सवार हो जाते हैं और स्वीकार कर लेते हैं कि किस्मत से कुछ तो बेहतर होना ही है। इसी रास्ते पर चलने का नतीजा है कि आज हम भारत से ज्यादा अमरीकी अर्थव्यवस्था में रिकवरी लौटने का इंतजार कर रहे हैं। हमारे शेयर बाज़ार पर भारतीय रिजर्व बैंक कि मौद्रिक नीति की बजाय अमरीकी केंद्रीय फेडरल रिजर्व की क्यूई नीति का ज्यादा असर पड़ता है।

दूसरा रास्ता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था के तीन अहम क्षेत्रों, यानी सेवा क्षेत्र, विनिर्माण और कृषि क्षेत्र में बुनियादी सुधार किए जाएं, तीनों क्षेत्रों को नए वैश्विक माहौल में प्रतिस्पर्द्धा के लिए तैयार किया जाए और आर्थिक विकास के रास्ते पर आगे बढ़ा जाए। भारत के पास विशाल युवा आबादी है लेकिन इस युवा आबादी के कौशल विकास में निवेश किए बगैर इसका फायदा भारतीय अर्थव्यवस्था को नहीं मिल सकता है। अगर हम अर्थव्यवस्था के बुनियादी क्षेत्रों के विकास में आ रही संरचनात्मक दिक्कतों को दूर करें और साथ ही साथ मानव संसाधन के विकास में निवेश करें तो कोई कारण नहीं है कि भारतीय अर्थव्यवस्था ऊंची विकास दर हासिल नहीं कर पाए। अगर हम निर्यातोन्मुखी विकास के मॉडल के बजाय घरेलू खपत आधारित विकास के मॉडल पर आगे बढ़ते हैं तो यह लंबे समय में भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए ज्यादा फायदेमंद साबित होगा। हालांकि इसका मतलब यह नहीं है कि भारतीय अर्थव्यवस्था वैश्विक स्तर पर होने वाली हलचलों से बिलकुल अलग रहेगी।

वैश्वीकरण के इस दौर में दुनिया की

तमाम अहम अर्थव्यवस्थाएं एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं, लिहाजा वैश्विक स्तर पर होने वाली किसी भी बड़ी आर्थिक घटना का भारतीय अर्थव्यवस्था पर असर पड़ना तय है। लेकिन अगर हमारी अर्थव्यवस्था की बुनियाद मजबूत हो और इसके विकास को गति देने वाली अहम वजहें भारत में ही केंद्रित हों तो किसी भी वैश्विक आर्थिक उथल-पुथल का भारतीय अर्थव्यवस्था पर कम असर पड़ेगा। ऐसे में अर्थव्यवस्था को संभावित झटकों से उबारना आसान होगा। भारतीय अर्थव्यवस्था की एक बड़ी दिक्कत यह है कि आर्थिक विकास में अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र का योगदान महज 14.2 फीसदी है लेकिन देश की आबादी का 52 फीसदी हिस्सा रोज़ी-रोटी के लिए इस कृषि पर निर्भर है। यही विडंबना भारतीय अर्थव्यवस्था की तस्वीर है जहां आर्थिक मंदी के कारण सेवा क्षेत्र हलकान है और इसका असर पूरी अर्थव्यवस्था पर पड़ा है। जबकि आबादी का एक बड़ा हिस्सा कृषि में ही फंसा हुआ है और मान बैठा है कि आर्थिक विकास दर के नौ फीसदी से चार फीसदी पर आने जैसे आंकड़ों से उस पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

अगर भारतीय अर्थव्यवस्था को इस विडंबना से निकलकर नए माहौल में तेज़ दर से विकास करना है तो तीन अहम क्षेत्रों (विनिर्माण, सेवा और कृषि) के बीच तारतम्य बिठाना होगा। विकास की इस राह पर आगे बढ़ने के लिए सबसे पहले सेवा क्षेत्र को नये दौर के मुताबिक तैयार करना होगा। आज हमारी आईटी कंपनिया अमरीका और पश्चिमी यूरोप पर हद से ज्यादा निर्भर है। अगर यह अर्थव्यवस्थाएं मंदी के दौर से बाहर निकल भी आती है तो भी भारतीय आईटी कंपनियों की राह आसान नहीं है।

अगर भारतीय अर्थव्यवस्था को इस विडंबना से निकलकर नये माहौल में तेज़ दर से विकास करना है तो तीन अहम क्षेत्रों (विनिर्माण, सेवा और कृषि) के बीच तारतम्य बिठाना होगा। विकास की इस राह पर आगे बढ़ने के लिए सबसे पहले सेवा क्षेत्र को नये दौर के मुताबिक तैयार करना होगा। आज हमारी आईटी कंपनिया अमरीका और पश्चिमी यूरोप पर हद से ज्यादा निर्भर है। अगर यह अर्थव्यवस्थाएं मंदी के दौर से बाहर निकल भी आती है तो भी भारतीय आईटी कंपनियों की राह आसान नहीं है। आर्थिक मंदी के बाद से ही पूरे यूरोप और अमरीका की राजनीति में सरंक्षणवाद, उग्र राष्ट्रवाद और एंटी ग्लोबलाइजेशन का ट्रेंड उभर रहा है। अमरीका के दोनों राजनीतिक दलों यानी डेमोक्रेटिक पार्टी और रिपब्लिकन पार्टी ने लंबे समय से आउटसोर्सिंग करने वाली कंपनियों को निशाने पर ले रखा है। पिछले साल अमरीकी संसद ने एक बीपीओ बिल तैयार किया था जिसके मुताबिक अमरीकी कंपनियों को ग्राहकों की दिक्कत सुलझाने के लिए स्थानीय अधिकारियों को प्राथमिकता देनी होगी।

अमरीकी कंपनियों की बीपीओ आउटसोर्सिंग पर भारतीय कंपनियों का एकाधिकार है और बीपीओ बिल सीधे-सीधे भारतीय कंपनियों को चोट पहुँचाने के लिए ईजाद किया गया था। अमरीका में भारतीय आईटी कंपनियों के लिए सिकुड़ते बाज़ार की एक और मिसाल विवादित एल-1 व एच-1 बी वीज़ा का इस्तेमाल करके भारतीय कंपनियां अपने कर्मचारियों को छोटी अवधि के लिए अमरीका भेजती है लेकिन अमरीका मंदी के बाद से ही एल-1 वीज़ा देने में आनाकानी कर रहा है। 2011 में एल-1 वीज़ा के लिए आवेदन करने वाले 27 फ़ीसदी कर्मचारियों को वीज़ा नहीं दिया गया। वहीं 63 फीसदी कर्मचारियों को आवेदन 'सबूत की जरूरत' (रिक्वेस्ट फॉर इवीडेंस) का टैग लगाकर लौटा दिए गए। सीधे तौर पर 63 फीसदी कर्मचारियों को वीज़ा के लिए मना नहीं किया गया लेकिन वीज़ा देने में देरी की गई। वीज़ा मिलने में देरी के कारण भारतीय कंपनियों को अमरीकी ग्राहकों का काम तय वक्त के भीतर पूरा करने के लिए अपने कर्मचारियों की बजाय स्थानीय कर्मचारियों का सहारा लेना पड़ा और इसका सीधा असर आईटी कंपनी के बही-खाते पर पड़ा। चूंकि भारतीय आईटी कंपनियों का 68 फीसदी कारोबार अमरीका में फैला हुआ है, लेकिन वीज़ा मिलने में देरी और आउटसोर्सिंग करने वाली कंपनियों पर कर लगाने जैसे फ़ैसलों से हमारे आईटी उद्योग का सीधा ताल्लुक है।

कहने की जरूरत नहीं है कि आने वाले समय में घरेलू नागरिकों को नौकरी देने की राजनीति विकसित अर्थव्यवस्थाओं में गहराने वाली है और इसका सीधा असर भारतीय आईटी कंपनियों पर पड़ेगा। जैसे-जैसे विकसित देशों की सरकारें आउटसोर्सिंग करने वाली कंपनियों पर टैक्स दरों में इज़ाफ़े के साथ लगाम कसती जाएगी, भारतीय आईटी कंपनियों के कारोबार पर उसी अनुपात में बुरा असर पड़ेगा। दूसरी बात, अमरीकी कंपनियां आउटसोर्सिंग के लिए भारतीय आईटी कंपनियों को प्राथमिकता देती है क्योंकि भारतीय कंपनियां उम्दा गुणवत्ता का काम कम दामों पर कर देती है। तीसरी बात भारतीय आईटी कंपनियों में काम करने वाले युवा अग्रेंजी भाषा में पारंगत होते है। चीन और फिलीपींस जैसे देशों की कंपनियां तेज़ी से अग्रेंज़ी पर पकड़ बनाती जा रही है और वहीं काम कम लागत पर करके कंपनियों को मुहैया करवा रही है।

भारतीय आईटी कंपनियों के सामने दो तरह की चुनौतियां है। पहला, अमरीका और पश्चिमी यूरोप में सिकुड़ते बाज़ार के बीच नये दौर के अफ्रीकी और एशियाई देशों में नया बाज़ार खोजना होगा। दूसरा, चूंकि अग्रेंजी और कम लागत का फैक्टर तेज़ी से भारतीय कंपनियों के हाथ से फिसलता जा रहा है। इसलिए भारतीय आईटी कंपनियों को इस पहलू पर भी काम करना होगा। अर्थव्यवस्था में आ रहे उछाल की वज़ह से लागत पर काबू रखना नामुमकिन है। लिहाजा भारतीय आईटी कंपनियों को अपनी सेवाओं की गुणवत्ता सुधारनी होगी।

ऐसे में भारतीय आईटी कंपनियों के सामने दो तरह की चुनौतियां है। पहला, अमरीका और पश्चिमी यूरोप में सिकुड़ते बाज़ार के बीच नये दौर के अफ्रीकी और एशियाई देशों में नया बाज़ार खोजना होगा। दूसरा, चूंकि

अग्रेंजी और कम लागत का फैक्टर तेज़ी से भारतीय कंपनियों के हाथ से फिसलता जा रहा है। इसलिए भारतीय आईटी कंपनियों को इस पहलू पर भी काम करना होगा। अर्थव्यवस्था में आ रहे उछाल की वज़ह से लागत पर काबू रखना नामुमकिन है। लिहाजा भारतीय आईटी कंपनियों को अपनी सेवाओं की गुणवत्ता सुधारनी होगी। अगर भारतीय आईटी कंपनियां उच्च गुणवत्ता वाली सेवाएं वाजिब दाम पर मुहैया कराती है तो बदलते दौर में भी चीन और फिलीपींस की कंपनियों से मिल रही चुनौतियों का सामना किया जा सकता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था का दूसरा अहम क्षेत्र विनिर्माण भी आईटी कंपनियों की तरह नए दौर की मुश्किलों के बीच अपना वजूद बचाए रखने की जंग लड़ रहा है। वैश्विक स्तर पर विनिर्माण क्षेत्र अब तक तीन तरह की औद्योगिक क्रांतियों से गुजरा है। पहली, अठारहवीं सदी की औद्योगिक क्रांति जिसके बलबूते ब्रिटेन की अर्थव्यस्था और इस देश की दुनिया ने राज किया। दूसरी, 1910 के दशक से शुरू हुई ऑटोमोबाइल क्रांति जिसकी अगुवाई अमरीका ने की और आज तक अमरीकी अर्थव्यवस्था का वैश्विक स्तर पर दबदबा बना हुआ है। तीसरी, दूसरे विश्व युद्ध के बाद 1960 के दशक में हुई इलेक्ट्रॉनिक क्रांति जिसका फायदा जापान, जर्मनी और दक्षिण कोरिया ने उठाया है। भारतीय अर्थव्यवस्था अलग-अलग वजहों से पहली तीन औद्योगिक क्रांतियों का फायदा उठाने में नाकाम रही है। अब भारतीय नीति-निर्माताओं के सामने अवसर है कि बेहतर रणनीति के साथ चौथी औद्योगिक क्रांति यानी इंटरनेट क्षेत्र में हो रहे मंथन का फायदा उठाकर दुनिया के विनिर्माण नक्शे भारतीय अर्थव्यवस्था की छाप छोड़ें।

देर ही सही, मगर हमारी सरकार भी अब इंटरनेट क्रांति का फायदा उठाने की मशक्कत कर रही है और इसी दिशा में आगे बढ़ने के लिए बीते साल नई इलेक्ट्रॉनिक्स नीति जारी की गई थी। मोबाइल, लैपटॉप और दूसरे अत्याधुनिक इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों के निर्माण में काम आने वाली एक सबसे अहम चीज सेमीकंडक्टर है। भारतीय फेब या सेमी कंडक्टर कारोबार पूरी तरह आयात पर टिका हुआ है और 14 फीसदी की सालाना रफ्तार से बढ़ रहे इस बाज़ार का मुनाफ़ा चीनी और अमरीकी कंपनियां लूट रही है। फेब या सेमी कंडक्टर वह इंडस्ट्री है जो तमाम आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक्स में काम आने चिपों का निर्माण करती है। भारत में फेब इंडस्ट्री पहले से ही विकसित नहीं थी और डब्ल्यूटीओ के मार्फत किए गए आईटीए समझौते के जरिये की गई भयानक गलती का अहसास हुआ और थोड़ा-बहुत डैमेज कंट्रोल करने के लिए पीएमए (प्रीफ्रेंशियल मार्केट एक्सेस) नियम लागू किया गया।

याद रहे, जब कोई खास सरकार किसी को बढ़ावा देने के लिए देशी कंपनियों से तयशुदा मात्रा में खरीद करने की नीति अपनाती है तो इसे प्रीफ्रेंशियल मार्केट एक्सेस कहा जाता है। भारत ने नई इलेक्ट्रॉनिक्स नीति में पीएमए नियम लागू करते हुए कहा था कि आईटी उपकरणों की सरकारी खरीद भारतीय कंपनियों से ही की जाएगी। माना गया कि सरकारी खरीद में प्राथमिकता मिलने से देशी कंपनियां इलेक्ट्रॉनिक क्षेत्र में नई तकनीक इजाद करने और उत्पादन बढ़ाने की दिशा में आगे बढ़ेंगी। ऐसे मे अब पूरा पीएमए नियम ही मजाक बन कर रह गया है। चीन ने लगातार अपने इलेक्ट्रॉनिक्स क्षेत्र को रिसर्च एंड डेवलपमेंट के लिए आर्थिक सहायता मुहैया करवाई और कठोर पीएमए नियम लागू करके विदशी खासकर अमरीकी कंपनियों को बाज़ार से बाहर रखा है।

अगर हमारी सरकार इलेक्ट्रॉनिक्स क्षेत्र में चीन की सफलता को दोहराना चाहती है तो उसे इलेक्ट्रॉनिक्स उपकरणों की खरीद में सरकारी क्षेत्र की हिस्सेदारी बढ़ाने के साथ ही अपने पैर जमाने की कोशिश कर रही भारती फेब इंडस्ट्री की विदेशी आयात के हमले से भी कुछ वक्त के लिए बचाना होगा। अगर भारतीय विनिर्माण क्षेत्र वैश्विक अर्थव्यवस्था में चल रही इस चौथी औद्योगिक क्रांति का फायदा उठाने में असफल रहा तो हमारी अर्थव्यवस्था की इमारत को गिरने से कोई नही बचा सकता है। आज दुनिया की हरेक बड़े देश की जीडीपी में विनिर्माण क्षेत्र की हिस्सेदारी 25 फीसदी से लेकर 40 फीसदी तक है लेकिन हमारी जीडीपी में विनिर्माण क्षेत्र की महज 16 फीसदी के आंकड़े पर लटकी हुई है। हम केवल सेवा क्षेत्र के दम पर भी आगे नहीं बढ़ सकते हैं और न ही विनिर्माण क्षेत्र के साथ आगे बढ़ सकते है। सीधे अल्फ़ाज़ों में कहें तो भारतीय नीति-निर्माताओं को इन दोनों अहम क्षेत्रों के बीच तालमेल बैठाकर आगे बढ़ना होगा। हमें विनिर्माण क्षेत्र पर हीं ज्यादा जोर देने की जरूरत है क्योंकि किसी भी अर्थव्यवस्था में यही वह क्षेत्र होता है जहां बड़ी तादात में लोगों को नौकरियां दी जा सकती है। विडंबना देखिए, विनिर्माण क्षेत्र ही भारतीय अर्थव्यवस्था की सबसे कमज़ोर कड़ी है। वक्त ने एक बार फिर इंटरनेट क्रांति के रूप में अवसर मुहैया करवाया है कि हम इसका फायदा उठाकर अपने विनिर्माण क्षेत्र को मजबूत करें और भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास की अगली दहलीज पर ले जाएं।

हमारी अर्थव्यवस्था का तीसरा और सबसे अहम हिस्सा कृषि है। कृषि क्षेत्र शुरू से हीं मुसीबतों में घिरा रहा है लेकिन आज यह क्षेत्र अब तक के सबसे बुरे दौर का सामना कर रहा है। मिसाल के तौर पर कृषि जनगणना 2010-11 के ताज़ा आंकड़ों पर नज़र डालिए। कृषि भूमी के जोतों का छोटा आकार लंबे समय से इस क्षेत्र के पिछड़ेपन का कारण रहा है और नये आकंड़े बताते हैं कि छोटे जोतों का यह ख़तरनाक ट्रेंड बढ़ता ही जा रहा है। देश में कृषि भूमि का आकार 1970-71 में 2.28 हेक्टेयर था जो 2005-06 में घटकर 1.23 हेक्टेयर रहा और अब 201-11 में महज 1.6 हेक्टेयर रह गया है। 2005-06 में हाशिये के छोटे किसानों (चार हेक्टेयर से कम कृषि भूमि वाले किसान) की संख्या 83.2 फीसदी थी जो 2010-11 में बढ़कर 85 फीसदी हो गई है। याद रहे, भारतीय अर्थव्यवस्था का सबसे बेहतरीन वक्त 2003-08 रहा है और इन पांच सालों के दरम्यान अर्थव्यवस्था औसत 8.5 फीसदी से ज्यादा की रफ़्तार से आगे बढ़ी है। मगर उंची विकास दर के इसी दौर में कृषि क्षेत्र की हालत बद से बदतर होना यह जाहिर करता है कि कथित आर्थिक सुधारों का फायदा मुबंई नरीमन प्वाइंट से बाहर नहीं निकल पाया है।

सवाल उठता है कि कृषि भूमि के छोटे जोतों से क्या नुक़सान है और जोतों के आकार में कमी होनें की क्या वजहें है। कृषि भूमि के छोटे जोतों में बंटे होने के कारण आधुनिक मशीनों का इस्तेमाल नही किया जा सकता है और मशीनीकरण नहीं होने के कारण उपज की लागत बढ़ने के कारण किसान बाजार से बाहर

हो जाता है। छोटे जोतों का इस्तेमाल अधिकांश किसान केवल अनाज उगाने में करतें है लेकिन मुनाफ़ा अनाजों से नही बल्कि व्यावसायिक फ़सलों की खेती से होता है। एडम स्मिथ्स ने अपनी मशहूर किताब *वेल्थ ऑफ नेशंस* में इस बात को बताया है कि जोतों का छोटा आकार होने से कृषि अर्थव्यवस्था को विशेषीकृत खेती (मसलन केवल अदरक या हल्दी उगाना) और लेबर डिवीजन का फायदा नहीं मिल पाता है। हम अनाज इतना उगाते हैं कि खुले में सड़ रहा है लेकिन दाल और पॉम ऑयल दूसरे देशों से आयात करते हैं।

दुनिया के विकसित देशों में जोतों का आकार बड़ा है और खेती से गुज़ारा करने वाली आबादी की संख्या कम है। मिसाल के तौर पर अमरीका में एक किसान के पास औसत 175 हेक्टेयर कृषि भूमि है और दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था में महज 22 लाख किसान है। भारत में औसत कृषि भूमि 1.16 हेक्टेयर आकार की है और मालिक़ाना हक़ का आलम यह है कि यह ज़मीन 2005-06 में 12.9 करोड़ लोगों के हाथ में थी जो 2010-11 में बंटकर 13.8 करोड़ हाथों में चली गई। दरअसल, एक सीमा से अधिक बंटवारा होने पर कृषि भूमि फायदे का सौदा नहीं रहती है और देश के अधिकांश इलाके इस रेड जोन में जा चुके है। कृषि क्षेत्र में चल रहे बर्बादी के इस सिलसिलें के नहीं रुकने के दो कारण है। पहला, भारत में ज़मीन पिता से बेटों के पास आती है और बढ़ती जनसंख्या के कारण जोतों का आकार अपने आप घटता जा रहा है। दूसरा और सबसे बड़ा कारण यह है कि हमारी सरकार कृषि से जुड़ी ग्रामीण आबादी को अर्थव्यवस्था के दूसरे क्षेत्रों में रोज़गार मुहैया करवाने में नाकाम हो चुकी है।

जैसे चीन ने किया है, होना तो यह चाहिए था कि ग्रामीण आबादी को विनिर्माण और दूसरे क्षेत्रों में खपाया जाता, ऐसे में कृषि क्षेत्र पर दबाव हटने से पूरी समस्या ही खत्म हो जाती। अफसोस, धरातल पर ऐसा नहीं हुआ और जीडीपी में कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी महज 14.2 फीसदी रह गई है, लेकिन कृषि पर टिकी आबादी 52 फीसदी के डरावने स्तर पर बरकरार है। चूंकि हमारे देश की आबादी लगातार बढ़ रही है, लिहाजा संख्या के हिसाब से बीते सात दशकों के दरम्यान कृषि क्षेत्र पर निर्भर लोगों की तादाद में इज़ाफ़ा ही हुआ है। यही सबसे बड़ी दिक्कत है कि महल ढहता जा रहा है मगर दरबारियों की तादाद बढ़ती जा रही है। विडंबना देखिए, कृषि क्षेत्र की यह हालत उसी दौरान हुई है जब सरकार और कारोबारी जनता को समझा रहे हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था सालाना तीन फीसदी की हिंदू ग्रोथ रेट से बाहर निकल कर आठ फीसदी विकास दर वाले दौर में प्रवेश कर गई है।

हमारे देश का बेहद विशाल मानव संसाधन ग्रामीण इलाक़ों में पिस रहा है क्योंकि सरकार के पास कृषि क्षेत्र की गिरावट को थामने की कोई रणनीति नहीं है। अगर हमें इस त्रासदी को विस्फोटक होने से पहले रोकना है तो दोहरी रणनीति पर काम करना होगा। एक तरफ कृषि क्षेत्र में लगी विशाल आबादी को कौशल प्रशिक्षण देकर अर्थव्यवस्था के ज्यादा उत्पादक क्षेत्रों में रोज़गार देना होगा वहीं दूसरी ओर छोटे जोतों में बंटती जा रही कृषि भूमि को भी सामुदायिक खेती और नई तकनीकों का सहारा देकर मुनाफे का सौदा बनाना होगा। फिलवक्त भारतीय अर्थव्यवस्था बेहद नाजुक दौर से गुजर रही है। देश की 60 फीसदी आबादी युवा है और आने वाले दशक में इन युवाओं की तादाद में इज़ाफ़ा होने की संभावना है। जब कमाने वाले हाथों यानी युवाओं की तादाद ज्यादा हो और खाने वाले पेट यानी वरिष्ठ नागरिकों की संख्या कम हो तो किसी भी अर्थव्यवस्था के लिए यह जश्न का समय होता है। मगर भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए यह स्थिति आने वाले संकट की भविष्यवाणी-सी प्रतीत हो रही है। हमें समय रहते इन युवा हाथों को कौशल प्रशिक्षण देकर उनकी काबिलियत के मुताबिक रोज़गार मुहैया करवाना होगा वरना यह युवा आक्रोश अर्थव्यवस्था ही नहीं बल्कि पूरे देश के लिए ख़तरनाक साबित हो सकता है। ❑

(लेखक आर्थिक मामलों के जानकार एवं प्रधानमंत्री ग्रामीण विकास फेलो हैं। ई-मेल : sarvindna@gmail.com **)**

अनुसूचित जातियों के बीच उद्यमशीलता को प्रोत्साहित करने के लिए उद्यम पूंजी निधि

वर्ष 2014-15 के केंद्रीय अंतरिम बजट में अनुसूचित जातियों के बीच उद्यमशीलता को प्रोत्साहित करने के लिए आईएफसीआई रियायती वित्त उपलब्ध कराने के लिए 200 करोड़ रुपये की उद्यम पूंजी निधि स्थापित करने की बात कही गई है। इस निधि की अनुपूर्ति प्रत्येक वर्ष की जाएगी। आईसीडीएस योजना 01.04.2014 से सभी जिलों में कार्यान्वित की जाएगी।

सरकार ने राष्ट्रीय कृषि-वानिकी नीति 2014 का अनुमोदन कर दिया है। जिसके विविध उद्देश्य हैं। जिनमे रोज़गार, उत्पादकता और संरक्षण शामिल हैं। चालू वित्तीय वर्ष 2013-14 के दौरान सरकार ने सामाजिक क्षेत्र में कुछ पहल की है, जो इस प्रकार है:

गौण वन उत्पादों के विपणन के लिए एक तंत्र शुरू किया गया है। इस योजना को 2014-15 में जारी रखने के लिए 444.59 करोड़ रुपये का बजट आवंटित किया गया है।

समुदाय रेडियो स्टेशनों को प्रोत्साहित करने के लिए 100 करोड़ रुपये आवंटित किए गए हैं।

स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, ने लागों को नई प्रौद्योगिकियां उपलब्ध कराई हैं जिनमें जेई वैक्सीन, थैलिसीमिया के लिए नैदानिक जांच और सर्वाइकल कैंसर का पता लगाने के लिए मैग्नीविजुलाइजर शामिल हैं। ❑

चुनौतियों से निपट सकता है भारत

रहीस सिंह

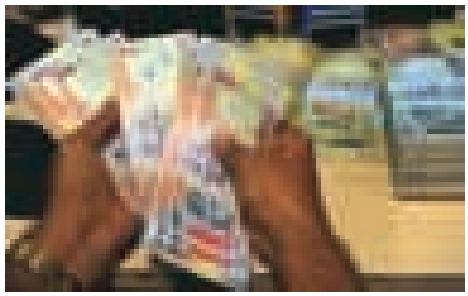

संयुक्त राष्ट्र ने कहा कि बाहर के देशों में स्थितियां चुनौतीपूर्ण बनी हुई हैं क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था में बड़ी मात्रा में पूंजी बाहर जा रही है जिसकी वजह से रुपया की विनिमय दर में तेज़ गिरावट देखने को मिल रही है। जहां तक वैश्विक अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर का प्रश्न है तो 2014 में 3 प्रतिशत रहने और 2015 में इसके 3.3 प्रतिशत पर पहुंचने का अनुमान जताया गया है। इसलिए यह संभावना बनती है कि वर्ष 2015 में स्थितियां वर्ष 2014 के मुक़ाबले ठीक होनी चाहिए। लेकिन इसके लिए भारत को अपनी व्यापक नीतियां बनानी होंगी और भारत के मानव संसाधन के मनोवैज्ञानिक धरातल को बदलना होगा

वित्त मंत्री पी. चिदंबरम ने वर्ष 2014-15 का अंतरिम बजट प्रस्तुत करते समय बजट भाषण में सबसे पहले जिस विषय की तरफ ध्यान आकर्षित किया वह था- भारत सहित अन्य विकासशील देशों का भाग्य निर्धारित करने में विश्व अर्थव्यवस्था की भूमिका। उन्होंने इस तरफ ध्यान आकर्षित करने की कोशिश की कि 2008 से ही विश्व अर्थव्यवस्था विकासशील देशों का भाग्य निधरित करने में निर्णायक भूमिका निभा रही है। बजट भाषण के मुताबिक विश्व आर्थिक विकास दर 2011 में 3.9 प्रतिशत थी, वर्ष 2012 में 3.1 प्रतिशत रही और वर्ष 2013 में 3.0 प्रतिशत। इससे पूरी तस्वीर साफ हो जाती है। यानी भारत के प्रमुख व्यापारिक भागीदार, जो भारत के विदेशी अंतर्वाहों (इनफ्लोज) का एक प्रमुख स्रोत भी हैं, लंबे समय से मंदी के दौर से गुज़र रहे हैं। स्वाभाविक है कि भारत की आर्थिक सेहत पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता और यदि इनकी सेहत ऐसी ही रही तो आगे भी पड़ेगा। वित्त मंत्री ने इस ओर ध्यान आकर्षित करने की कोशिश की कि अंतर्वाहों के मुख्य स्रोत में संयुक्त राज्य अमरीका हाल ही में मंदी के एक लंबे दौर से उबरा है, जापान सरकार द्वारा किए गए प्रोत्साहनों से वहां की अर्थव्यवस्था में अच्छे संकेत हैं। संपूर्ण यूरो जोन में 0.2 प्रतिशत के विकास की सूचना है और चीन की विकास दर 2011 में 9.3 प्रतिशत से घटकर 2013 में 7.7 प्रतिशत रह गई। मतलब यह हुआ भारतीय अर्थव्यवस्था की जिन अर्थव्यवस्थाओं के साथ कनेक्टिविटी अधिक है और जहां से भारत को इनफ्लोज प्राप्त हो रहे हैं वहां आर्थिक विकास दर पहले से ही कमज़ोर है। तो फिर भारतीय अर्थव्यवस्था क्या मज़बूती से खड़ी होकर वैश्विक अर्थव्यवस्था से प्रतियोगिता कर पाएगी? ग्लोबल रिस्क 2014 की रिपोर्ट में जिन 31 वैश्विक जोखिमों की बात की गई है, क्या वे भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष कोई बड़ी चुनौतियां उत्पन्न कर सकती हैं ? क्या भारतीय अर्थव्यवस्था इन चुनौतियों से निपटने के लिए तैयार है? जिन दस सबसे बड़े जोखिमों की ओर हमारे वित्त मंत्री ने अंतरिम बजट में इशारा किया है, क्या भारत उनसे निपटने के लिए तैयार है? यदि हां तो वह रास्ता क्या होना चाहिए ?

सर्वप्रथम, उस चुनौती पर गौर करना चाहिए जिसकी ओर कुछ समय पहले भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर रघुराम राजन ने ध्यान आकर्षित किया था। रघुराम राजन ने वर्ष 2013 की वित्तीय स्थिरता पर अपनी रिपोर्ट जारी करते हुए वर्ष 2014 में होने वाले राजनीतिक परिवर्तन को लेकर जो आशंका जाहिर की थी वह न केवल भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए बल्कि वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए भी एक चुनौती है। उन्होंने कहा था कि भारत के भावी चुनाव का परिणाम चाहे जो रहे लेकिन भावी सरकार ऐसी नहीं होनी चाहिए जिससे दुनिया के समक्ष भारत को लेकर नीतिगत अस्थिरता का संदेश जाने का ख़तरा हो। कारण यह था कि राजनीतिक और नीतिगत अस्थिरता से अर्थव्यवस्था की साख कमज़ोर होती है। रघुराम राजन की इस आशंका को भारत के अंदर नहीं बाहर कहीं ज्यादा देखने की जरूरत है क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था की ग्रोथ इस समय बाहरी स्थिरता और समृद्धता पर अधिक निर्भर करती है। यदि यूरो जोन में मंदी बनी रही तो अमरीका और पश्चिमी यूरोप के देश, विशेषकर जर्मनी और फ्रांस उसे उबारने के प्रयासों में लगे रहेंगे ताकि इन देशों के निर्यातों को गति मिल सके और इनके कार्पोरेट जगत द्वारा किए गए निवेशों के डूबने की संभावनाएं समाप्त हो जाएं। इस स्थिति में इन देशों की फाइनेंसियल मोबिलिटी एशियाई देशों की होगी।

यही नहीं आर्थिक अनिश्चतता वहां राजनीतिक अस्थिरता को बढ़ा रही है जिसके कारण वहां, विशेषकर इटली, ग्रीस, आयरलैंड में नीतिगत शिथिलता आ सकती है, जो अर्थव्यवस्था को अनिश्चित दिशा की ओर ले जा सकती है। ये दोनों स्थितियां भारत के ट्विन डेफिसिट को बढ़ाने का काम करेंगी जिससे भारतीय साख को भी बट्टा लग सकता है। इस स्थिति में जरूरी होगा कि भारत आर्थिक रणनीति पर सक्रियता का परिचय दे।

वित्तमंत्री ने अपने बजट भाषण में ग्लोबल रिस्क 2014 की रिपोर्ट में वर्णित 31 जोखिमों में से दस सबसे बड़े जोखिमों को रेखांकित

अंतरिम बजट के मुताबिक ट्विन डेफिसिट यानी दोहरे घाटे (राजकोषीय और चालू खाता घाटा) के मोर्चे पर भारत सरकार को सफलता मिली है। बजट भाषण में कहा गया है कि चालू खाता घाटा 88 बिलियन अमरीकी डॉलर के पिछले वर्ष से भी ज्यादा बढ़ने का ख़तरा था लेकिन अब यह 45 बिलियन अमरीकी डॉलर तक नियंत्रित हो जाएगा। यही नहीं वित्त की समाप्ति होने तक विदेशी मुद्रा भंडार में लगभग 15 बिलियन अमरीकी डॉलर और जोड़ लिया जाएगा। जहां तक राजकोषीय स्थिति का सवाल है तो ऊपरी तौर पर राजकोषीय घाटे को सकल घरेलू उत्पाद के 4.6 प्रतिशत रखने में सरकार ने सफलता प्राप्त की।

किया है। ये हैं- राजकोषीय संकट, संरचनात्मक उच्च बेरोज़गारी या आंशिक बेकारी, आय असमानता, अभिशासन विफलता, खाद्य संकट और राजनीतिक व सामाजिक अस्थिरता। वास्तव में ये जोखिम भारतीय अर्थव्यवस्था ही नहीं बल्कि सभी उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं के लिए गंभीर चुनौती हैं।

अंतरिम बजट के मुताबिक ट्विन डेफिसिट यानी दोहरे घाटे (राजकोषीय और चालू खाता घाटा) के मोर्चे पर भारत सरकार को सफलता मिली है। बजट भाषण में कहा गया है कि चालू खाता घाटा 88 बिलियन अमरीकी डॉलर के पिछले वर्ष से भी ज्यादा बढ़ने का ख़तरा था लेकिन अब यह 45 बिलियन अमरीकी डॉलर तक नियंत्रित हो जाएगा। यही नहीं वित्त की समाप्ति होने तक विदेशी मुद्रा भंडार में लगभग 15 बिलियन अमरीकी डॉलर और जोड़ लिया जाएगा। जहां तक राजकोषीय स्थिति का सवाल है तो ऊपरी तौर पर राजकोषीय घाटे को सकल घरेलू उत्पाद के 4.6 प्रतिशत रखने में सरकार ने सफलता प्राप्त की। जाहिर है कि अब दोहरे घाटे के नियंत्रित होने से अर्थव्यवस्था की क्रेडिट रेटिंग गिरने का ख़तरा कम हो गया। लेकिन एक विशेष बात यह है कि राजकोषीय घाटे को लक्ष्य से भी नीचे लाने के लिए खातों में बड़ी ही होशियारी के साथ किया गया कुछ गुणा-भाग हुआ प्रतीत होता है। उल्लेखनीय है कि ईंधन की सब्सिडी पर 35 हजार करोड़ रुपये के ख़र्च को आगे बढ़ा दिया गया है, 90 हज़ार करोड़ रुपये के खर्चों की कटौती की गई है जिसका असर इंफ्रास्ट्रक्चर से लेकर सामाजिक क्षेत्र तक पर पड़ना अनिवार्य है। बजट का घाटा कम करने के लिए योजनागत ख़र्च में 79,790 करोड़ रुपये की कटौती कर दी है जिसका सीधा मतलब है उन जरूरी योजनाओं में कटौती, जिन्हें देश के विकास और लोगों की बेहतरी के लिए बनाया गया था। चालू खाता घाटा भी यदि कम हुआ है तो इसके दो कारण हैं। प्रथम, एक तो पश्चिमी देशों की अर्थव्यवस्था का सुधरना जिससे भारतीय निर्यातों की मांग बढ़ी और द्वितीय, भारतीय अर्थव्यवस्था की गिरती विकास दर के कारण आयातों में हुई कमी। इसका मतलब यह हुआ कि यदि पश्चिमी दुनिया जरा-सा भी लड़खड़ाई तो भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष यह एक जबर्दस्त चुनौती होगी।

अमरीकी फेड रिजर्व द्वारा अपनायी जा रही नीतियां भी हमारी अर्थव्यवस्था के लिए चुनौती हैं, यह संकेत सिडनी में संपन्न हुई जी20 बैठक में वित्त मंत्री पी. चिदंबरम और भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर रघुराम राजन ने दिया था। दरअसल, जब वहां विकासशील अर्थव्यवस्था को लेकर एक बहस छिड़ गई जिसमें 2050 तक दुनिया की तीसरी महाशक्ति का स्वप्न देख रही भारतीय अर्थव्यवस्था के नेतृत्वकर्ताओं ने अपनी कमज़ोर हालात के लिए अमरीका की मौद्रिक नीतियों को दोषी ठहराया। रघुराम राजन ने कहा कि विकसित देशों के केंद्रीय बैंकों को उभरती अर्थव्यवस्था वाले देशों को ध्यान में रखकर ही मौद्रिक नीतियां तय करनी चाहिए क्योंकि इससे विकासशील अर्थव्यवस्था से पूंजी की निकासी और स्थानीय मुद्राओं में अस्थिरता का खतरा बढ़ता है। उनका कहना था कि अमरीकी फेड रिज़र्व के मई 2013 में पहली बार प्रोत्साहन पैकेज में कटौती करने के संकेत से भारतीय बाज़ार में अस्थिरता के साथ-साथ दुनियाभर के बाज़ारों में उठापटक शुरू हो गई थी। डॉलर के मुक़ाबले भारतीय रुपया तब रिकॉर्ड 68.20 रुपये प्रति डॉलर तक नीचे आ गया था। अमरीकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने 2009 में आर्थिक नीतियों में बड़े बदलाव किए जिनमें एक था कि अमरीका में ही नौकरी देने वाली कंपनियों को टैक्स और बीमा में भारी रियायतें देना। राजन का कहना था कि इन रियायतों की वजह से ही अमरीकी अर्थव्यवस्था में निवेशकों का भरोसा लौटा

एक प्रगतिशील व समृद्ध अर्थव्यवस्था के लिए सरकार के सक्षम, दक्ष, पारदर्शी होना और सुशासन के प्रति प्रतिबद्ध रहना बेहद जरूरी होता है। यही कारण है कि शीर्ष स्तर पर पहुंचने से पहले दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं ने 'गवर्नेंस स्ट्रक्चर' को कुशल और पारदर्शी बनाने पर अधिक जोर दिया। हालांकि वहां भी यह स्थिति पूरी तरह से बरकरार नहीं रह पायी। यही वजह है कि वहां वित्तीय और बैंकिंग संस्थाओं पर हमलों के साथ-साथ प्राइवेट इक्विटीज पर भी हमले हुए

और वो उभरते बाज़ारों से पैसा निकालकर अमरीकी बाज़ार की तरफ लौटने लगे। हालांकि रिज़र्व बैंक के गवर्नर के एक आरोप के प्रत्युत्तर में जर्मन वित्त मंत्री वोल्फगांग शॉएब्ले द्वारा जवाब दिया गया जिसके अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था अपनी वजह से खस्ताहाल हो रही है इसके लिए बाहरी देश जिम्मेदार नहीं हैं। भारत में तमाम ऐसी अंदरूनी समस्याएं हैं जो दूसरे देशों की मौद्रिक नीतियों की वजह से नहीं पैदा हुईं। इस स्थिति में यह अमरीकी फेड रिजर्व द्वारा अपनायी जा रही मौद्रिक नीति भले ही भारत पर ज्यादा प्रभाव न डाल पा रही हो, लेकिन भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए एक चुनौती हो सकती है जिसे रोक पाना भी भारत के वश में नहीं है।

वैश्विक जीडीपी में होने वाले परिवर्तन भी भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए एक बड़ी चुनौती हो सकते हैं क्योंकि वैश्विक जीडीपी में गिरावट जहां भारत की सकल मांग को गिरा सकता है वहीं भारत की ओर होने वाले इनफ्लोज गिर जाएंगे जिससे पूंजी निर्माण की दर धीमी हो जाएगी जो लगभग सभी क्षेत्रों को प्रभावित करेगी। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत की आर्थिक वृद्धि दर इस साल 5.3 प्रतिशत रहने का अनुमान है जो इससे पहले के अनुमान से धीमी गति है। संयुक्त राष्ट्र ने कहा कि बाहर के देशों में स्थितियां चुनौतीपूर्ण बनी हुई हैं क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था में बड़ी मात्रा में पूंजी बाहर जा रही है जिसकी वजह से रुपया की विनिमय दर में तेज गिरावट देखने को मिल रही है। जहां तक वैश्विक अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर का प्रश्न है तो 2014 में 3 प्रतिशत रहने और 2015 में इसके 3.3 प्रतिशत पर पहुंचने का अनुमान जताया गया है। इसलिए यह संभावना बनती है कि वर्ष 2015 में स्थितियां वर्ष 2014 के मुकाबले अधिक ठीक होनी चाहिए। लेकिन इसके लिए भारत को अपनी व्यापक नीतियां बनानी होंगी और भारत के मानव संसाधन के मनोवैज्ञानिक धरातल को बदलना होगा। क्या यह संभव हो पाएगा?

एक प्रगतिशील व समृद्ध अर्थव्यवस्था के लिए सरकार का सक्षम, दक्ष, पारदर्शी होना और सुशासन के प्रति प्रतिबद्ध रहना बेहद जरूरी होता है। यही कारण है कि शीर्ष स्तर पर पहुंचने से पहले दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं ने 'गवर्नेंस स्ट्रक्चर' को कुशल और पारदर्शी बनाने पर अधिक जोर दिया। हालांकि वहां भी यह स्थिति पूरी तरह से बरकरार नहीं रह पायी। यही वजह है कि वहां वित्तीय और बैंकिंग संस्थाओं पर हमलों के साथ-साथ प्राइवेट इक्विटीज पर भी हमले हुए (आक्यूपाई वाल स्ट्रीट इसका एक उदाहरण हो सकता है)। इस मामले में भारत की स्थिति कुछ ज्यादा ही असहज करने वाली रही। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में भारत व्यवसाय के अनुकूल वातावरण को तैयार करने या वैश्विक प्रतिस्पर्धा (ग्लोबल कंपटीटिवनेस) में सफल होने के लिए आवश्यक वातावरण का निर्माण करने में कितना सफल और सक्षम हो पा रहा है, इसका अनुमान कुछ रिपोर्टों और अध्ययनों के आधार पर लगाया जा सकता है। अब तक के कुछ अध्ययनों से जो तथ्य सामने आए हैं उनके आधार पर तो भारत की तस्वीर बहुत अच्छी बनती नहीं दिख रही। निजी क्षेत्र को कर्ज देने वाली विश्व बैंक की शाखा इंटरनेशनल फाइनेंस कार्पोरेशन द्वारा 2011-12 की 'डूइंग बिजनेस' रिपोर्ट इस संबंध में 2005 के बाद से अब तक की आर्थिक और सरकारी गतिविधियों संबंधी तस्वीर को काफी स्पष्ट कर रही है। इस रिपोर्ट में व्यावसायिक वातावरण के मामले में पहला स्थान सिंगापुर को दिया गया है और दूसरे स्थान पर हांगकांग है। इसके बाद क्रमशः न्यूजीलैंड, संयुक्त राज्य अमरीका, डेनमार्क, नार्वे, ब्रिटेन, दक्षिण कोरिया, जार्जिया और ऑस्ट्रेलिया आते हैं। इस रिपोर्ट में शामिल 185 देशों की सूची में भारत 132वें पायदान पर है। व्यावसायिक वातावरण में वह उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं के साथ ही प्रतिस्पर्धा करने में पीछे नहीं है बल्कि वह ब्रिक्स और दक्षिण एशिया के देशों में भी अच्छी स्थिति नहीं रखता। इस मामले में भारत चीन से 41 पायदान नीचे है जबकि श्रीलंका

इस समय माइक्रोइकोनॉमिक क्षेत्र में बहुत-सी चुनौतियां हैं जिन्हें समाप्त किए बगैर भारतीय अर्थव्यवस्था निर्बाध रूप से आगे नहीं बढ़ सकती। आज इजरायली कोडर रूसी हैकर्स को कड़ी चुनौती दे रहे हैं, चीनी माइक्रोबायोलॉजिस्ट को फंडिंग के लिए स्विट्जरलैंड के जेनेटिक साइंटिस्ट से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही है और मैक्सिको से आने वाले बोडेगा मालिकों को ग्राहकों के लिए कोरियाई किराना दुकानदारों से कड़ा मुकाबला करना पड़ रहा है। क्या यह चुनौती हम भी स्वीकार कर पा रहे हैं?

और ताइवान से क्रमशः 51 और 116 पायदान नीचे है। आर्थिक स्थिति पर जब चर्चा होती है तो पाकिस्तान को हमेशा ही एक परजीवी राष्ट्र की तरह देखा जाता है और नेपाल को एक गये-गुजरे राष्ट्र की तरह लेकिन भारत पाकिस्तान से भी 25 और नेपाल से 24 पायदान पीछे है। दक्षिण एशिया के सात देशों में अकेला भूटान ही ऐसा देश है जिससे भारत आगे है। अब सवाल यह उठता है कि इस स्थिति में क्या वास्तव में भारत वैश्विक प्रतिस्पर्धा में आगे निकलने की क्षमता रखता है?

भारत की इस स्थिति के लिए जिन कुछ कारणों को जिम्मेदार माना गया है उनमें सबसे आगे गवर्नेंस ही है। इसके अनुसार भारत में किसी भी कांट्रैक्ट को हासिल करने में 46 कदम उठाने होते हैं जिसमें औसतन 1,420 दिन लगते हैं और इसके कारण आने वाली लागत में 40 प्रतिशत की बढ़ोतरी हो जाती है। इसके ऋण उगाही (डेट रिकवरी) संबंधी कारक को उत्तरदायी माना गया है। डेट रिकवरी के मामले में भारत 116वें स्थान पर है। निर्माण के लिए अनुमति मिलने का मसला भी गवर्नेंस से ही जुड़ा है और इस मामले में भी भारत की स्थिति बहुत खराब बतायी गई है। कंस्ट्रक्शन अनुमति मिलने के मामले में भारत 182वें स्थान पर है। यहां इसमें औसतन 196 दिन लग जाते हैं और प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय का 15 गुना खर्च होता है। प्रॉपर्टी रजिस्ट्रेशन के मामले में भी भारत 94वें स्थान पर है। भारत का इंफ्रास्ट्रक्चर और ऊर्जा आपूर्ति का मामला भी काफी हद तक भारत में व्यवसायिक वातावरण न बना पाने के लिए जिम्मेदार है। देश में 33 प्रकार के करों का भुगतान करना होता है और यदि स्वयं इन्हें जमा करने जाएं तो इसमें 243 घंटे लग जाते हैं। वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम द्वारा जारी वैश्विक प्रतिस्पर्धा रिपोर्ट 2012-13 भी इसी प्रकार की स्थिति व्यक्त करती है। इस रिपोर्ट में 144 देशों को शामिल करके निर्मित की गई 'ग्लोबल कंपटीटिवनेस इंडेक्स' (जीसीआई) में भारत 56वें स्थान पर है। यहां पर भी वह ब्रिक देशों में चीन, ब्राज़ील और दक्षिण अफ्रीका से पीछे है। रिपोर्ट में जिस बात पर जोर दिया गया है वह यह है कि कंपटीटिवनेस के लिए गवर्नेंस का ढांचा अथवा सुशासन प्रतियोगिता के स्तर को ऊपर उठाने की गारंटी देता है, व्यवसायिक आत्मविश्वास को बढ़ाता है। रिपोर्ट ने इसमें स्वतंत्र न्याय व्यवस्था, कानून का सशक्त शासन और उच्च स्तर की जवाबदेही वाले सार्वजनिक क्षेत्र को शामिल किया है। इसके साथ-साथ रिपोर्ट इस बात पर जोर देती है कि विश्वस्तरीय इंफ्रास्ट्रक्चर और अत्यधिक विकसित वित्त बाज़ार तथा बेहतर बाज़ार का पूर्णतः बेहतर कामकाज प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करता है। इन विशेषताओं की विद्यमानता स्विटजरलैंड, सिंगापुर, हांगकांग, जापान जैसे देशों में तो है लेकिन भारत जैसे देश से ये विशेषताएं काफी दूर खड़ी दिखायी दे रही हैं। भारत की रैंकिंग ब्रिक्स देशों में भी बहुत बेहतर नहीं है (देखें तालिका) जबकि भावी वैश्विक अर्थव्यवस्था में भारत को चीन के साथ नेतृत्वकर्ता के रूप में देखने की कोशिश की जा रही है।

(शेषांश पृष्ठ 59 पर)

अर्थव्यवस्था की समष्टिभावी आर्थिक चुनौतियां

स्वाती जैन

भारत की स्थिति का मूल मंत्र विनिर्माण क्षेत्र की प्रगति, उसमें तकनीकी उन्नयन, उत्पादन वृद्धि, उत्पादकता वृद्धि एवं निवेश वृद्धि होना चाहिये। इसके साथ-साथ खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे-छोटे उद्योग-धंधों की जो समस्याएं हैं उनके सुधार के प्रयास की आवश्यकता है। समष्टिभावी आर्थिक नीतियों के उद्देश्यों को तभी कारगर तरीके से पूरा किया जा सकता है, जब विनिर्माण एवं कृषि क्षेत्र के बीच के संबंधों का दोहन करने पर निजी एवं सरकारी क्षेत्र दोनों के प्रयास हों

भारत के वित्तमंत्री ने 2014-15 का अंतरिम बजट भाषण प्रस्तुत करते हुए बताया कि 2014 की ग्लोबल रिस्क रिपोर्ट में विश्व अर्थव्यवस्थाओं के लिये 13 तरह के जोखिमों का उल्लेख किया गया है। राजकोषीय संकट, अल्प बेरोज़गारी, आय असमानताएं, राजनीतिक अस्थिरता आदि का प्रमुख रूप से उल्लेख किया गया है। वित्तमंत्री के अनुसार पिछले दो-तीन वर्षों से भारतीय अर्थव्यवस्था भी लगातार प्रतिकूल बाह्य वातावरण, आंतरिक ढांचागत बाधाओं, संवृद्धि दर में गिरावट तथा स्फीतिकारी दबाव जैसी चुनौतियों का सामना कर रहा है। प्रस्तुत लेख में वर्तमान की कुछ समष्टिभावी आर्थिक चुनौतियों की चर्चा की जा रही है।

आर्थिक संवृद्धि दर में गिरावट

सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर (2004-05 की कीमतों पर) 2010-11 के 8.9 प्रतिशत के स्तर से गिरते हुए 2012-13 में 4.5 प्रतिशत के स्तर पर आ गई। हालांकि इस प्रकार की गिरावट अनेक उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं में परिलक्षित होती है परंतु गिरे हुए वैश्विक आर्थिक वातावरण में यह भारतीय अर्थव्यवस्था के लिये अनिश्चितता को और बढ़ाती है। इस संदर्भ में गौर करने वाला तथ्य यह है कि वित्तमंत्री की बजट रिपोर्ट में यह उल्लेख है कि संवृद्धि दर में यह गिरावट सेवा क्षेत्र तथा उद्योगों में उत्पादन की घटती दर के कारण है जबकि बेहतर मानसून के फलस्वरूप कृषि क्षेत्र की संवृद्धि दर में लगातार सुधार हो रहा है। यदि तालिका-1 को देखें तो ज्ञात होता है कि साधन लागत पर कृषि एवं संबद्ध क्षेत्र में वृद्धि संतोषजनक कही जा सकती है और उद्योग क्षेत्र की वृद्धि ऋणात्मक दिख रही है जबकि निर्माण एवं व्यापार परिवहन क्षेत्र की वृद्धि दर बहुत धीमी रह गई है । 2010-11 में जब संवृद्धि दर अपने उच्चतम स्तर पर थी तो उसमें मुख्य योगदान सेवा एवं निर्माण क्षेत्र का था और इनमें निवेश में भी तीव्र वृद्धि हो रही थी। परंतु अब सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) वृद्धि दर में कमी के साथ-साथ सकल घरेलू पूंजी निर्माण का स्तर 2010-99 की तुलना में 4.4 प्रतिशत

तलिका-1

पिछले वर्ष की तुलना में प्रतिशत परिवर्तन

उद्योग	2012.13क्यू1	2012.13क्यू2	2012.13क्यू3	2013.14क्यू1	2013.14क्यू2	2013.14क्यू3
कृषि एवं संबद्ध क्षेत्र	1.8	1.8	0.8	2.7	4.6	3.6
खनन एवं उत्खनन	.1.1	.0.1	.2.0	.2.8	.0.4	.1.6
विनिर्माण	.1.1	0.0	2.5	.1.2	1.0	.1.9
बिजली,जलापूर्ति,गैस	4.2	1.3	2.6	3.7	7.7	5.0
निमार्ण	2.8	.1.9	1.0	2.8	4.3	0.6
व्यापार,होटल,परिवहन, संचार	4.0	5.6	5.9	3.9	4.0	4.3
वित,इंश्योरेंस,रियल इस्टेट,व्यापारिक सेवायें	11.7	10.6	10.2	8.9	10.0	12.5
समुदायिक,सामाजिक, व्यक्गित सेवायें	7.6	7.4	4.0	9.4	4.2	7.0
साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद	4.5	4.6	4.4	4.4	4.8	4.7

स्रोत: केन्द्रीय सांख्यकीय संगठन रिपोर्ट 2014

के स्तर से घटकर मात्र 1.7 प्रतिशत के स्तर पर रह गया है (देखें तालिका-2)।

आर्थिक धीमापन चिंताजनक इसलिये भी है क्योंकि वृद्धि दरों में उच्चावचन बढ़ता हुआ दिख रहा है खासकर बिजली, जलापूर्ति, गैस एवं निर्माण में लगातार घट-बढ़ दीर्घकालिक प्रभाव उत्पन्न करेगा। विभिन्न क्षेत्रों में उच्चावचन का मुख्य कारण है इन क्षेत्रों में होने वाले निवेश में उच्चावचन एवं नीतिगत अस्थिरता। संवृद्धि दर की गिरावट न सिर्फ़ समष्टिभावी चुनौतियों को बढ़ाती है बल्कि सामाजिक-आर्थिक विकास वाले समावेशी विकास के उद्देश्य को विपरीत रूप से प्रभावित कर सकती है। इससे न सिर्फ़ रिसाव प्रभाव मुश्किल होता है बल्कि सरकार द्वारा चलाई जा रही कल्याणकारी योजनाओं द्वारा पुनर्वितरण में अनेक समस्याएं आती हैं। क्योंकि यदि संवृद्धि दर उच्च स्तर पर कायम रहती है तो सरकार के राजस्व प्राप्तियों में भी वृद्धि होती है और साथ ही निजी क्षेत्र की सरकार पर निर्भरता कम रहेगी। लेकिन वर्तमान के आर्थिक धीमेपन से निजी क्षेत्र तथा निर्धन वर्ग दोनों के बीच सरकारी सहायता के लिये एक प्रतिस्पर्धी वातावरण उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिये तेल कंपनियों और पेट्रोल-डीज़ल उपभोक्ताओं के मध्य विरोधाभास की स्थिति। एक और उदाहरण देखा जाता है, रिटेल बाज़ार में संलग्न बड़ी कंपनियों के लाभ में कमी और किसानों की आमदनी में गिरावट की स्थिति।

घाटे की द्वैत व्यवस्था तथा मुद्रास्फीति

2012-13 में सरकार का राजकोषीय घाटा तथा चालू खाते का घाटा एक साथ चिंताजनक स्तर तक बढ़ गया था। चालू खाते का घाटा जहां 88 बिलियन अमरीकी डॉलर के स्तर पर पहुंच गया था वहीं राजकोषीय घाटा जीडीपी का 5.1 प्रतिशत के स्तर तक गया। हालांकि अर्थशात्रियों में द्वैत व्यवस्था की भारत के संदर्भ में प्रासंगिकता में एकमत नहीं है फिर भी इससे कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। तेज़ी से बढ़ते आयातों और घटते विदेशी पूंजी प्रवाह के कारण चालू खाते में घाटा बढ़ा और उससे रुपये का मूल्य डॉलर की तुलना में गिरते हुए 28 अगस्त, 2013 को 68 रुपये तक पहुंचा। रुपये के घटते मूल्य से आयातों में ही मुश्किलें नहीं बढ़ी बल्कि विदेशी पूंजी प्रवाह का बहिर्गमन भी तेज़ हो गया। जैसा कि तालिका-2 से देख सकते हैं। घरेलू पूंजी निर्माण की दर बहुत धीमी है ऐसे में विदेशी पूंजी प्रवाह महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। खासकर उस स्थिति में जब सरकार के बज़ट में विभिन्न प्रकार के घाटों में बढ़ने की प्रवृत्ति कायम रहने वाली है और सकल घरेलू बचत स्तर के बढ़ने पर दबाव है। घाटे की स्थिति चुनौतिपूर्ण इसलिये है क्योंकि मुद्रास्फीति की दर 2011-2013 के दौरान काफी समय से 7 प्रतिशत के उच्च स्तर पर कायम रही और दोनों प्रकार के घाटे मुद्रास्फीति की समस्या को और बढ़ायेंगे। मुद्रास्फीति की दर थोक स्तर पर तो कम होने लगी है लेकिन खाद्य मुद्रास्फीति की दर अभी भी 9.5 से 10.5 प्रतिशत की दर पर लगातार कायम है। न तो तेल, मशीन, उपकरण, स्वर्ण आयातों को कम किया जा सकता है न ही सरकार द्वारा कल्याणकारी योजनाओं पर ख़र्च घटाया जा सकता है। ऐसा नहीं है कि सरकार घाटे को नियमित करने के प्रयास नहीं कर रही है। स्वर्ण आयात पर तटकर में वृद्वि तथा छूट में कमी, अप्रवासी भारतीय बचत जमा दरों में वृद्धि, मुद्रास्फीति सूचकांकित बांड में निवेश को प्रोत्साहन, सब्सिडी व्यय के विवेकीकरण के अनेक प्रयास किये जा रहे हैं लेकिन दीर्घकालिकता एवं उपयुक्तता का प्रश्न भी समझना जरूरी है जो नीति-निर्माताओं के बीच विवाद उत्पन्न कर रहा है। सरकार तथा रिजर्व बैंक दोनों मिलकर अनेक राजकोषीय, मौद्रिक एवं प्रशासनिक कदम उठाये हैं जिससे मुद्रास्फीति को नियंत्रित किया जा सके। सरकारी प्रयासों में प्रमुख रूप से कृषिगत आयातों पर तटकर में छूट, कृषिगत निर्यातों पर प्रतिबंध, कृषिगत वायदा कारोबार पर रोक, आवश्यक वस्तुओं के कारोबारियों पर नियंत्रण, खाद्यान्न निर्गम मूल्य नीति को कायम रखते हुए गेहूं चावल में खुले बाज़ार में बिक्री की अनुमति दी गई है। रिजर्व बैंक भी लगातार मुद्रास्फीति तथा तरलता पर नियंत्रण के उद्देश्य से मार्जिनल स्टैंडिंग फैसिलिटी के तहत रेपो दरों में परिवर्तन करता रहता है।

ऐसा नहीं है कि सरकार घाटे को नियमित करने के प्रयास नहीं कर रही है। स्वर्ण आयात पर तटकर में वृद्वि तथा छूट में कमी, अप्रवासी भारतीय बचत जमा दरों में वृद्धि, मुद्रास्फीति सूचकांकित बांड में निवेश को प्रोत्साहन, सब्सिडी व्यय के विवेकीकरण के अनेक प्रयास किये जा रहे हैं लेकिन दीर्घकालिकता एवं उपयुक्तता का प्रश्न भी समझना जरूरी है जो नीति-निर्माताओं के बीच विवाद उत्पन्न कर रहा है। सरकार तथा रिजर्व बैंक दोनों मिलकर अनेक राजकोषीय, मौद्रिक एवं प्रशासनिक कदम उठाये हैं जिससे मुद्रास्फीति को नियंत्रित किया जा सके।

मुद्रास्फीति के लगातार कायम रहने का प्रमुख कारण उत्पादन की धीमी वृद्धि के साथ

तलिका-2
सकल घरेलू उत्पाद से प्रतिशत

	2012.13क्यू1	2012.13क्यू2	2012.13क्यू3	2013.14क्यू1	2013.14क्यू2
चालू खाते का घाटा	.4.0	.5.0	.6.5	.4.9	.1.2
सकल घरेलू पूंजी निर्माण	.2.2	1.1	4.5	.1.2	2.6
मुद्रास्फीति दर	7.58	7.7	7.3	5.6	6.7
खाद्य मुद्रास्फीति दर	9.7	9.7	11.8	10.85	9.5
साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर	4.5	4.6	4.4	4.4	4.8

स्रोत: केन्द्रीय सांख्यकीय संगठन रिपोर्ट 2014

विभिन्न निवेश परियोजनाओं का समय से पूरा न होना भी है जिसके लिये निवेश तथा परियोजना मानिटरिंग के लिये एक कैबिनेट कमिटि का गठन किया है जिसके प्रयासों से जनवरी 2014 मे लंबित पड़े 6,60,000 करोड़ रुपये के 296 परियोजनाएं शुरू हो सकी हैं।

वितमंत्री ने अंतरिम बज़ट 2014-15 के भाषण में कहा कि इस समय समष्टिभावी आर्थिक नीति के मुख्य उद्देश्य बहुआयामी हैं, जैसे राजकोषीय सुदृढ़ीकरण, क़ीमत स्थिरता, खाद्य आत्मनिर्भरता, संवृद्धि चक्र का पुनरुद्धार, निवेश में वृद्धि, विनिर्माण में प्रोत्साहन, परियोजनाओं के त्वरित क्रियान्वयन, पेट्रोलियम, ऊर्जा, कोयला, वस्त्रोद्योग तथा राजमार्गों के परिचालन एवं नीति संबंधी बाधाओं का त्वरित समाधान हैं। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि भारत में आवंटन एवं चयन दोनों ही चुनौतीपूर्ण है चाहे वह सरकारी व्यय हो, सरकारी योजनाएं हो अथवा निजी निवेश हो। व्यय एवं साधनों के आवंटन में एक ही जगह पर केंद्रीकरण की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। जिन क्षेत्रों का विकास हो चुका है उन पर सरकारी व्यय अभी भी हो रहा है जिससे अत्यंत पिछड़े क्षेत्रों में व्यय एवं साधनों के आवंटन में तकनीकी समस्या हो जाती है।

भारत की स्थिति का मूल मंत्र विनिर्माण क्षेत्र की प्रगति, उसमें तकनीकी उन्नयन, उत्पादन वृद्धि, उत्पादकता वृद्धि एवं निवेश वृद्धि होना चाहिये। इसके साथ-साथ खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे-छोटे उद्योग-धंधों की जो समस्याएं हैं उनके सुधार के प्रयास की आवश्यकता है। समष्टिभावी आर्थिक नीतियों के उद्देश्यों को तभी कारगर तरीके से पूरा किया जा सकता है, जब विनिर्माण एवं कृषि क्षेत्र के बीच के संबंधों का दोहन करने पर निजी एवं सरकारी क्षेत्र दोनों के प्रयास हों। कृषि क्षेत्र पर आधारित अनेक गैर-कृषि रोज़गार अवसर सृजित हो सकते हैं जिसके लिये न सिर्फ़ सरकार बल्कि सामाजिक वातावरण भी बनाना पड़ेगा। उदाहरण के लिये आंवला, अमरूद, सेब,आम, आलू, नारियल, गन्ना, केला, हल्दी एवं अदरक कुछ ऐसे उत्पाद हैं जिनका उत्पादन अधिक है और उपयोग (विनिर्मित उत्पादों के रूप में) कम है। यदि है तो वितरण एवं विपणन की समस्या है, तकनीक की समस्या है और क़ीमतों की समस्या है। जिन क्षेत्रों में उत्पादन ज्यादा होता है वहां विपणन की सुविधाओं एवं वैकल्पिक तकनीकों के अभाव में लाभ नहीं मिल रहा है फलतः आय स्तर नहीं बढ़ पा रहा है और रोज़गार के यह अवसर बहुत लाभदायक प्रतीत नहीं होते। ❑

वितमंत्री ने अंतरिम बज़ट 2014-15 के भाषण में कहा कि इस समय समष्टिभावी आर्थिक नीति के मुख्य उद्देश्य बहुआयामी हैं, जैसे राजकोषीय सुदृढ़ीकरण, कीमत स्थिरता, खाद्य आत्मनिर्भरता, संवृद्धि चक्र का पुनरुद्धार, निवेश में वृद्धि, विनिर्माण में प्रोत्साहन, परियोजनाओं के त्वरित क्रियान्वयन, पेट्रोलियम, ऊर्जा, कोयला, वस्त्रोद्योग तथा राजमार्गों के परिचालन एवं नीति संबंधी बाधाओं का त्वरित समाधान हैं।

(लेखिका इलाहाबाद विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफेसर (अर्थशास्त्र) हैं
ई-मेल : jswati2008@gmail.com)

(पृष्ठ 56 का शेषांश)

तालिका

देश	वैश्विक रैंकिंग 2011-12	वैश्विक रैंकिंग 2012-13	ब्रिक्स देशों में रैंकिंग 2012-13
भारत	56	59	4
चीन	26	29	1
ब्राजील	53	48	2
रूस	66	67	5
दक्षिण अफ्रीका	50	52	3

स्रोत : ग्लोबल कंपटीटिवनेस रिपोर्ट 2011-12, 2012-13 (वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम)

बहरहाल, इस समय माइक्रोइकोनॉमिक क्षेत्र में बहुत-सी चुनौतियां हैं जिन्हें समाप्त किए बगैर भारतीय अर्थव्यवस्था निर्बाध रूप से आगे नहीं बढ़ सकती। आज इजरायली कोडर रूसी हैकर्स को कड़ी चुनौती दे रहे हैं, चीनी माइक्रोबायोलॉजिस्ट को फॉर्डिंग के लिए स्विट्जरलैंड के जेनेटिक साइंटिस्ट से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही है और मैक्सिको से आने वाले बोडेगा मालिकों को ग्राहकों के लिए कोरियाई किराना दुकानदारों से कड़ा मुकाबला करना पड़ रहा है। क्या यह चुनौती हम भी स्वीकार कर पा रहे हैं? हम किसी से पीछे नहीं हैं लेकिन शायद भारत में रह रहे भारतीयों, न कि अमरीका या यूरोप में रह रहे भारतीय मूल के लोगों ने यह मनोवैज्ञानिक सोच निर्मित कर ली है कि वे प्रतिस्पर्धा के लिए अभी तैयार नहीं हैं। उत्तर से लेकर दक्षिण अमरीका, यूरोप, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया और पूरे एशिया में, जहां भी भारतीय गए, वहां उन्होंने जबर्दस्त प्रदर्शन किया लेकिन भारत भूमि के अंदर आरक्षण से आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं। कुछ वैश्विक रिपोर्टें बताती हैं कि वैश्विक आर्थिक प्रतिस्पर्धा में जहां सभी को बराबरी का मौका मिलता है, वहां भारतीय बेहतर प्रदर्शन करते हैं और वे भारतीय अर्थव्यवस्था को प्रथम स्थान पर पहुंचा सकते हैं। लेकिन इसके लिए जरूरी है कि भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रतिस्पर्धात्मकता के बारे में वे अपनी सोच बदल लें क्योंकि यही वह कारण है जिसकी वजह से भारतीयों को वैश्विक अर्थव्यवस्था में बराबरी का अवसर हासिल नहीं हो पा रहा है। यही नहीं, वैश्विक अर्थव्यवस्था का मजबूत प्रतिस्पर्धी बनने के लिए चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, सिंगापुर जैसे देशों की कतार में खड़े होकर भारत को दानग्राही से दानदाता बनकर कुछ कदम चलना होगा। ❑

(लेखक आर्थिक एवं वैदेशिक मामलों के जानकार हैं। ई मेल : raheessingh@gmail.com)

भारतीय अर्थव्यवस्थाः चुनौतियां एवं संभावनाएं

भारत डोगरा

अर्थव्यवस्था में यह सुनिश्चित करना बहुत ज़रूरी है कि मुनाफ़े की शक्तियां हावी न हो अपितु जन-हित व सार्वजनिक हित ऊपर रहे। यह सुनिश्चित करने के लिए सरकार को पूरा प्रयास करना चाहिए व सरकार की अपनी भूमिका इस उद्देश्य को केंद्र में रखते हुए महत्वपूर्ण बनानी चाहिए अर्थव्यवस्था के कुछ संवेदनशील क्षेत्रों में सार्वजनिक क्षेत्र या निजी क्षेत्र के उद्यमों/उद्योगों की महत्वपूर्ण भूमिका बनी रहनी चाहिए। निजी क्षेत्र के उद्योगों की भी महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है पर उस पर सीमा यह है कि कोई निजी उद्योगपति अर्थव्यवस्था व राजनीति पर हावी न हो सके

हाल में आर्थिक संवृद्धि की दर में कुछ कमी आने के बावजूद कुल मिलाकर भारत की गिनती पिछले एक-दो दशकों के दौरान विश्व की उन अर्थव्यवस्थाओं में होती रही है जहां आर्थिक संवृद्धि की दर औसत से कहीं अधिक रही है। अब आगे की एक बड़ी चुनौती यह है कि निर्धन परिवारों व लोगों के अभाव दूर करने पर पहले से कहीं अधिक ध्यान दिया जाए जिससे एक निश्चित अवधि में सभी लोगों की बुनियादी जरूरतें पूरी हो सकें।

इन निर्धन परिवारों में केवल वे परिवार नहीं हैं जो गरीबी रेखा के नीचे हैं अपितु वे परिवार भी हैं जो गरीबी की रेखा से चाहे कुछ ऊपर हैं पर उसके बहुत नजदीक हैं। छोटी-बड़ी किसी प्रतिकूल स्थिति में वे आसानी से गरीबी की रेखा के नीचे जा सकते हैं। गरीबी की रेखा व्यवहारिक स्थिति को देखकर तय होनी चाहिए कि आज के समय में बुनियादी ज़रूरतों की आपूर्ति की स्थिति कैसी है व इस पर कितना ख़र्च होता है। इसके अतिरिक्त अलग से यह तय भी होना चाहिए कि कितने परिवार गरीबी की अधिक विकट स्थिति में हैं ताकि उनके लिए विशेष प्रयास किए जा सकें। जो भी सही स्थिति है वह सामने आनी चाहिए ताकि गरीबी व अभाव दूर करने की ऐसी नीतियां व योजनाएं बनाई जाएं जो व्यवहारिक व असरदार हों।

जहां एक ओर निर्धनता दूर करने के लिए अधिक वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता है, वहीं दूसरी ओर यह भी सच है कि गरीबी व अभाव दूर करने के कई ऐसे उपाय भी हैं जिन पर ख़र्च कम होता है। भूमि-सुधार ऐसा ही एक कार्यक्रम है। आज हमारे गावों में लगभग 30 प्रतिशत परिवार भूमिहीन हैं। उन्हें भूमि देने के लिए उच्च प्राथमिकता की श्रेणी में रखना चाहिए ताकि जो भी अतिरिक्त भूमि उपलब्ध हो सके वह उन्हें दी जाए। इसके लिए समयबद्ध कार्यक्रम बनाकर चलना होगा। चाहे यह सीलिंग की भूमि हो या भूदान की या ऊसर/बंजर भूमि के सुधार से प्राप्त भूमि हो, यह भूमिहीनों तक पहुंचनी चाहिए। आवासीय भूमि के साथ कुछ पोषक सब्जी-फल उगाने लायक ज़मीन सभी ग्रामीण परिवारों के लिए सुनिश्चित होनी चाहिए।

इस तरह के प्रयासों से कृषि बढ़ेगा जिसका सबसे अधिक व सीधा लाभ उन परिवारों को मिलेगा जो भूख व कुपोषण से अधिक प्रभ. ावित हैं। इस तरह से उत्पादन बढ़ने व गरीबी दूर करने के लक्ष्य एक साथ प्राप्त होते हैं। इसी तरह जो अन्य उपेक्षित तबके हैं जैसे कुम्हार, बुनकर, व दस्तकार, उनके माध्यम से उत्पादन बढ़ेगा तो एक साथ गरीबी दूर करने, कम पूंजी से अधिक रोज़गार सृजन करने तथा सस्ते उत्पाद व सेवाएं उपलब्ध करवाने के लक्ष्य प्राप्त होंगे।

इन उपेक्षित तबकों में गरीबी, भूख व कुपोषण सबसे अधिक है अतः इन पर फ़ोकस करना ज़रूरी है। यह नहीं माना जा सकता है कि यह सब शहरों में प्रवास कर जाएंगे। अधिक पूंजी व कुशलता मांगने वाले नये रोज़गार इतने उपलब्ध नहीं है कि ऐसे करोड़ों ज़रूरतमंद लोग इन्हें प्राप्त कर सकें। अतः यह बहुत ज़रूरी है कि गावों में ऐसा समावेशी विकास किया जाए जिससे निर्धन व अभावग्रस्त परिवारों को नई उम्मीद मिल सकें।

इस संदर्भ में रोज़गार गारंटी योजना को कानून बनाना एक अच्छा और महत्वपूर्ण प्रयास रहा है। गांवों में मनरेगा के माध्यम से जल संरक्षण व हरियाली बढ़ाने जैसे महत्वपूर्ण कार्य हुए हैं, वह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। गांवों में हरियाली बचाने/बढ़ाने के कार्य बहुत महत्वपूर्ण हैं, किंतु अभी भी कई जगहों पर मनरेगा में समस्याएं भी हैं। इसमें कुछ महत्वपूर्ण सुधार जरूरी हैं और इसके लिए अधिक संसाधन उपलब्ध होने चाहिए।

खाद्य सुरक्षा के कानून को गांवों में अधिक सार्थक बनाने के लिए जरूरी है कि इसके साथ किसानों की सुरक्षा को जोड़ा जाए। हमारी कृषि अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार छोटे किसान हैं पर वे विभिन्न कारणों से कठिन दौर से गुज़र रहे हैं। सरकारी आंकड़े बताते हैं कि उनमें से बड़ी संख्या में भूमिहीन बन रहे हैं। यदि सार्वजनिक वितरण प्रणाली व पोषक कार्यक्रमों के लिए यथासंभव सारी खरीद स्थानीय किसानों से उचित क़ीमत पर की जाए तो इससे इनका आधार मजबूत होगा।

कृषि उपज को चंद बड़े व्यापारियों की गिरफ्त से मुक्त करवाना चाहिए। किसानों और उपभोक्ताओं के सीधे संबंध को प्रोत्साहित करना चाहिए। विभिन्न शहरी कालोनियों को विशेष ग्रामीण क्षेत्रों से जोड़ना चाहिए ताकि अपने उत्पादों की बिक्री किसान व पशुपालक इन शहरी कालोनियों में बिना किसी बिचौलियों के कर सकें। किसी भी जरूरी उत्पाद में मुनाफ़ाखोरी व सट्टाबाज़ारी पर सख्ती से रोक लगनी चाहिए। साथ ही छोटे किसानों के लिए कृषि की ऐसी तकनीक होनी चाहिए जो सस्ती हो, टिकाऊ हो व गांवों के पर्यावरण की रक्षा के अनुकूल हो। दुनियाभर ऐसी तकनीकें उपलब्ध हैं। बीज जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र में किसान स्थानीय जैव-विविधता की रक्षा पर आत्मनिर्भर बन सकते हैं। मनरेगा के माध्यम से नमी व जल संरक्षण, सिंचाई की छोटी योजनाओं, तालाबों व परंपरागत सिंचाई की रक्षा व सुधार, ऊसर भूमि सुधार, जल निकासी की उचित व्यवस्था, नहरों की मरम्मत के प्रयास समुचित ढंग से होते रहें, तो कम लागत पर छोटे किसानों को बेहतर उत्पादन देने में सफलता मिलेगी और उनके कर्ज़ग्रस्त होने की संभावना भी कम होगी।

प्राकृतिक वनों की रक्षा पर समुचित ध्यान देना होगा। प्राकृतिक वनों के स्थान पर एक ही व्यापारिक महत्व के पेड़ के प्लांटेशन या मोनोकल्चर नहीं लगाने चाहिए। वनों व कृषि दोनों में जैव-विविधता की रक्षा होनी चाहिए। वनों से आदिवासियों-वनवासियों की आजीविका की रक्षा होनी चाहिए। उनके अधिकारों को मान्यता मिलनी चाहिए। वन्य जीव संरक्षण या राष्ट्रीय पार्क आदि के नाम पर किसी को विस्थापित नहीं करना चाहिए अपितु वन्य जीव संरक्षण को उच्च महत्व देते हुए इससे आदिवासियों-वनवासियों, विशेषकर युवाओं को जोड़ना चाहिए। इस कार्य में स्थानीय लोगों को आजीविका प्राप्त होनी चाहिए। बांस व उससे जुड़ी आजीविकाओं व दस्तकारियों पर विशेष फो. कस की जरूरत है।

पर्यावरण की रक्षा व विकास में कोई आपसी विरोध नहीं है अपितु असली चुनौती तो यह है कि टिकाऊ विकास का ऐसा मॉडल तैयार किया जाए जिसमें पर्यावरण की रक्षा का समावेश हो। इसे ग्रामीण संदर्भ में स्पष्ट समझा जा सकता है कि जो तकनीकें पर्यावरण की क्षति करती हैं, आज नहीं तो कल उनसे आर्थिक क्षति होती है। उदाहरण के लिए जहरीली कीटनाशक दवाओं के असर से कई गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं फैलती हैं और ऐसे कीट व पक्षी भी मारे जाते हैं जो किसानों के मित्र हैं।

पशुपालन को गांवों में बढ़ावा मिलना चाहिए, यह पशुओं की देसी नस्लों की रक्षा के आधार पर होना चाहिए। देसीय गोवंश की रक्षा के विशेष प्रयास होने चाहिए। इसके लिए स्थानीय स्तर पर अच्छे चारे व खली की प्राप्ति, चारागाह विकास, वृक्षारोपण व वनों की रक्षा पर विशेष ध्यान देना होगा। सहकारी समितियों को विशेषकर निर्धन वर्ग के प्रतिनिधित्व के साथ सशक्त करना चाहिए। दूध के लिए उचित मूल्य मिलना चाहिए। विदेशों से दूध पाउडर व उत्पादों के आयात पर रोक लगनी चाहिए एवं खली का निर्यात रुकना चाहिए। घुमंतू पशुपालकों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण नीति अपनानी चाहिए।

नदियों, समुद्र व समुद्र-तट व अन्य जल-स्रोतों में बढ़ते प्रदूषण व अन्य बदलावों के कारण आए बदलावों से मछलियों व अन्य जल-जीवन की रक्षा के साथ मछुआरों की आजीविका की रक्षा करनी चाहिए विशेष तौर पर निर्धन व परंपरागत मछुआरों की आजीविका पर विशेष ध्यान देना चाहिए। बड़े पैमाने पर मशीनीकृत विनाशकारी तौर-तरीक़ों के स्थान पर परंपरागत तौर-तरीक़ों को अधिक महत्व मिलना चाहिए जो अधिक टिकाऊ सिद्ध हो सकते हैं। व इससे मछलियों का अस्तित्व भी ख़तरें में नहीं पड़ता।

यह उत्पादन क्षमता बढ़ाने के ऐसे उपाय हैं जो पर्यावरण की रक्षा से भी जुड़े हैं। पर्यावरण की रक्षा व विकास में कोई आपसी विरोध नहीं है अपितु असली चुनौती तो यह है कि टिकाऊ विकास का ऐसा मॉडल तैयार किया जाए जिसमें पर्यावरण की रक्षा का समावेश हो। इसे ग्रामीण संदर्भ में स्पष्ट समझा जा सकता है कि जो तकनीकें पर्यावरण की क्षति करती हैं, आज नहीं तो कल उनसे आर्थिक क्षति होती है। उदाहरण के लिए जहरीली कीटनाशक दवाओं के असर से कई गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं फैलती हैं और ऐसे कीट व पक्षी भी मारे जाते हैं जो किसानों के मित्र हैं।

वहीं दूसरी ओर यह भी सच है कि पर्यावरण की क्षति करने वाली तकनीकों को प्राय: बहुत आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है जिनका अपना मुनाफ़ा इन तकनीकों से जुड़ा है। ऐसे तत्वों के पास आर्थिक शक्ति भी होती है। सवाल यह है कि इस स्थिति में ग्रामीण क्षेत्रों में सही विकास कैसे सुनिश्चित किया जाए जो टिकाऊ हो व पर्यावरण के अनुकूल हो?

अत: अर्थव्यवस्था में यह सुनिश्चित करना बहुत ज़रूरी है कि मुनाफ़े की शक्तियां हावी न हो अपितु जन-हित व सार्वजनिक हित ऊपर रहे। यह सुनिश्चित करने के लिए सरकार को पूरा प्रयास करना चाहिए व सरकार की अपनी भूमिका इस उद्देश्य को केंद्र में रखते हुए महत्वपूर्ण बनानी चाहिए।

अर्थव्यवस्था के कुछ संवेदनशील क्षेत्रों में सार्वजनिक क्षेत्र या निजी क्षेत्र के उद्यमों/उद्योगों की महत्वपूर्ण भूमिका बनी रहनी चाहिए। निजी क्षेत्र के उद्योगों की भी महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है पर उस पर सीमा यह है कि कोई निजी उद्योगपति अर्थव्यवस्था व राजनीति पर हावी न हो सके। एकाधिकार शक्ति, मुनाफ़े की बहुत ऊंची दर पर रोक लगनी चाहिए। बहुराष्ट्रीय व वदेशी कंपनियों का नियमन विशेष सावधानी से होना चाहिए। सहकारी क्षेत्र, लघु व कुटीर क्षेत्र तथा खादी के लिए विशेष प्रोत्साहन होना चाहिए व कुछ विशेष उत्पाद या क्षेत्र उनके लिए आरक्षित हो सकते हैं। सहकारिता क्षेत्र व स्वयं सहायता समूहों में जरूरी सुधार करते हुए उन्हें मज़बूती देनी होगी।

बजट तैयार करते वक्त विषमता दूर करने व कमज़ोर वर्ग की बुनियादी ज़रूरतें पूरी करने को मुख्य प्राथमिकता देनी होगी जबकि संपन्न वर्ग को अधिक छूट देने की प्रवृत्ति से बचना होगा। प्रत्यक्ष करों को बढ़ाकर, मुनाफ़ाखोरी व विलासिता पर समुचित कर लगाकर व अन्य उपायों से गरीबी व अभाव दूर करने के पर्याप्त संसाधन एकत्र किये जा सकते हैं।

बुनियादी ज़रूरतों व सेवाओं की जिम्मेदारी मुख्य रूप से सरकार को स्वीकार करनी चाहिए व इसमें मुनाफ़ाखोंरों का प्रवेश नहीं होना चाहिए।

आर्थिक नियोजन इस तरह से होना चाहिए कि सभी लोगों की आजीविका की रक्षा व बुनियादी जरूरतों की आपूर्ति के लक्ष्य सबसे ऊपर रहे व देश पर कोई आर्थिक व विदेशी कर्ज का संकट न आए। अर्थव्यस्था का आधार मज़बूत करने व राष्ट्रीय हितों की रक्षा पर समुचित ध्यान देना चाहिए।

विदेशी व्यापार में आयात बढ़ाने की प्रवृत्ति पर रोक लगनी चाहिए। जिन आयातों की वृद्धि से देश के रोज़गार छिनते हैं उनपर प्रतिबंध लगाना आवश्यक है। निर्बाध व्यापार समझौतों के प्रति व उनसे होने वाली क्षति के प्रति बहुत सावधान रहना चाहिए और राष्ट्रीय हितों की इनसे रक्षा करनी होगी। पेटेंट कानून हमारे राष्ट्रीय हितों के अनुकूल होने चाहिए।

विदेश में जमा काले धन को वापस लाने के भरपूर प्रयास अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से करने होंगे। अनेक देशों के संयुक्त प्रयास अधिक असरदार सिद्ध होंगे। देश में जमा काले धन पर भी सख्त कार्यवाही करते हुए उसे राष्ट्रीय हित के कार्यों के लिए प्रयोग में लाने के लिए अधिकाधिक प्रयास करना चाहिए। बैंकों में जो बड़े कर्ज़दारों के अरबों रुपये फंसे हैं उन्हें सार्थक कार्यों के लिए प्राप्त करना चाहिए।

बजट तैयार करते वक्त विषमता दूर करने व कमज़ोर वर्ग की बुनियादी ज़रूरतें पूरी करने को मुख्य प्राथमिकता देनी होगी जबकि संपन्न वर्ग को अधिक छूट देने की प्रवृत्ति से बचना होगा। प्रत्यक्ष करों को बढ़ाकर, मुनाफ़ाखोरी व विलासिता पर समुचित कर लगाकर व अन्य उपायों से गरीबी व अभाव दूर करने के पर्याप्त संसाधन एकत्र किये जा सकते हैं।

ऊर्जा क्षेत्र में देश के विकास और पर्यावरण की रक्षा में संतुलन स्थापित करना जरूरी है। ग्रीन हाऊस गैस उत्सर्जन कम रखने की विश्वस्तरीय जिम्मेदारी को स्वीकार करना चाहिए। शाश्वत ऊर्जा स्रोतों की भूमिका बढ़नी चाहिए पर इसमें सावधानी बरतनी चाहिए तांकि जल्दबाजी में गलतियां न हों। ग्रामीण क्षेत्रों की ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विकेंद्रित शाश्वत ऊर्जा स्रोतों की वैकल्पिक व्यवस्था को रचनात्मक तरीकों से लोगों की भागीदारी से आगे बढ़ाना चाहिए।

देश की खनिज संपदा का उपयोग व्यापक राष्ट्रीय व दीर्घकालीन नियोजन के अनुसार होना चाहिए तथा साथ में खनिज संपदा के क्षेत्र में रहनेवाले लोगों (विशेषकर आदिवासियों) के हितों का पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए। वनों व पर्यावरण की रक्षा पर समुचित ध्यान देना चाहिए। बड़ी व बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मोटे मुनाफ़े के लिए खनिज संपदा को शीघ्र से शीघ्र लूटने की प्रवृत्ति पर पूरी तरह से व सख्ती से रोक लगनी चाहिए। केवल बड़े खनिजों का ही नहीं लघु खनिजों का भी नियमन होना चाहिए। जो क्षेत्र अनियंत्रित व अवैज्ञानिक खनन से तबाह हुए हैं वहां के पर्यावरण व लोगों की स्थिति सुधारने को प्राथमिकता मिलनी चाहिए। खनन के अपराधीकरण व खनन माफिया गिरोहों पर सख्ती से रोक लगनी चाहिए।

अच्छे स्वास्थ्य का आधार अच्छे पोषण व अन्य बुनियादी ज़रूरतों की आपूर्ति से बनता है। सभी को जरूरी स्वास्थ्य सेवाएं, दवाएं व जांच उपलब्ध करवाने के लक्ष्य को उच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए। इसके लिए पर्याप्त बजट उपलब्ध होना चाहिए, जो जीडीपी के 4 या 5 प्रतिशत के आसपास हो सकता है, व साथ में स्वास्थ्य क्षेत्र में मुनाफ़ाखोरी पर दृढ़ता से नियंत्रण लगाना चाहिए। दवा नीति में बदलाव कर दवाओं की उपलब्धि और क़ीमतों को वास्तविक ज़रूरतों के अनुकूल बनाना चाहिए जिससे बाज़ार में छा जाने वाली अनावश्यक व हानिकारक दवाओं पर रोक लाग सके व वास्तव में ज़रूरी दवाएं न्यायसंगत क़ीमत पर उपलब्ध हों। जेनेरिक दवाओं को प्रोत्साहित करना चाहिए। वैक्सीन नीति में जरूरी बदलाव होने चाहिए ताकि जरूरी वैक्सीन की कमी न हो व संदिग्ध उपयोगिता के (या संभावित जोखिम वाले) वैक्सीन से बचा जा सके। स्वास्थ्य सेवाओं, जांच व दवाओं तक सभी वर्गों की पहुंच व ग्रामीण क्षेत्रों व निर्धन वर्ग को विशेष महत्व मिलना चाहिए।

सर्व शिक्षा के लक्ष्य व अधिकार को प्राथमिकता देते हुए शिक्षा का बजट जीडीपी के 6 से 7 प्रतिशत तक करना चाहिए परंतु साथ में शिक्षा में मुनाफ़ाखोरी व निजीकरण की प्रवृत्ति पर रोक लगनी चाहिए। सरकारी स्कूलों में शिक्षा के स्तर को सुधारने को

अच्छे स्वास्थ्य का आधार अच्छे पोषण व अन्य बुनियादी ज़रूरतों की आपूर्ति से बनता है। सभी को जरूरी स्वास्थ्य सेवाएं, दवाएं व जांच उपलब्ध करवाने के लक्ष्य को उच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए। इसके लिए पर्याप्त बजट उपलब्ध होना चाहिए, जो जीडीपी के 4 या 5 प्रतिशत के आसपास हो सकता है, व साथ में स्वास्थ्य क्षेत्र में मुनाफ़ाखोरी पर दृढ़ता से नियंत्रण लगाना चाहिए। दवा नीति में बदलाव कर दवाओं की उपलब्धि और क़ीमतों को वास्तविक ज़रूरतों के अनुकूल बनाना चाहिए

उच्चतम प्राथमिकता देनी चाहिए। दूर-दराज के गांवों में शिक्षा से कोई वंचित न हो इस पर विशेष ध्यान देना होगा। जहां जरूरी हो वहां इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए जरूरतमंद बच्चों हेतु विशेष शालाओं व ब्रिज कोर्स की व्यवस्था की जा सकती है।

विज्ञान व तकनीकी की प्रगति को देश की वास्तविक ज़रूरतों से जोड़ना चाहिए। ग्रामीण इलाकों में, किसानों व मज़दूरों को, खेतों व वर्कशॉपों में उपलब्ध तकनीकी कुशलता को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। विज्ञान व तकनीकी हितों को मुनाफ़े की सोच व कार्पोरेट हितों से जोड़ना नहीं चाहिए अपितु समाज व पर्यावरण के व्यापक हितों से जोड़ना चाहिए। विज्ञान के बड़े सस्थानों में व उच्च शिक्षा में विशेष ध्यान देना चाहिए कि वे देश व समाज की वास्तविक ज़रूरतों से जुड़े रहें व प्रतिभा का उचित सम्मान व उपयोग हो।

जलवायु परिवर्तन के दौर में विभिन्न आपदाओं जैसे- बाढ़, सूखे, समुद्री चक्रवात आदि पहले से कहीं विकट हो सकते हैं अत: आपदाओं से बचाव पर पहले से कहीं अधिक ध्यान देना आवश्यक है। बचाव की व्यवस्था को मज़बूत करने हुए हमें पहले के अनुभवों से सीखना जरूरी है ताकि पुरानी गलतियों को दोहराया न जाए। आपदा बचाव के लिए जहां पहले से कहीं अधिक बजट चाहिए वहीं बजट के उचित उपयोग पर भी अधिक ध्यान देना जरूरी है क्योंकि यदि हम पहले की गलतियों को दोहराते गए तो स्थिति और विकट हो सकती है।

यातायात, कार्यस्थल व आवासीय दुर्घटनाओं के साथ अधिक ख़तरनाक उत्पादों व रेडिएशन के रिसाव आदि से जुड़ी दुर्घटनाओं का ख़तरा बढ़ता जा रहा है। यदि बचाव के समुचित प्रयास किए जाएं तो दुर्घटनाओं से होने वाली क्षति को कम किया जा सकता है। दुर्घटनाओं से बचाव को मजबूत करने के साथ दुर्घटना हो जाने पर जीवन-रक्षा के उपायों को बेहतर बनाना भी आवश्यक है।

विस्थापन की संभावनाओं को हर स्तर पर न्यूनतम करने के भरपूर प्रयास करने चाहिए व ऐसी नीतियां अपनानी चाहिए जिससे विस्थापन की समस्या कम से कम हो। जो लोग पहले ही विस्थापित हो चुके हैं, उन्हें न्याय मिल सके इसका हर संभव प्रयास होना चाहिए। जहां विस्थापन से न बचा जा सके, वहां यथासंभव लोगों को एक समुदाय के रूप में बसे रहना चाहिए व ज़मीन के बदले ज़मीन मिलनी चाहिए, रोज़गार मिलने चाहिए।

पंचायत राज व शहरी विकेंद्रीकरण दोनों पक्ष मज़बूत करने चाहिए। ग्राम सभा, वार्ड सभा, मोहल्ला सभा आदि विभिन्न स्तरों पर लोगों की भागीदारी, महत्वपूर्ण निर्णय लेने में लोगों को जोड़ने की प्रक्रिया को मज़बूत बनाना होगा। पंचायत राज में जरूरी सुधार होने चाहिए वरना वह प्रधान राज बनकर रह जाएगा। पंचायत राज को नियंत्रित करने का नौकरशाही का प्रयास भी उचित नहीं है। ग्रामसभा व वार्ड सभा को सशक्त करने के साथ एक सुझाव यह भी है कि विभिन्न वार्ड पंच बारी-बारी से या रोटेशन में लगभग छह महीने तक सरपंच या प्रधान का पद संभाले। विभिन्न पंचायत समितियों व अभिभावक संघ को भी मज़बूत करना चाहिए। बाहरी पंचायत सेक्रेटरी के स्थान को गांव के निवासी पंचायत मित्र के रूप में संभाल सकते हैं। जिला स्तर पर जिला सरकार की अवधारणा के अनुकूल विकेंद्रीकरण मज़बूत होना चाहिए। पंचायतों को संवैधानिक व्यवस्था के अनुकूल पर्याप्त कार्य व अधिकार व क्षेत्र मिलना चाहिए व इसके अनुकूल संसाधन भी प्राप्त होने चाहिए। गांववासियों को सभी जरूरी दस्तावेज़ पंचायत में ही मिल जाने चाहिए। विकेंद्रीकरण बहुत आवश्यक है पर साथ में यह ध्यान में रखना होगा कि इसके कार्य मूल संवैधानिक मूल्यों जैसे समता, धर्म निपेक्षता, बंधुत्व (भाईचारे) व राष्ट्रीय एकता व अखंडता के अनुकूल हों। साथ में पर्यावरण की रक्षा व अन्य पड़ोसी पंचायतों के हितों की रक्षा को ध्यान में रखते हुए ही आगे बढ़ा जा सकता है।

महानगरों व सभी शहरों में निर्धन वर्गों के हितों की रक्षा व प्रदूषण को कम रखने को उच्च प्राथमिकता देनी चाहिए। निर्धन व मध्यम वर्ग के लिए आवास सुनिश्चित करने में सरकार को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए। चंद बड़े महानगरों में शहरी विकास केंद्रित नहीं होना चाहिए, अपितु छोटे शहरों में भी बेहतर सुविधाएं मिल सकें इस पर समुचित ध्यान देना चाहिए। बड़े व छोटे शहरों में सबकी बुनियादी ज़रूरतें पूरी करने की, स्वस्थ जीवन की संभावनाएं बढ़ाने को व समता आधारित जीवन को समुचित महत्व मिलना चाहिए। विलासिता व चमक-दमक को नियंत्रण में रखना चाहिए। ❑

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं)

अपने लेख हमें ई-मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई-मेल भी कर सकते हैं। ई-मेल करने के लिए कृतिदेव फांट इस्तेमाल करें और ओपन फाईल yojanahindi@gmail.com पर भेजें। एक से अधिक लेखकों के नाम केवल विशेष शोध लेखों पर ही दें। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र संलग्न नहीं होगा, वे स्वीकार नहीं की जा सकेगी। रचना के प्रकाशन के संबंध में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार अथवा फोन न करें। विशेष अवसरों के लिए लेख तीन माह पूर्व प्राप्त हो जाने चाहिए। रचनाओं के साथ यथासंभव प्रासंगिक चित्र भी भेजें। डाक से भेजे जाने वाले लेखों की यथासंभव एक प्रति सीडी में भी भेजें। वापसी के लिए कृपया टिकट लगा और पता लिखा लिफ़ाफ़ा संलग्न करें।

व. संपादक

अर्थव्यवस्था बनाम काला धन

चंद्रकांत भूपाल पाटील

वह धन संपत्ति व आय जिसे प्राप्त किया गया हो कमाया गया हो जिस पर किसी व्यक्ति विशेष का स्वामित्व है तथा जो देश की वैध कर प्रणाली से बच गया है और उस पर कोई कर नहीं दिया गया है तो ऐसे धन-संपत्ति व आय को काली अर्थव्यवस्था कहते हैं। लेकिन जब वैध अर्थव्यवस्था व अवैध अर्थव्यवस्था साथ-साथ चलती हैं तो इसे समानांतर अर्थव्यवस्था कहते हैं। यहां वैध अर्थव्यवस्था से अर्थ उस अर्थव्यवस्था से है जिसे समाज व कानूनों द्वारा स्वीकार किया जाता है जबकि समानांतर अर्थव्यवस्था इसके विपरीत है। समानांतर अर्थव्यवस्था को न तो समाज द्वारा और न कानून द्वारा मान्यता दी जाती है। काली अर्थव्यवस्था का ही दूसरा नाम समानांतर अर्थव्यवस्था या भूमिगत अर्थव्यवस्था या असूचित अर्थव्यवस्था है। जब लोग अवैधानिक रूप से संपत्ति साधन एकत्रित कर लेते हैं तो ऐसा एकत्र धन काला धन कहलाता है।

भारत में काली अर्थव्यवस्था या समानांतर अर्थव्यवस्था की शुरुआत द्वितीय विश्वयुद्ध से प्रारंभ हुई जबकि आवश्यक वस्तुओं की कमी हो जाने से सरकार को नियंत्रण व राशनिंग व्यवस्था लागू करनी पड़ी थी। लेकिन स्वतंत्रता मिलने के बाद यह आशा थी कि यह अर्थव्यवस्था समाप्त हो जाएगी, परंतु ऐसा नहीं हुआ और यह नियोजन के साथ-साथ बढ़ती चली गई और अब इसने अपना विशाल रूप कायम कर लिया है।

भारत में काली या समानांतर अर्थव्यवस्था

काली आय का अनुमान कई बार लगाया गया है। श्री एन. काल्डोर ने 1953-54 में 600 करोड़ रुपये बताया, जबकि बान्चू समिति ने 1961-62 में 700 करोड़ रुपये व 1965-66 में 1,000 करोड़ रुपये बताया, लेकिन इस समिति के एक सदस्य डॉ. डी. के. रंगनेकर इससे सहमत नहीं थे। उनके अनुसार यह रकम 1961-62 में 1,150 करोड़ रुपये 1965-66 में 2,350 करोड़ रुपये व 1969-78 में 3,080 करोड़ रुपये थी।

श्री ओ. पी. चोपड़ा ने 1960-61 व 1976-77 के 17 वर्षों के लिए अनुमान लगाया और बताया कि काली आय जो 1960-61 में 916 करोड़ रुपये थी वह 1976-77 में 8,098 करोड़ रुपये हो गई जो राष्ट्रीय आय की 10.5 प्रतिशत थी। लेकिन पूनम गुप्ता व संजीव गुप्ता ने अपना नया तरीका अपनाया जिसके अनुसार काली आय की मात्रा 1967-68 व 1978-79 के बीच 3,034 करोड़ रुपये से बढ़कर 46,867 करोड़ रुपये हो गई (अर्थात् 15 गुने से अधिक वृद्धि हुई)। राष्ट्रीय सार्वजनिक वित्त एवं नीति संस्थान के अनुसार 1983-84 में 31, 584 करोड़ रुपये तक काली आय थी जो राष्ट्रीय आय की 18 से 21 प्रतिशत बैठती है। परंतु डॉ. सूरजभान गुप्ता के अनुसार 1992 में यह काली आय 51,000 करोड़ रुपये थी लेकिन संसद की स्थायी समिति ने 1994-95 के लिए काली आय की मात्रा 3,00,000 करोड़ रुपये आंकी है (1980-81 की क़ीमतों के आधार पर)। इस प्रकार इन 14 वर्षों में आय 488 प्रतिशत बढ़ी है। ईसी समिति के अनुसार काला धन उस समय 11,00,000 करोड़ रुपये था जो राष्ट्रीय आय का 130 प्रतिशत बैठता था। इसप्रकार काला धन समानांतर अर्थव्यवस्था के रूप में चल रहा है।

आईआईएम के प्रो. आर. वैद्यनाथन के अनुसार भारत में काला धन 1.4 ट्रिलियन डॉलर (72,80,000 करोड़ रुपये) है। ग्लोबल फाइनेंशियल इंटीग्रिटी ग्रुप के अनुसार यह राशि 462 मिलियन डॉलर है। स्विस बैंकों में भारत के लोगों का लगभग 1,500 डॉलर जमा है। भारत सरकार ने देश में काले धन का नवीनतम अनुमान लगाने का उत्तरदायित्व तीन संगठनों को सौंपा है- नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनेंस एंड पॉलिसी, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ फाइनेंशियल मैनेजमेंट तथा एनसीएईआर।

कालेधन की उत्पत्ति के लिये उत्तरदायी घटक

करारोपण का स्तर व ढांचा भारत में करारोपण का ढांचा एवं स्तर काली आय के लिये उत्तरदायी बताई जाती है। जैसे एक समय था जब आयकर की दर अत्यधिक प्रतिशत थी। आज भी आयकर की दरें अन्य देशों की तुलना में अधिक है। इसी प्रकार संपत्ति हस्तांतरण का स्टांप ड्यूटी भी अधिक है। यही हाल उत्पाद शुल्क का है।

कर प्रशासन की कमजोरियां: भारत में कर प्रशासन अंतर्राष्ट्रीय कर की तुलना में काफी कमज़ोर है। यहां कुशल अधिकारी को पुरस्कृत करने व अकुशल को दंडित करने की कोई बात ही नहीं है। साथ ही सामान्यत: इनमें ईमानदारी का भी अभाव पाया जाता है।

नियंत्रण एवं लाइसेंस व्यवस्था: भारत में द्वितीय विश्वयुद्ध से ही कंट्रोल, परमिट, लाइसेंस व कोल जैसी पद्धतियां उत्पादन व वितरण के संबंध में अपनायी गयी है जो मांग व पूर्ति पर प्रतिबंध लगाती है जिनका अंतत: प्रभाव काला धन पैदा करने में होता है।

राजनीतिक पार्टियों को चंदा स्वतंत्रता के बाद से ही भारत में राजनीतिक पार्टियों को चंदा देने की प्रथा रही है। इसमें भी उस पार्टी को जो शासन में है। चंदा काले धन के साधन से ही दिया जाता है।

जनता में नैतिकता का अभाव पिछले 60 वर्षों में जनता की नैतिकता में

कमी आयी है जिससे कालाधन बटोरने में सहायता मिली है।

सार्वजनिक व्यय कार्यक्रमों का दोषपूर्ण प्रबंध : भारत में नियोजन कार्यक्रम अपनाने के कारण अनेक कार्यक्रम लागू किये गए हैं लेकिन इस कार्यक्रमों का प्रबंध दोषपूर्ण है जिससे कालाधन एकत्रित करने में आसानी रहती है और योजनाओं की लागत अनावश्यक रूप से बढ़ जाती है।

मुद्रास्फीतिः देश में नियोजन के कारण मुद्रास्फीति कि स्थिति भी करों से बचने के लिए कर अपवंचन को विवश करती है यह सब कालाधन बनाने में सहायक होते हैं।

समानांतर या काली अर्थव्यवस्था का प्रभाव

(1) **राज्य को आगत की हानि :** जब काली आय की जाती है तो इससे राज्य को आगत की हानि होती है अर्थात राज्य को कर पूरी मात्रा में मिले होते तो राज्य द्वारा अधिक धन सामाजिक विकास पर लगाया जा सकता था।

(2) **अधिक असमानता व संपत्ति का केंद्रीकरण :** काली कमाई से अधिक असमानता बढ़ती है तथा संपत्ति अमीरों के हाथों में केंद्रित हो जाती है जिससे आर्थिक नियोजन गड़बड़ा जाता है। प्राथमिक क्षेत्रों में विनियोग कम हो पाता है।

(3) **संसाधनों का अचल संपत्ति की ओर विचलन :** काले धन का अधिकांश उपयोग अचल संपत्ति की ओर किया जाता है। पंजीकरण के लिए मकान का मूल्य बाज़ार मूल्य से बहुत कम रखा जाता है तथा इससे काले धन को श्वेत धन से बदल दिया जाता है। इससे मध्यम वर्ग व निम्न वर्ग मकान क्रय से वंचित रह जाते हैं। मकान व संपत्ति का मूल्य कम अंकित करने से सरकार को स्टांप शुल्क कम ही मिल पाता है।

(4) **भारत के बाहर कोषों का स्थानांतरण :** इसके लिये निर्यातों का मूल्य कम किया जाता है व आयातों का मूल्य अधिक दिया जाता है।

(5) **धन का अपव्ययी उपयोग :** समानांतर अर्थव्यवस्था में धन का अपव्ययी उपभोग होता है। इसका अर्थ है कि फिजूलख़र्ची बढ़ती है तथा धन अनुत्पादक कार्यों कि ओर खिसक जाता है जिससे उत्पादक कार्यों में लगाकर देश का कल्याण किया जा सकता था। इस प्रकार देश का विकास धीमा हो जाता है।

(6) **साख नियंत्रण संसाधन प्रभावहीन होना :** जब देश में काली तरलता अधिक होती है तो सरकार द्वारा आयोजित साख नियंत्रण संसाधन प्रभावहीन हो जाते हैं और वे आशा के अनुरूप प्रभाव नहीं दिखा पाते।

(7) **मुद्रास्फीति को बढ़ावा :** काली आय मुद्रास्फीति का एक महत्वपूर्ण कारण है। यह कारण परोक्ष है। इससे मूल्य वृद्धि को बढ़ावा मिलता है जिससे आम जनता को कठिनाई होती है।

कालाधन निकालने के लिए उठाए गए कदम

(I) **विमुद्रीकरणः** विमुद्रीकरण का अर्थ है सरकार द्वारा एक निश्चित मूल्य वाले नोटों का चलन एकदम बंद कर देना तथा ऐसे नोटों के धारकों को अन्य छोटे नोटों में नोट बदलने कि सुविधा देना लेकिन नोट बदलते समय यह सबूत देना होगा कि यह उसकी वैध कमाई है अन्यथा उन पर कर लगाया जाएगा। सरकार ने विमुद्रीकरण दो बार किया- पहली बार 1946 में जब 1,000 के नोटों का चलन बंद किया व दुसरी बार 1978 में भी कुछ रुपए के नोटों का चलन बंद किया। दोनों ही बार सरकार को इसमें कोई सफलता नहीं मिली। पहली बार केवल 9 करोड रुपए के नोट बदलने के लिए प्रस्तुत नहीं किये गए, जबकि दूसरी बार 145 करोड़ के।

(II) **स्वतः प्रकटीकरण योजनाएं** स्वतः प्रकटीकरण योजनाएं वे योजनाएं हैं जिसमें काला धन घोषित करने वाले अपने घोषित काले धन का एक निश्चित प्रतिशत सरकार को कर के रूप में देते हैं और उसके विरुद्ध कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की जाती है। इस प्रकार, घोषित काले धन का एक निश्चित प्रतिशत देने पर काली आय सफेद आय में बदल जाती है। स्वतंत्रता के पश्चात अब तक पांच बार इस प्रकार के अवसर जनता को दिये गये हैं।

(III) **बॉन्ड :** 1981 में सरकार ने 10,000 रुपये के विशेष धारक बॉन्ड जारी किये जिनकी विशेषता यह थी कि 10 वर्ष पश्चात सरकार बॉन्ड धारक को 10,000 रुपये के स्थान पर 12,000 रुपये वार्षिक करेगी तथा बॉन्ड-धारक को पूर्ण छूट होगी और उससे उनकी आय का स्रोत नहीं पूछा जाएगा। इस योजना के अंतर्गत 964 करोड़ रुपये के बॉन्ड बिके। इस प्रकार, सरकार को 1985 तक कि स्वतः प्रकटीकरण योजनाओं एवं विमुद्रीकरण से केवल 776.7 करोड़ रुपये ही कर के रूप में मिले थे लेकिन अकेले 1997 कि स्वतः प्रकटीकरण योजना से ही 10,500 करोड़ रुपए मिले (जिससे घोषित आय 33,000 करोड़ रुपए थी) जो इस बात का प्रमाण है कि यह योजना कुछ खास सार्थक नहीं रही, परन्तु यह तो कुल काले धन का केवल 3 प्रतिशत ही बताया जाता है। इस प्रकार अभी भी 97 प्रतिशत काला धन चलन में है।

अंत में निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि आज भारत जैसे अन्य विश्व में उभरती अर्थव्यवस्था के सामने काली आय या सामानांतर अर्थव्यवस्था से निपटने से बड़ी चुनौती है। इस चुनौती का असर देश के सभी लोगों पर पड़ता है। भ्रष्टाचार या कालाधन रोकने और देश को भ्रष्टाचार मुक्त करने के लिये देश के सभी नागरिकों और देश की सरकारी या गैर-सरकारी व्यक्ति या संस्थाओं को यह तय करना होगा की हम कभी भी काले धन को स्वीकार नहीं करेंगे। देश सामानांतर अर्थव्यवस्था को बदलकर भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व में एक आदर्श राष्ट्र बनाएंगी। यह एक ऐसा यथार्थ होगा जिसकी देशवासियों को प्रतीक्षा है। ❑

(लेखक महाराष्ट्र में पद्मभूषण वसंतरावदादा पाटील महाविद्यालय, सांगली के अर्थशास्त्र विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं। ई मेल : chandrakant.patil08@rediffmail.com)

क्या आप जानते हैं?

व्हाइट लेबल एटीएम क्या है?

एटीएम (ऑटोमेटेड टेलर मशीन) से नकदी का आदान-प्रदान ने अब हमारी जीवन आसान बना दिया है। हालिया समय तक सिर्फ बैंकों को ही एटीएम संचालित करने का अधिकार था। एटीएम संचालन का महानगरों और शहरों तक ही सीमित पहुंच को देखते हुए रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया ने सन् 2012 में अपनी नीतियों में बदलाव किया। अब बैंकों का लक्ष्य देश के लगभग सभी हिस्सों में पहुंच बनाने की है।

व्हाइट लेबल एटीएम ऐसे एटीएम हैं, जो बैंकों द्वारा परंपरागत रूप से संचालित एटीएम के समानांतर नगदी के हस्तांतरण का विकल्प मुहैया कराते हैं। व्हाइट लेबल एटीएम (डब्ल्यूएलए) सभी बैंकों के डेबिट कार्ड स्वीकार करते हैं। लेकिन इन्हें संचालित करने वाली कंपनी या एजेंसी बैंक नहीं होतीं। इस प्रणाली का उपयोग सबसे पहले पश्चिमी देशों में किया गया था और अब यह भारत में भी प्रचलित हो गयी है।

रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के अनुसार बैंकों ने एटीएम के प्रयोग को प्रोत्साहित करने में महती भूमिका अदा की है। जहां तक एटीएम का सवाल है, इसमें व्यापक बढ़ोतरी दर्ज की गयी है। फिलहाल देश में लगभग 87,000 एटीएम मौजूद हैं। हालांकि छोटे शहरों और ग्रामीण इलाकों में इसका प्रसार होना अभी बाकी है। सन् 2008 से प्रतिवर्ष एटीएम की संख्या में 30 फीसदी की वृद्धि हुई है, बावजूद इसके दूसरे देशों की तुलना में प्रतिव्यक्ति आय के अनुसार हमारे यहां अभी भी एटीएम की संख्या कम है।

इन कारणों को मद्देनज़र रखते हुए रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया ने फरवरी 2012 में अपनी नीतियों की समीक्षा की और गैर-बैंकिंग कंपनी/ एजेंसियों को पूरे देश में एटीएम का नेटवर्क बढ़ाने की अनुमति दे दी। इन्हें ही व्हाइट लेबल एटीएम कहा जाता है। ये सभी बैंकों के ग्राहकों को एटीएम सेवाएं मुहैया कराती हैं। किसी गैर-बैंकिंग इच्छुक को एटीएम खोलने के लिए आवेदन देते समय और अनुमति मिलने के बाद एटीएम स्थापित करने के लिए अपनी इच्छानुसार जगह चुनने की छूट दी जाती है। हालांकि आरबीआई के दिशा-निर्देशों के अनुसार ऐसे इच्छुकों की शहरी-ग्रामीण अनुपात का पालन करना अनिवार्य होता है।

बैंकों द्वारा जारी किये गये कार्ड इन एटीएम में मान्य होते हैं, लेकिन इन एटीएम में नगद जमा करने की अनुमति नहीं दी गयी है। व्हाइट लेबल एटीएम का संचालक विज्ञापन के जरिये या फिर मूल्य वर्द्धित सेवाओं के जरिये राजस्व अर्जित कर सकते हैं। डब्ल्यूएलए संचालक ग्राहकों से किसी भी किस्म का शुल्क वसूल नहीं कर सकता। देश में डब्ल्यूएलए संचालन भुगतान और समाहरण प्रणाली अधिनियम, 2007 के तहत संचालित किया जाता है। डब्ल्यूएलए संचालक किसी एक प्रायोजक बैंक की घोषणा कर सकता है, जो डब्ल्यूएलएल के माध्यम से हुए सभी लेन-देन सेवाओं के लिए सेटलमेंट बैंक की तरह काम करेगा। प्रायोजक बैंक यह सुनिश्चित करता है कि डब्ल्यूएलए में पर्याप्त नगदी मौजूद है और अच्छी गुणवत्ता के करेंसी नोट ही उसमें डाले जा रहे हैं। आरबीआई ने कहा है कि विफल एटीएम लेने-देन की प्राथमिक जिम्मेवारी जारी करने वाले बैंक की होगी, लेकिन प्रायोजक बैंक इस मामले में आवश्यक सहायता प्रदान करेंगे।

मीडिया रिपोर्ट के अनुसार रिजर्व बैंक ने चार गैर-बैंकिंग इच्छुकों को भारत में व्हाइट लेबल एटीएम संचालित करने के लिए अधिकृत किया है, ये हैं, टाटा कम्युनिकेशंस पेमेंट सॉल्यूशन लिमिटेड (टीसीपीएसएल), प्रिज्म पेमेंट सर्विसेस प्राइवेट लिमिटेड, मुथुट फाइनेंस लिमिटेड और वक्रांगी लिमिटेड। टीसीपीएसएल ने मुंबई के निकट एक ग्रामीण इलाके चंद्रापाड़ा में अपना पहला व्हाइट लेबल एटीएम खोला है। ❑

आइकैन क्या है?

आईकैन (आईसीएएनएन- इंटरनेट कॉरपोरेशन फॉर असाइन्ड नेम्स एंड नंबर्स) अनुबंधित नामों और नंबरों का एक इंटरनेट निगमन है। इंटरनेट पर किसी व्यक्ति तक पहुंचने के लिए हम एक एड्रेस का प्रयोग करते हैं, जो अकेला और व्यक्तिगत होता है। आईकैन इन्हीं व्यक्तिगत पहचानों का पूरे विश्व में समन्वय करता है। ऐसे किसी समन्वय के अभाव में हम एक वैश्विक इंटरनेट की सेवा प्राप्त नहीं कर सकते। आईकैन का गठन 1998 में हुआ था। आईकैन के अनुसार यह विश्व के लोगों के बीच एक गैर-लाभकारी सहभागिता की व्यवस्था है, जो इंटरनेट को सुरक्षित, स्थायी और छेड़छाड़ से मुक्त रखने के प्रति समर्पित है। यह प्रतिस्पर्धा को बढ़ाता है और इंटरनेट की व्यक्तिगत पहचान से संबंधित नीतियों को विकसित करता है। डोमेन नाम प्रणाली (डीएनएस) को इस तरह डिजाइन किया गया है कि इस तक लोग पहुंच सकें। चूंकि यह व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है कि संख्या को याद रखा जाए, डीएनएस संख्या की बजाय अक्षरों का उपयोग करता है और एक संक्षिप्त अक्षर शृंखला को संक्षिप्त संख्या शृंखला से जोड़ता है। इस प्रणाली से उपयोगकर्ता के लिए नेटवर्क का उपयोग आसान हो जाता है। किसी डोमेन के नाम में जैसे- कॉम, नेट, ओआरजी के पूर्व और बाद में दो तत्व होते हैं।

आईकैन के अनुसार यह कंप्यूटर द्वारा प्रयोग किये गये आईपी एड्रेस के साथ प्रशासनिक भूमिका में होती है। आईकैन सिस्टम को चलाता नहीं है, बल्कि यह समन्वयक की भूमिका निभाता है। इस संगठन की भूमिका यह देखने की है कि विशाल और जटिल अंतर्जुड़ाव वाले व्यक्तिगत नेटवर्कों में कंप्यूटर एक-दूसरे को आसानी से पहचान सकें।

आइकैन विभिन्न समूहों से मिलकर बना है, जो नेटवर्क पर विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसे कई संगठन हैं, जो शामिल किया गया हैं। इसे अमरीकी कानून का पालन करना होता है और इसे न्यायालय में घसीटा जा सकता है। आईकैन की मानें, तो इसने स्वयं भी समूदायों के बीच अपनी जिम्मेदारी सुनिश्चित करने के लिए अपनी निर्देशिका तैयार की है, जिसका वह पालन करती है। ❑

(प्रस्तुति : हसन जिया, वरिष्ठ संपादक, योजना उर्दू; ई-मेल : hasanzia14@gmail.com **)**

भारतीय अर्थव्यवस्था में सहकारी क्षेत्र का योगदान

देवेन्द्र उपाध्याय

भारत में औपचारिक रूप से सहकारी आंदोलन के अस्तित्व में आने के पहले से ही सहकार और सहकारिता की परंपरा चली आ रही हैं। गावों में लोग मिलकर अपने संसाधनों का इस्तेमाल करते हुए उसका फायदा उठाते थे। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में कृषि की बिगड़ती स्थिति और संस्थागत वित्त व्यवस्था के अभाव के चलते किसान कर्ज़ के बोझ से दबने लगे। पीड़ित किसानों के सामने कोई रास्ता नहीं था तब ब्रिटिश शासकों ने उन्हें बचाने के लिए कई कदम उठाये। इनमें सहकारी ऋण समिति अधिनियम, 1904 प्रमुख था। अक्तूबर 1946 में दो प्राथमिक दुग्ध उत्पादक समितियां देश में दुग्ध सहकारी समितियों की स्थापना की आधार बनीं

भारतीय अर्थव्यवस्था में सरकारी क्षेत्र, सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र के साथ सहकारी क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मज़बूत बनाने और किसानों को सूदखोरों के चंगुल से बचाकर उन्हें आत्मनिर्भर बनाने में सहकारी क्षेत्र की अग्रणी भूमिका रही है। स्वतंत्रता के बाद सहकारी क्षेत्र को सुदृढ़ करने के लगातार प्रयासों का ही परिणाम है कि सहकारी क्षेत्र कृषि मंत्रालय के तीन घटक विभागों में से एक कृषि एवं सहकारिता विभाग का अंग है।

सहकारी क्षेत्र किसानों को कृषि ऋण उपलब्ध कराने, मंडी समर्थन प्रदान करने, कृषि आदानों के वितरण और सहकारी शिक्षा एवं प्रशिक्षण देने आदि क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। कृषि एवं सहकारिता मंत्रालय, द्वारा सहकारिता प्रभाग ग्रामीण एवं शहरी अंतर सहित क्षेत्रीय असंतुलनों और शोषित-पीड़ित ग्रामीण आबादी एवं संपन्न ग्रामीण वर्ग के बीच असमानता को कम करने के लिए अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन कार्यनीतियों को लागू करता है। वर्ष 2012-13 में सहकारी शिक्षा एवं प्रशिक्षण के लिए पुनर्संरचित केंद्रीय क्षेत्रीय स्कीम के अंतर्गत और सहकारिता विकास के लिए एनसीडीसी कार्यक्रमों की सहायता हेतु कुल बजट प्रावधान 10,500 लाख रुपये किया गया।

भारत सरकार तीसरी पंचवर्षीय योजना से हीं सहकारी शिक्षा एवं प्रशिक्षण हेतु केंद्रीय क्षेत्र की योजनाएं को कार्यान्वित कर रही है, जो कि सतत योजनाएं हैं। इन कार्यक्रमों को एनसीयूआई द्वारा संचालित किया जा रहा है जिसके अधीन सहकारी शिक्षा से संबंधित 44 क्षेत्रीय परियोजनाएं संचालित की जा रही हैं।

राष्ट्रीय सहकारी प्रशिक्षण परिषद द्वारा पांच क्षेत्रीय सहकारी प्रबंधन संस्थान, 14 सहकारी प्रबंधन संस्थान तथा बैकुंठ मेहता राष्ट्रीय प्रबंधन संस्थान, पुणे के माध्यम से सहकारी प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं । इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए कृषि एवं सहकारिता मंत्रालय शत प्रतिशत सहायता अनुदान प्रदान करता है। राज्य सरकारों/ सहकारी संघों द्वारा संचालित कनिष्ठ सहकारी प्रशिक्षण केंद्रों को एनसीसीटी से अकादमिक और वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाती है।

सहकारी आंदोलन

भारत में सहकारिता आंदोलन का इतिहास सौ वर्ष से भी अधिक पुराना है। सन् 1901 में दुर्भिक्ष आयोग ने सांझी साख संगठनों की स्थापना द्वारा ग्रामीण कृषि बैंकों की स्थापना का सुझाव दिया। सहकारी साख समिति अधिनियम 1904 के अधीन कुछ सहकारी समितियां अस्तित्व में आयीं। जब सहकारी समितियों की संख्या में प्रत्याशा से कहीं अधिक विकास सामने आने लगा तो सन् 1912 में सहकारी समिति अधिनियम सामने आया। इसके बाद अनेक अधिनियमों के माध्यम से सहकारी क्षेत्रों को सुदृढ़ करने के प्रयास लगातार होते रहें। स्वतंत्रता से पूर्व 1946 में गुजरात में दो प्राथमिक ग्राम दुग्ध उत्पादक समितियों का पंजीकरण हुआ। सन् 1947 में रजिस्ट्रारों के सम्मेलन में सहकारी प्राथमिक समितियों के गठन का मार्ग प्रशस्त हो गया।

सहकारी समितियों के महत्व

स्वतंत्रता के बाद सहकारिता के विकास को और अधिक बल मिला। योजना आयोग द्वारा निर्धारित विभिन्न योजनाओं में सहकारी समितियों को भी महत्व दिया जाने लगा। पहली पंचवर्षीय योजना से ही सहकारी समितियों

को बढ़ावा मिला। इससे विभिन्न क्षेत्रों में सहकारी समितियों के गठन का मार्ग प्रशस्त हुआ। दूध के क्षेत्र में आनन्द के पैटर्न पर राष्ट्रीय डेरी विकास बोर्ड की स्थापना होने से डेरी सहकारी आंदोलन को और गति मिली। उपभोक्ता सहकारी समितियां गठित हुईं, जिन्हें सार्वजनिक वितरण प्रणाली से जोड़ा गया।

भारत में सहकारी आंदोलन गांव-गांव तक फैल गया। देश के 99 प्रतिशत गांवों और 71 प्रतिशत घरों के सभी क्षेत्रों में सहकारी समितियों का विस्तार हुआ है। आंकड़ों से पता चलता है कि देश की अर्थव्यवस्था में सहकारिता का योगदान कृषि ऋण वितरण में 18 प्रतिशत और उर्वरक वितरण में 36 प्रतिशत व उर्वरक उत्पादन में 25 प्रतिशत है। हथकरघा के क्षेत्र में सहकारी संस्थाओं का योगदान 51 प्रतिशत और चीनी उत्पादन में 50 प्रतिशत है।

भारत में सहकारी आंदोलन गांव-गांव तक फैल गया। देश के 99 प्रतिशत गांवों और 71 प्रतिशत घरों के सभी क्षेत्रों में सहकारी समितियों का विस्तार हुआ है। आंकड़ों से पता चलता है कि देश की अर्थव्यवस्था में सहकारिता का योगदान कृषि ऋण वितरण में 18 प्रतिशत और उर्वरक वितरण में 36 प्रतिशत व उर्वरक उत्पादन में 25 प्रतिशत है। हथकरघा के क्षेत्र में सहकारी संस्थाओं का योगदान 51 प्रतिशत और चीनी उत्पादन में 50 प्रतिशत है। सन् 2002 में भारत सरकार ने राष्ट्रीय सहकारिता नीति घोषित की, जिसमें सहकारी क्षेत्र को राजनीति मुक्त करने पर बल दिया गया। इसी वर्ष बहुद्देशीय राज्य सहकारी समिति अधिनियम में संशोधन किया गया, जिसने 1984 के पहले अधिनियम का स्थान लिया।

भारतीय राष्ट्रीय सहकारी संघ (एनसीयूआई) देश के संपूर्ण सहकारी आंदोलन का शीर्ष संगठन है जिसकी स्थापना 1929 में अखिल भारतीय सहकारी संस्थान के रूप में हुई। उसके बाद अखिल भारतीय सहकारी संस्थानों के एसोसिएशन एवं भारतीय प्रांतीय सहकारी बैंक एसोसिएशन के साथ विलय के बाद यह भारतीय सहकारी संघ के रूप में अस्तित्व में आया। जिसे वर्ष 1961 में भारतीय राष्ट्रीय सहकारी संघ नाम दिया गया।

सहकारिता की परंपरा

भारत में सहकारी आंदोलन का लिखित इतिहास सौ साल से भी अधिक पुराना है। लेकिन भारत में औपचारिक रूप से सहकारी आंदोलन के अस्तित्व में आने के पहले से ही सहकार और सहकारिता की परंपरा चली आ रही थी। गावां में लोग मिलकर अपने संसाधनों का इस्तेमाल करते हुए उन्हें साझा तरीके से उत्पादित कर उसका फायदा उठाते थे। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में कृषि की बिगड़ती स्थिति और संस्थागत वित्त व्यवस्था के अभाव के चलते किसान कर्ज़ के बोझ से दबने लगे। साहूकारों-सूदखोरों के शोषण से पीड़ित किसानों के सामने कोई रास्ता नहीं था तब ब्रिटिश शासकों ने उन्हें बचाने के लिए कई कदम उठाये। इनमें सहकारी ऋण समिति अधिनियम, 1904 था। अक्तूबर 1946 में दो प्राथमिक दुग्ध उत्पादक समितियां देश में दुग्ध सहकारी समितियों की स्थापना की आधार बनी। उसके बाद खेड़ा जिला दुग्ध उत्पादक संघ का पंजीकरण हुआ, जो आज अमूल के नाम से विख्यात है। आज अमूल देश के महानगरों, नगरों, कस्बों में दूध उत्पादन-वितरण का पर्याय बन गया। जिसने देश के हर राज्य में दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियों की स्थापना की नींव रखी और आज दुग्ध उत्पादक किसानों एवं उपभोक्ताओं के लिए देशभर में दुग्ध सहकारी संस्थान अलग-अलग नामों से अपनी पहचान बना चुकी है।

समग्र आर्थिक विकास में मदद

आज देश की 6 लाख सहकारी संस्थाएं, 24 करोड़ सदस्यों के नेटवर्क द्वारा भारतीय सहकारी आंदोलन को समतापूर्ण एवं समावेशी विकास सुनिश्चित करने में कारगर आर्थिक उपकरण बनाने में मदद कर रही है। अर्थव्यवस्था के समग्र आर्थिक विकास में सहकारी आंदोलन का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष योगदान है। कृषि ऋण, चीनी, डेयरी, वस्त्र, मत्स्यपालन, कृषि निवेश, भंडारण, उर्वरक उत्पादन एवं विपणन, आवास आदि क्षेत्र सहकारी आंदोलन की सफलता के उदाहरण हैं।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था ''सहकारिता आंदोलन भारत के लिए वरदान होगा।'' उन्होंने कहा था - ''समय के साथ-साथ सहकारी संस्थाएं अपना स्वयं का आकार तथा स्वरूप ग्रहण कर लेंगी जिसका आज अंदाजा लगाया जाना जरूरी नहीं हैं।''

प्रो. अमर्त्य सेन ने सहकारी संस्थाओं के बारे में कहा है कि शिक्षा, रोज़गार, खाद्य सुरक्षा, वित्तीय सुरक्षा और स्वास्थ्य देखभाल जैसी बुनियादी मानव क्षमताओं की प्राप्ति को लोकतांत्रिक बनाने में सहकारी संस्थाओं ने प्रमुख भूमिका निभायी है। सहकारी संस्थाओं को न केवल अपने सदस्यों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को सुधारने बल्कि सामाजिक संगठन और समन्वय में बदलाव के कारक की महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

संयुक्त राष्ट्र ने विश्व में सहकारिता के लाभ और महत्व को पहचानते हुए वर्ष 2012 को 'अंतर्राष्ट्रीय सहकारिता वर्ष' घोषित किया था। संयुक्त राष्ट्र महासचिव बान की मून ने सहकारी संस्थाओं के योगदान को रेखांकित करते हुए कहा- सहकारी संस्थाओं ने मूल्यों

प्रो. अमर्त्य सेन ने सहकारी संस्थाओं के बारे में कहा है कि शिक्षा, रोज़गार, खाद्य सुरक्षा, वित्तीय सुरक्षा और स्वास्थ्य देखभाल जैसी बुनियादी मानव क्षमताओं की प्राप्ति को लोकतांत्रिक बनाने में सहकारी संस्थाओं ने प्रमुख भूमिका निभायी है। सहकारी संस्थाओं को न केवल अपने सदस्यों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को सुधारने बल्कि सामाजिक संगठन और समन्वय में बदलाव के कारक की महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

पर खास ध्यान देकर स्वयं को एक ऐसे लचीले और व्यावहारिक कारोबारी मॉडल के रूप में विकसित सिद्ध किया है जो विषम परिस्थितियों में भी फल-फूल सकता है। इस

सफलता ने अधिकांश परिवारों और समुदायों को गरीबी के गर्त में गिरने से बचाया है।

राष्ट्रपति श्री प्रणब मुखर्जी ने 16 वीं भारतीय राष्ट्रीय सहकारिता कांग्रेस का उद्घाटन करते हुए कहा : ''भारत में सदस्यों द्वारा गठित सहकारी संस्थाएं अथवा सामाजिक उद्यम बहुत पहले से विद्यमान रहे हैं। सहकारी संस्थाएं इस सिद्धांत पर आधारित हैं कि किसी उद्यम की रचना, उसके रखरखाव तथा विकास में हर एक सदस्य को समान समझा जाय तथा उसके अधिकार एवं उत्तरदायित्व समान हो। सहकारी संस्थाएं वैयक्तिकता का एक उपकरण के रूप में उपयोग करते हुए सामूहिक और संयुक्त विकास के लिए उनकी क्षमता को एकजुट करती हैं और उनके प्रयासों में, लाभ के बजाय व्यक्तियों को प्राथमिकता दी जाती है। सहकारी संस्थाओं में ही लोकतंत्र तथा सबकी भलाई के आदर्श जीवंत होते हैं।''

राष्ट्रपति ने उदारवादी एवं वैश्वीकृत आर्थिक व्यवस्था में सहकारी संस्थाओं के कमज़ोर होने के कुछ लोगों के तर्क को खारिज करते हुए कहा- मैं इससे पूरी तरह असहमत हूं। मेरे विचार से वर्तमान संदर्भ में सहकारी संस्थाओं की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है। हाल के वैश्विक वित्तीय संकट ने वैश्विक वित्तीय संस्थाओं के स्वामित्व वाले अत्यधिक जोखिमपूर्ण निवेशक की तुलना में कम जोखिमपूर्ण ग्राहक स्वामित्व वाली सहकारी बैंकिंग के फायदे को प्रदर्शित किया है।''

राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (एनसीडीसी)

एनसीडीसी की स्थापना 1963 में कृषि मंत्रालय के अधीन एक सांविधिक निगम के रूप में की गई। जिसका कार्य उत्पादन, प्रसंस्करण, विपणन, भंडारण, कृषि उत्पादों का आयात-निर्यात, खाद्य पदार्थों, पशुओं औद्योगिक माल और अन्य अधिसूचित वस्तुओं सेवाओं के कार्यक्रमों की योजना बनाना और उसको बढ़ावा देना है।

वर्ष 2012-13 में एनसीडीसी ने 4,200 करोड़ रुपये के अनुमोदित परिव्यय की तुलना में (5 नवंबर, 2012 तक) 1561.45 करोड़ रुपये (अंतिम) की सहायता दी।

सहकारी कताई मिलें: हथकरघा एवं पावरलूम बुनकरों के साथ-साथ कपास उत्पादकों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए वित्तीय सहायता दी जाती है। वर्ष 2012-13 में उत्पादकों/बुनकरों, सहकारी क्षेत्र की कताई मिलों तथा ओटाई एवं प्रोसेसिंग इकाइयों को एनसीडीसी ने 16.98 करोड़ रुपये की सहायता प्रदान की।

सहाकरी भंडारण तथा शीत भंडारण

एनसीडीसी की सहायता से भंडारण क्षमता 1962-63 की 11 लाख टन से बढ़कर 2012-13 में 154.24 लाख मीट्रिक टन हो गई। वर्ष 2012-13 में केंद्रीय क्षेत्रीय स्कीम के अंतर्गत भंडारण कार्यक्रम हेतु 7.70 करोड़ रुपये ऋण एवं राजसहायता के रूप में स्वीकृत किये गए।

उर्वरक सहकारी: किसानों तक उर्वरकों की पहुंच आसान बनाने के लिए 1967 में इफको की स्थापना की गई थी जो बहुसंयंत्रों वाली सहकारी समिति है और देश दुनिया के कई देशों में राजनीतिक निवेश के तहत उर्वरक उत्पादन से जुड़े कई कार्य कर रही है। इफको के उर्वरकों का वितरण पूरे देश में 39,824 सहकारी समितियों के माध्यम से किया जाता है। इसके अलावा किसानों को किसान सेवा केंद्र के नेटवर्क के माध्यम से फसल उत्पादन के लिए आवश्यक कृषि आदान उपलब्ध कराये जाते हैं।

इफको ने वर्ष 2012-13 में 79.02 लाख मीट्रिक टन उर्वरकों का उत्पादन किया। इसी अवधि में 100 लाख टन से अधिक उर्वरकों की बिक्री की गयी। इस अवधि में इफको का कारोबार 21673.36 करोड़ रुपये रहा और उसने 728.72 करोड़ रुपये का शुद्ध मुनाफ़ा कमाया।

कृभको की स्थापना 1980 में बहुराज्यीय सहकारी समिति के रूप में की गई। वर्ष 2012-13 में कृभको ने 33.86 लाख मीट्रिक टन अमोनिया एवं यूरिया का उत्पादन किया। 31 मार्च, 2013 को कृभको का कारोबार 3136.42 करोड़ रुपये पर पहुंच गया। उसने इस अवधि में 295.55 करोड़ रुपये का शुद्ध मुनाफा कमाया। वह गुणवत्तावाले बीजों को अपने 15 संयंत्र में प्रसंस्करण कर किसानों तक पहुंचाती है।

डेरी सहकारिता

देश में लाखों दुग्ध उत्पादकों को बेहतर भविष्य देने के उद्देश्य से 1965 में राष्ट्रीय डेरी विकास बोर्ड की स्थापना की गई थीं जिसकी वजह से आज विश्व में दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में भारत सर्वोच्च शिखर पर पहुंचा है। देश में 170 दुग्ध उत्पादक सहकारी संघों द्वारा दूध के प्रसंस्करण एवं विपणन का कार्य किया जा रहा है, जो 15 राज्य सहकारी दुग्ध उत्पादक महासंघों के अंतर्गत हैं। आज अमूल, विजया, वेरका, सरस, नन्दिनी, मिल्मा, गोकुल और पराग ऐसे ब्रांड नाम हैं जिन्होंने उपभोक्ताओं का विश्वास जीतने में सफलता पाई है।

प्राथमिक कृषि सहकारी समितियां

देश में प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों की संख्या 93 हज़ार से अधिक है जो देश के 97.95 प्रतिशत गांवों में फैली हैं। इनकी सदस्य संख्या 2010-11 में 121.22 मिलियन थी।

सहकारी बैंक

देश में 997 शाखाओं के साथ राज्य सहकारी बैंकों की संख्या 31 है। जिनकी सदस्य सहकारी समितियों की संख्या 20 हज़ार से अधिक है। 2010-11 में राज्य सहकारी एवं ग्रामीण बैंकों की संख्या 761 शाखाओं समेंत 19 तथा सदस्य संख्या 42 लाख थी। जबकि प्राथमिक कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंकों की संख्या 1086 शाखाओं सहित 701 थी।

प्रमुख सहकारी संगठन

राष्ट्रीय स्तर पर देश में अनेक सहकारी संगठन कार्य कर रहे हैं जो विभिन्न क्षेत्रों में हैं। इनमें नेफेड देश में कृषि उत्पादों के विपणन, निर्यात, प्रसंस्करण के अलावा न्यूनतम समर्थन मूल्य में जरूरी जिंसों की खरीद तथा कृषि उपकरणों व बायो फर्टिलाइजर का उत्पादन एवं विपणन भी करता है। देश में 25 राज्य सहकारी विपणन संघ तथा 24 राज्य

विशेष वस्तु विपणन संघ और 784 प्राथमिक विपणन समितियां हैं।

एनसीसीएफ उपभोक्ता सहकारी क्षेत्र में शीर्ष संगठन है। यह विदेशों से दाल आयात करने वाली प्रमुख नोडल एजेंसी है जो उचित दर की दुकानों के माध्यम से रियायती दरों पर दालों की बिक्री करती है। सर्वप्रिय योजना के अंतर्गत रोज़मर्रा की ज़रूरतों की चुनी हुई चीज़ों की उचित दर दुकानों, सहकारी उपभोक्ता भंडारों व राज्यों के नागरिक आपूर्ति निगमों के माध्यम से निर्धारित क़ीमत पर बिक्री भी एनसीसीएफ द्वारा की जाती है।

इसके अलावा कृषि ऋण सहकारी के अंतर्गत नेशनल फेडरेशन ऑफ स्टेट को-ऑपरेटिव बैंक हैं जिससे राज्य सहकारी बैंक, जिला सहकारी बैंक, प्राथमिक कृषि ऋण समितियां, किसान सेवा समितियां और बड़ी आदिवासी बहुद्देशीय समितियां (लैम्प्स) जुड़ी हैं। राष्ट्रीय सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक संघ से राज्य स्तरीय बैंकों के अलावा क्षेत्रीय/मंडल/जिला कार्यालय एवं प्राथमिक बैंक व राज्य बैंकों की शाखाएं संबद्ध हैं।

भारतीय आदिवासी सहकारी विपणन विकास संघ (ट्राइफेड) के साथ राज्य स्तरीय निगम एवं सहकारी संघ व लैम्प्स जुड़े हैं।

आवास सहकारी

देश में बढ़ती हुई आबादी की आवासीय आवश्यकताओं को पूरा करने में आवास सहकारी क्षेत्र का बहुत बड़ा योगदान है। राष्ट्रीय आवास सहकारी संघ सहकारी क्षेत्र का शीर्ष संगठन है जिससे 26 राज्य सहकारी आवास वित्त समितियां/संघ संबद्ध हैं। जिसकी प्राथमिक सहकारी आवास भवन एवं ग्रुप हाउसिंग सोसाइटियों की संख्या एक लाख से भी अधिक पहुंच चुकी हैं। इसका नेटवर्क 26 राज्यों में फैला है।

अन्य प्रमुख शीर्ष सहकारी संगठनों में राष्ट्रीय श्रमिक सहकारी संघ (एनएलसीएफ) मत्स्यिकी के क्षेत्र में एनएफएफसी, चीनी उत्पादन के क्षेत्र में राष्ट्रीय सहकारी चीनी कारखाना संघ, स्विनिंग को-ऑपरेटिव एवं बुनकर को-ऑपरेटिव, आदि प्रमुख हैं। पेड़ उत्पादक सहकारी संघ से संबद्ध 534 प्राथमिक स्तर की सहकारी समितियां अपने करीब 68 हजार सदस्यों के माध्यम से वन पंचायतों, ग्रामीण वनों, संयुक्त वन प्रबंधन गांवों आदि को सहयोग कर वानिकीकरण में मदद करती हैं।

विभिन्न राज्यों में परिवहन के क्षेत्र में सहकारी यातायात समितियां छोटे एवं मझोले बस मालिकों के सहयोग से अपने-अपने इलाकों में परिवहन सेवा उपलब्ध कराने का कार्य कर रही है।

सहकारी क्षेत्र कई राज्यों में कई क्षेत्रों में बहुत लाभकरी सिद्ध हुआ है जिसने अपने प्रयासों से निजी क्षेत्र को भी पीछे धकेल दिया है। लेकिन कई राज्यों में सहकारी क्षेत्र घाटे का सौदा सिद्ध हुआ है। सहकारी क्षेत्र जहां-जहां असफल हुआ है या हो रहा है उसका मुख्य कारण उसमें निष्क्रिय सदस्यता और प्रबंधन में सक्रिय भागीदारी का अभाव है। यही नहीं सरकारी हस्तक्षेप ने भी सहकारी क्षेत्र के आगे बढ़ने में अवरोधक का काम किया है। सरकारी क्षेत्र की सरकारी सहायता पर अत्यधिक निर्भरता पेशेवर प्रबंधन की कमी तथा नौकरशाही नियंत्रण की समस्या को हल करने से इसमें और सुधार हो सकता है। देश के सबसे पिछड़े एवं शोषित-पीड़ित व्यक्ति के हितों के लिए सहकारी क्षेत्र को मजबूत एवं आत्मनिर्भर बनाया जाना समय की आवश्यकता है। ❑

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं। ई-मेल : devendra.khumar@gmail.com)

योजना

सदस्यता कूपन

नयी सदस्यता / नवीकरण/ पता बदलने के लिए (जो लागू होता हो उस पर '✓' का चिह्न लगाएं)

मैं ..... (पत्रिका का नाम एवं भाषा) का ❑ वार्षिक(100 रुपये) ❑ द्विवार्षिक (180 रुपये) ❑ त्रिवार्षिक (250 रुपये) सदस्य बनने का इच्छुक हूं। डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर/मनीआर्डर संख्या ..... तारीख .....

नाम .....

वर्ग ❑ विद्यार्थी ❑ शिक्षक ❑ संस्था ❑ अन्य

पता.....

.....

पिन .....

नवीकरण/पता बदलने के लिए कृपया अपनी सदस्य संख्या यहां लिखें .....

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर/मनीआर्डर अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग के नाम से बनवाएं और कूपन के साथ इस पते पर भेजें : व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार) प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड-IV सातवां तल, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

ज्यादा कुशलता वाला उठाऊ चूल्हा

वी. जयप्रकाश

श्री वी. जयप्रकाश (43) केरल के एक चूल्हा बनाने वाले हैं। उन्होंने एक ऐसा उठाऊ चूल्हा बनाया है, जिसमें ईंधन जलाने का अलग स्थान है और बिना जला हुआ बायोमास तथा हाइड्रोकार्बन जलने का अलग स्थान है। इसके परिणामस्वरूप इस चूल्हे की ताप कुशलता सुधर गई है और प्रदूषण भी कम हो गया है।

श्री जयप्रकाश एक मध्यवर्गीय परिवार से हैं। वह शुरू से ही अच्छे छात्र थे। बचपन से ही विज्ञान और नवाचारों में उनकी रुचि थी। वह अक्सर नियमित रूप से विज्ञान और प्रदर्शनियों में भाग लेने लगे थे और अपने विद्यालय का वहां पर प्रतिनिधित्व करते थे। बचपन की उनकी कुछ परियोजनाओं में कई चीजें शामिल हैं। उन्होंने एक गड़ारी बनाई थी, जिससे कुछ हद तक ज्यादा वज़न उठाया जा सकता था और एक खिलौना मोटरबोट बनाई जो रिमोट के जरिये कुछ दूर अपने आप जाती थी और फिर वापस आ जाती थी।

बचपन में उनका समय विपन्नता में बीता। उन्हें कई तरह की आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। उन्हें याद है कि उनके स्कूल जाने का एक आकर्षण मध्याह्न भोजन योजना होती थी। हालांकि उन्होंने एसएसएलसी प्रथम श्रेणी में पास किया लेकिन वह विज्ञान में दाखिला नहीं ले सकें। इसके बाद फीस ज्यादा होने के कारण वह एयरोनॉटिक्स डिप्लोमा कोर्स में भी प्रवेश नहीं पा सके। 12वीं कक्षा पास करने के बाद वह अपने पिता के पास कोयम्बटूर चले गए, जहां उन्होंने दिहाड़ी मजदूर के तौर पर जीविका कमानी शुरू कर दी। उद्देश्य था कि कुछ पैसा कमाकर पढ़ाई जारी रखी जाए। लेकिन दुर्भाग्य की बात थी कि एक दुर्घटना में उनके सारे प्रमाणपत्र खो गए, जिसके कारण उन्हें किसी कोर्स में दाखिला लेने में दिक्कत हुई। इसके एक वर्ष बाद, 1989 में वह अपने गृहनगर लौटे और फल का छोटा-मोटा व्यापार शुरू कर दिया।

धुआंरहित चूल्हा

जिस समय वह अपना नया काम शुरू कर रहे थे, उन्होंने केरल शास्त्र साहित्य परिषद् (केएसएसपी) के बारे में सुना। यह एक स्थानीय मंच था जो साहित्य और विज्ञान के प्रति चेतना बढ़ाने के लिए काम करता था। कम लागत वाला बिना धुएं का चूल्हा बनाने की बात भी इस मंच के ध्यान में आई और उसने इसको लोकप्रिय बनाने के लिए काम शुरू किया। इस मामले में सबसे बड़ा आकर्षण धुंआरहित चूल्हा था। वह इस परिषद के संपर्क में आए और इसके लिए उन्होंने एएनईआरटी (एजेन्सी फॉर नॉन कन्वेंशनल एनर्जी एंड रूरल टेक्नोलॉजी) यह केरल सरकार का एक संगठन था जो गैर-परंपरागत ऊर्जा के क्षेत्र में काम करता है। इस संगठन ने जब धुआंरहित चूल्हे के बारे में सुना तो उसने बहुत रुचि दिखाई। समय बीतता गया और जयप्रकाश को इस प्रकार के चूल्हे बनाने की जानकारी और उनका आत्मविश्वास बढ़ता गया।

एक बार उन्होंने एक अस्पताल के लिए एक बड़ा सामुदायिक चूल्हा बनाया और उसे अस्पताल के परिसर में स्थापित किया। इसको देखते समय एक दिन उनके विचार में आया कि चिमनी के पास एकाएक चूल्हे की ज्वालाएं क्यों बढ़ने लगती है। संचालन के लगभग 10 मिनट बाद ऐसा होता था। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ और इसकी जानकारी उन्होंने एएनईआरटी के विशेषज्ञों को दी। उन्होंने स्पष्ट किया कि जो ज्वाला उन्होंने भड़कते देखी थी वह कार्बन कणों के पूरी तरह जल जाने का परिणाम थी। ये कण चिमनी के सबसे ऊपर ऑक्सीजन के संपर्क में आते थे। इससे उनके दिमाग को कुछ करने की प्रेरणा मिली और उन्होंने एक ऐसे उठाऊ चूल्हे के बारे में सोचना शुरू कर दिया जिसमें जलने की प्रक्रिया दो स्तरों पर हो सके। उन्होंने कई महीनों तक इसके लिए कोशिशें कीं और अनेक चूल्हे बनाएं। लेकिन हवा के अलग से जाने का कोई तरीका उन्हें नहीं सूझा।

आखिरकार अध्यवसाय रंग लाया। एक दिन सवेरे उन्हें तब कामयाबी मिली जब वह दो स्तरों पर लकड़ी जलाने में कामयाब हुए। इसमें जलने की प्रक्रिया भी पूरी हो जाती थी वह भी बिना धुआं निकले। उन्हें केरल साहित्य परिषद् की कार्यशाला में जाना था, जहां उन्होंने इसके बारे में चर्चा की। पाया गया कि इस प्रकार के चूल्हे की कुशलता 30 प्रतिशत बढ़ जाती है जबकि अन्य धुआंरहित चूल्हों की कुशलता सिर्फ़ 20 प्रतिशत बढ़ती थी। उन्होंने अपने चूल्हे के मॉडल में और सुधार किये और उसे बाज़ार में उतार दिया। जयप्रकाश का बनाया हुआ चूल्हा एक उठाऊ चूल्हा है और उसमें ईंधन

दो स्थानों पर जलता है। इसका अधिकांश प्रयोग बड़े पैमाने पर खाना बनाने के लिए किया जाता है। इसमें ईंधन के रूप में नारियल के छिलके को इस्तेमाल किया जाता है।

यह उठाऊ चूल्हा ईंटों, सीमेंट, मिट्टी और ढलवां लोहे का बना होता है और इसके जरिये 100 किलोग्राम तक भोजन पकाया जा सकता है। इसका आधार चैंबर (ईंधन जलाने की जगह) लोहे का बना होता है, जिसमें ईंधन रखा जाता है। इससे नीचे हवा जाने की खाली जगह होती है। जब भी ईंधन जलता है, धुआं बिना जले हुए हाइड्रोकार्बन के साथ ऊपर वाले चैंबर में पहुंच जाता है, जिसमें हवा जाने के छेद होते हैं। यहीं पर जलने की प्रक्रिया पूरी हो जाती है और इससे ऊपर रखे बर्तन में आंच भी ज्यादा लगती है। इस तरह से ईंधन का पूरा इस्तेमाल होता है और शटर का इस्तेमाल करके इसकी आंच और बढ़ाई जा सकती है। शटर से हवा के आने-जाने पर भी नियंत्रण किया जा सकता है। जलने की प्रक्रिया के दौरान आने वाली हवा से आंच बढ़ाई जा सकती है। इस तरह से ईंधन जल जाता है। दुबारा जलने की प्रक्रिया से कार्बन कण जो जलने से बचे होते हैं, इसमें अतिरिक्त हवा के चलते जल जाते हैं।

इस चूल्हे की विशेषता यह है कि इसकी कुशलता ज्यादा है, लागत कम आती है और यह एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाया जा सकता है। अगर इसमें लकड़ी का इस्तेमाल किया जाता है तो इसकी ताप कुशलता 37.67 प्रतिशत होती है और अगर नारियल के छिलकों का इस्तेमाल होता है तो यह 29.48 प्रतिशत बैठती है (पालककाड के मंदुर स्थित रूरल टेक्नोलॉजी सेंटर की परीक्षण रिपोर्ट)। गुवाहाटी के आई. आईटी ने भी नारियल छिलकों का इस्तेमाल करके यही टेस्ट किया है और इसकी ताप क्षमता 29.28 प्रतिशत बताई है। एएनईआरटी की टीम ने जानकारी दी है कि कालीकट के होटल में इस चूल्हे का इस्तेमाल किया गया और वहां पर 40 किलो चावल पकाने के लिए सिर्फ़ 75 नारियल के छिलकों की ज़रूरत पड़ी, जिसकी क़ीमत 30 रुपये आई, जबकि इसके विपरीत रसोई गैस का इस्तेमाल करने से 10 किलोग्राम गैस की ज़रूरत पड़ती है, जिसकी क़ीमत होती है 400 रुपये। इस चूल्हे की ताप क्षमता, लागत प्रभाव और उठाऊ गुण का कारण है इसकी अनोखी डिजाइन। एनआईएफ ने इसका पेटेंट कराया और पेटेंट का नंबर है 1582/सीएचई/2011। इस स्टोव पर इसे बनाने वाले का नाम भी छापा जाता है।

एनआईएफ ने माइक्रोवेंचर इनोवेशन फंड से जयप्रकाश की मदद की। यह सहायता उन्होंने अपने उत्पाद के वाणिज्यीकरण में इस्तेमाल की। पिछले दो वर्षों में उन्हें कॉलेजों, अस्पतालों और नगरपालिकाओं से अनेक ऑर्डर प्राप्त हो रहे हैं। उनके पास इस समय पांच सौ से ज्यादा चूल्हों के ऑर्डर हैं। इस व्यापार को बढ़ाने के लिए वह एक कारखाना लगाना चाहते हैं और चाहते हैं कि कोई उद्योगपति उन्हें लाइसेंस टेक्नोलॉजी का मूल्य चुकाकर मुक्त करे ताकि वो अपना समय अनु. संधान विकास में लगा सकें। उपभोक्ताओं की प्रतिक्रिया का इस काम में बहुत महत्व है, क्योंकि निर्माता का विश्वास है कि नवाचारों को आगे बढ़ाने में उप. भोक्ता अच्छी मदद कर सकते हैं। उनका कहना है कि अनेक महिला उपभोक्ताओं ने इस संबंध में उन्हें अच्छी प्रतिक्रिया दी है जिससे इनके बारे में उनका अनुभव बढ़ गया है। एक उपभोक्ता ने तो उनसे दो बर्नर वाला चूल्हा बनाने की मांग की है।

लकड़ी के चूल्हों के अलावा वह बड़े धूम्ररहित सामुदायिक चूल्हे भी तैयार करते और बेचते हैं। एएनईआरटी ने इसके लिए उन्हें लाइसेंस और प्रमाणपत्र जारी किया है। अब तक वह 4,000 धुआंरहित चूल्हे और लगभग 700 बड़े चूल्हे बेच चुके हैं ।

व्यापार के अलावा श्री जयप्रकाश सामुदायिक बैठकों में भी शामिल होते हैं, जहां वह अपने अनुभव श्रोताओं को बताते हैं। वर्ष 2009 में उन्होंने अपने उत्पाद के डिजाइन, विकास और मूल्यांकन का विवरण दिया और केरल राज्य विज्ञान और टेक्नोलॉजी परिषद की तिरुअनंतपुरम् में हुई बैठक में इसका इस्तेमाल किया गया। इस बैठक में ग्रामीण नवाचारी शामिल थे। उन्हें केरल राज्य ऊर्जा संरक्षण पुरस्कार 2008 भी प्रदान किया गया है, जो उनकी कामयाबी के उपलक्ष्य में है, क्योंकि इसके कारण ऊर्जा संरक्षण और प्रबंधन में मदद मिलती है। एनआईएफ ने उन्हें मार्च 2011 में राष्ट्रपति भवन में लगाई गयी नवाचार प्रदर्शनी में आमंत्रित किया। इसे वह अपने जीवन की यादगार घटना मानते हैं। बाद में उन्हें 2012 में एक समारोह में एनआईएफ की तरफ से छठा राष्ट्रीय पुरस्कार प्रदान किया गया। यह समारोह राष्ट्रपति भवन में हुआ था। ❑

रुपया जाता है
(बजट 2014-15)

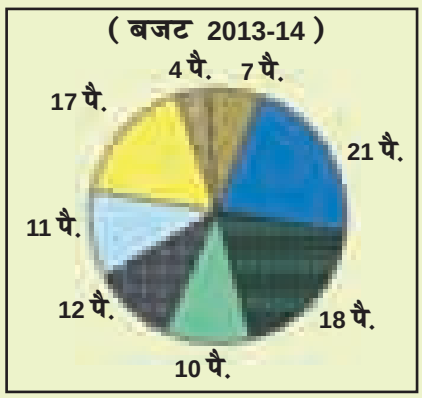

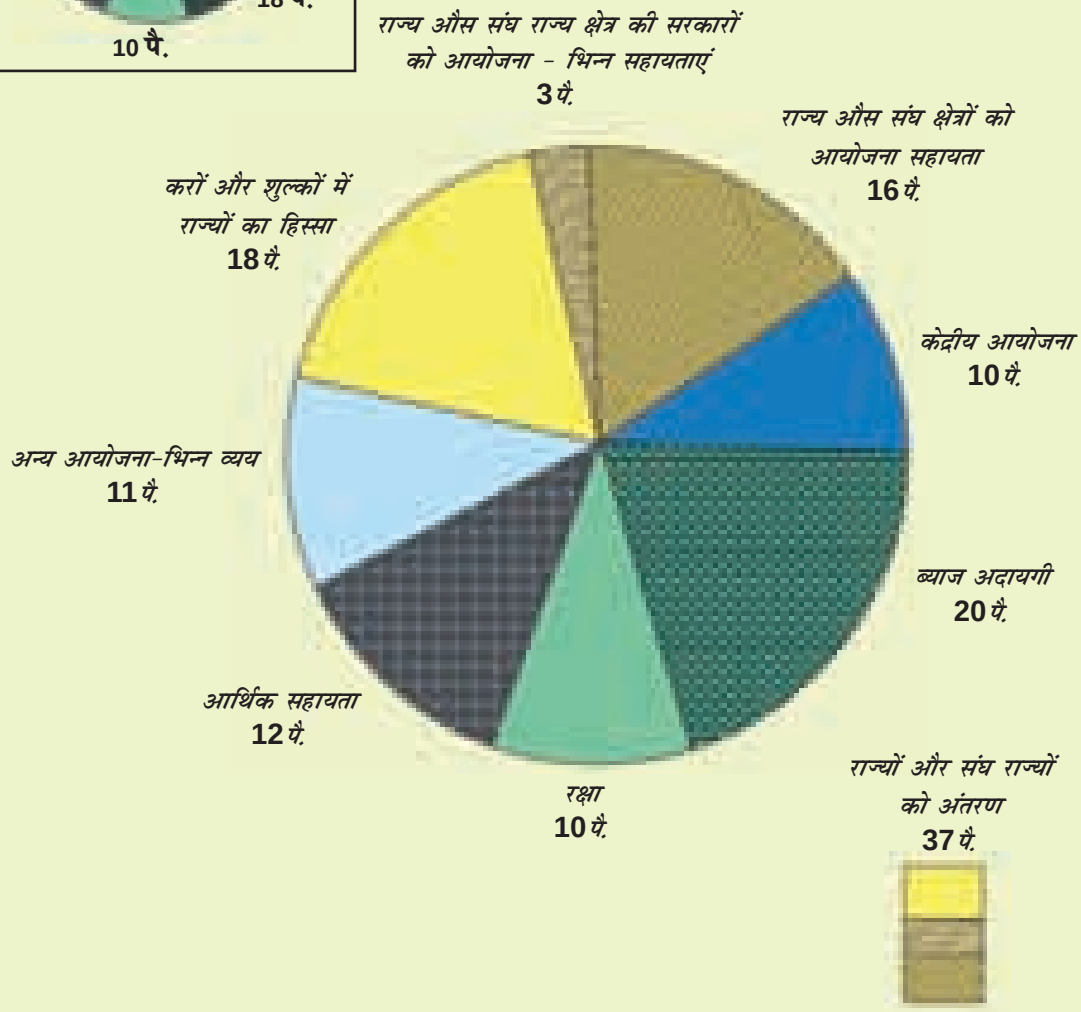

टिप्पणियां : 1. इसमें वह योजना परिणय शामिल नहीं है जिन्हें सरकारी उद्यमों के आंतरिक और बजट बाह्य संसाधनों से पूरा किया जाता है।

2. कुल व्यय में करों और शुल्कों में राज्यों का हिस्सा शामिल है।

स्रोत : बजट एक नज़र में (2014-15)

प्रकाशक एवं मुद्रक : ईरा जोशी, अपर महानिदेशक (प्रमुख) द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए इंटरनेशन-प्रिंट-ओ-पैक लिमिटेड, बी. 206, ओखला औद्योगिक क्षेत्र, फेस-1, नयी दिल्ली-110 020 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110 003 से प्रकाशित। वरिष्ठ संपादक : रेमी कुमारी

रजि.सं.डीएल (एस) -05/3231/2012-14
Reg. No. D. L.-(S)-05/3231/2012-14 at RMS, Delhi
23 मार्च 2014 को प्रकाशित • 29-30 मार्च 2014 को डाक द्वारा जारी

Licenced under U (DN)-55/2012-14
आर.एन.आई. 951/57
R.N.I. 951/57

प्रतियोगिता दर्पण

के अतिरिक्तांक

टॉपर्स की नज़र में

द्वितीय संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण

नवीन संशोधित संस्करण

➡ .....मैंने अर्थव्यवस्था के अतिरिक्तांक का उपयोग समय के सदुपयोग के लिए किया. —प्रियंका निरंजन
सिविल सेवा परीक्षा, 2012 में हिन्दी माध्यम से द्वितीय स्थान

➡ .....मैंने अर्थव्यवस्था का विशेषांक पढ़ा है. यह अपने आप में बेजोड़ एवं तैयारी के क्रम में पठनीय अनिवार्य पुस्तक है. —विवेक अग्रवाल
सिविल सेवा परीक्षा, 2011 में उच्च स्थान पर चयनित

➡ .....मैंने भारतीय अर्थव्यवस्था व प्रतियोगिता दर्पण समसामयिक वार्षिकी पढ़ी है. —प्रियम माहेश्वरी
मध्य प्रदेश पी.एस.सी.परीक्षा, 2010 में तृतीय स्थान

➡ .....मुझे विशेष रूप से अर्थव्यवस्था के अतिरिक्तांक से बड़े स्तर पर फायदा पहुँचा है. —मनोज कुमार
आर.ए.एस. परीक्षा, 2010 में सर्वोच्च स्थान

➡ .....भारतीय अर्थव्यवस्था का अतिरिक्तांक बहुत उपयोगी है. —अरविंद कुमार सिंह
उत्तर प्रदेश पी.सी.एस. परीक्षा, 2010 में प्रथम स्थान

➡ .....मैंने सामयिक एवं अर्थव्यवस्था के लिए प्रतियोगिता दर्पण तथा इसके अतिरिक्तांक पढ़े थे. ये पत्रिकाएं समसामयिकी की तैयारी में योगदान देती हैं. —विवेक कुमार मिश्र
उत्तर प्रदेश प्रशासनिक सेवा, 2010 में द्वितीय स्थान

To purchase online log on to www.pdgroup.in

New Revised & Enlarged Editions

Series-1	Indian Economy	790	325.00
	Economy : At A Glance (2013-14)	799	135.00
Series-2	Geography (India & World)	793	245.00
Series-3	Indian History	798	130.00
Series-4	Indian Polity & Governance	797	190.00
Series-6	General Science Vol. 1	814	130.00
Series-6	General Science Vol. 2	818	90.00
Series-7	Current Events Round-up	819	115.00
Series-12	Indian National Movement & Constitutional Development	812	105.00
Series-15	Indian History–Ancient India	804	140.00
Series-16	Indian History–Medieval India	806	140.00
Series-17	Indian History–Modern India	802	140.00
Series-19	New Reasoning Test	826	220.00
Series-22	Political Science	821	225.00
Series-23	Public Administration	824	195.00
Series-24	Commerce	805	270.00
प. सीरीज–1	भारतीय अर्थव्यवस्था (2013-14)	791	299.00
	अर्थव्यवस्था : एक दृष्टि में (2013-14)	811	125.00
प. सीरीज–2	भूगोल (भारत एवं विश्व)	792	195.00
प. सीरीज–3	भारतीय इतिहास	795	130.00
प. सीरीज–4	भारतीय राजव्यवस्था एवं शासन	794	175.00
प. सीरीज–5	भारतीय कला एवं संस्कृति	796	125.00
प. सीरीज–6	सामान्य विज्ञान Vol. 1	829	130.00
प. सीरीज–6	सामान्य विज्ञान Vol. 2	830	105.00
प. सीरीज–7	समसामयिक घटनाचक्र	809	80.00
प. सीरीज–9	वस्तुनिष्ठ सामान्य हिन्दी	822	110.00
प. सीरीज–10	बौद्धिक एवं तर्कशक्ति परीक्षा	825	120.00
प. सीरीज–11	समाजशास्त्र	810	130.00
प. सीरीज–12	भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संवैधानिक विकास	823	120.00
प. सीरीज–13	खेलकूद	828	170.00
प. सीरीज–14	कृषि विज्ञान	836	155.00
प. सीरीज–15	प्राचीन इतिहास	837	140.00
प. सीरीज–16	मध्यकालीन इतिहास	838	145.00
प. सीरीज–17	आधुनिक इतिहास	839	165.00
प. सीरीज–18	दर्शनशास्त्र	842	110.00
प. सीरीज–19	न्यू रीजनिंग टेस्ट	843	150.00
प. सीरीज–20	हिन्दी भाषा	860	135.00
प. सीरीज–21	संख्यात्मक अभियोग्यता	861	250.00
प. सीरीज–22	राजनीति विज्ञान	866	199.00
प. सीरीज–23	लोक प्रशासन	813	230.00
प. सीरीज–24	वाणिज्य	816	245.00

प्रतियोगिता दर्पण
2/11 ए, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा-282 002 फोन : 4053333, 2531101, 2530966; फैक्स : (0562) 4053330
• E-mail : care@pdgroup.in
ब्रांच ऑफिस : • नई दिल्ली फोन: 011-23251844/66 • हैदराबाद फोन: 040-66753330 • पटना फोन : 0612-2673340
• कोलकाता फोन : 033- 25551510 • लखनऊ फोन : 0522-4109080